॥ वीतरागाय नमः ॥

श्री अमोलक ऋषिजी म. स्मारक ग्रन्थमाला पुष्प संख्या ७५

जैनाचार्य पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म. सा. के द्वारा
विरचित पद्यमय धन्ना शालिभद्र चरित्र का
हिन्दी गद्यात्मक रूपान्तर

धन्ना शालिभद्र

संयोजकः—
श्रमणसंघीय पण्डित
मुनिश्री कल्याण ऋषिजी महाराज

वीर संवत् २४९४ अमोलाब्द ३२
द्वितीयावृत्ति १००० प्रतियां अर्द्ध मूल्य १-५० केवल
विक्रम संवत् २०२५ मई १९६८

प्राक्कथन
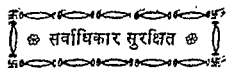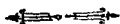
सुज्ञ पाठकवृन्द !

"भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् !

संस्कृत की यह लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध है। आखिर यह भाग्य है क्या चीज् ? जिसके सामने विद्या और उद्यम भी फीके पड़ जाते हैं ?

विचार करने से मालूम होगा कि पूर्वजन्म के उपार्जित पुण्य अथवा पाप ही इस लोक में भाग्य की संज्ञा पाते हैं। पुण्य से सद्भाग्य और पाप से दुर्भाग्य का निर्माण होता है !

यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि यदि हम वेसमझ नहीं हैं तो अपने लिए सदभाग्य ही चाहेंगे, दुर्भाग्य नहीं ! क्योंकि सुख सद्-भाग्य का परिणाम है और दुःख दुर्भाग्य का यह जान लेने पर हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि सद्भाग्य के लिए हम पुण्योपाजन का प्रयत्न करें।

पुण्य का साधन है-दान ! परोपकार के लिए अपने तन-मन-धन का उत्सर्ग ! सज्जन स्वभाव से ही परोपकारी होते हैं। क्या नदियाँ स्वय पानी पीती हैं ? क्या वृक्ष स्वय फल खाते है ? क्या गाय स्वयं अपना दूध चखती है ? नहीं ! नहीं !! बिल्कुल नहीं !!!

जरा उन घनी झाड़ियों को देखिये कि जो मूसलधार वर्षा,

कड़ाके की ठण्ड तथा भीषण गर्मी को सहन करके भी पास में आये हुए जंगली जन्तुओं को आश्रय देती हैं ! उस वटवृक्ष की ओर निहारिये कि जो अपनी शाखाएँ काटने वाले लकड़हारे को भी शीतल छाया प्रदान करता है ! उस आम्रवृक्ष की ओर भी नजर उठाइये कि जो पत्थर बरसाने वालों को भी रसीले फल प्रदान किया करता है ! इसीलिए तो अनुभवियों ने कहा है :–

"परोपकाराय संतां विभूतयः !"

अब जरा अपना दृष्टिपात उन मनुष्यों की ओर भी कीजिये कि जो सम्पत्ति होते हुए भी याचकों को द्वार से निराश लौटा देते हैं–साफ इन्कार कर देते हैं। कवि रहीम के शब्दों में ऐसे व्यक्ति मरे हुए हैं, जो कहो मांगने जाते हैं; किन्तु उनसे भी पहले वे मर चुके हैं कि जो होते हुए भी 'नहीं है' ! ऐसा बोल उठते हैं:–

'रहिमन' वे नर मर चुके, जे कहुं मांगन जाहि।
उनते पहिले ते मुए, जिन मुख निकरात नाहि' ।।

एक ओर संग्रह करने वाला समुद्र है, जिसका पानी खारा है और दूसरी ओर दान देने वाला वह मेघ है, जिसका पानी मधुर है ! एक का नीचा स्थान है तो दूसरे का ऊंचा ! कितना अन्तर है–दोनों में ? ठीक यही अन्तर, दाता और कंजूस में है ! आप अपने लिए कौन-सी श्रेणी में रहना पसंद करेंगे–पहली या दूसरी ?

साधारण मनुष्यों की मनोवृत्ति के विषय में पिछले हजारों वर्षों का अनुभव यह बताता है कि लोग पुण्य-फल सुख तो चाहते है, पर पुण्य करने का प्रयत्न नहीं करते ! पाप का फल दुःख नहीं चाहते, फिर भी पाप करने में कभी चूकते नहीं ! यही बात महर्षि व्यास के शब्दों में यों कही जा सकती है:–

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति मानवः ।
पापस्य फलं नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥
महाभारत

ओह ! यह भी कैसा उल्टा स्वभाव है ! मानवमन की यह दयनीय स्थिति कैसी भयकर है ! इच्छा होते हुए भी पुण्य के बदले पाप ही करते रहना मनुष्य की एक ऐसी विचित्र मूर्खता है कि जिसे 'जानबूझ कर जहर खाने' की उपमा दी जा सकती है ! क्या मनुष्य कभी अपनी इस भूल को पहिचानेगा ?

मानव-समाज की इस उल्टी मनोवृत्ति को सही दिशा में मोड़ने का प्रयत्न करना बहुत जरूरी है ! किन्तु क्या इसके लिए उपदेश दिये जायँ ? लेख लिखे जायँ ? पुस्तकें लिखी जायँ ? नहीं ! जब औषधि कड़वी हो तो गुड़ में लपेट कर ही दी जानी चाहिये । ठीक इसी प्रकार सत्य को कथाओं के माध्यम से ही प्रकट करना उचित है ! साधारण पाठक प्राय: कथासाहित्य को विशेष रुचि से पढ़ते है ! तब क्यों न पुण्यफल को प्रकट करने वाली कथाएँ लिखी जायँ ? कि जिनसे मानव समाज को पुण्य करने का प्रेरणा प्राप्त हो सके !

इस दिशा में प्राचीन रागों और ढालों में अनेक साधुसंतों ने महापुरुषों के चरित्र लिखे हैं, जो शिक्षाप्रद होने पर भी रस-दायक हैं ! 'धन्नाशालिभद्र चरित्र' भी बालब्रह्मचारी जैनाचार्य श्री अमोलकऋषिजी म० सा० की एक ऐसी ही रचना है, जो प० मुनि श्री कल्याणऋषिजी म० सा० की सत्प्रेरणा से संस्थापित 'श्री अमोल जैन ज्ञानालय' नामक प्रकाशन संस्था से प्रकाशित हो चुकी है ! प्रस्तुत ग्रन्थ उसी ढालमय रचना का हिन्दी गद्यानुवाद है, जो उपन्यास की शैली पर लिखा गया है ।

आजकल मनुष्यों की रुचि प्रायः ढालों से हट कर उपन्यासों की ओर बढ़ती चली जा रही है, इसलिए पं० मुनि श्री का प्रयत्न प्राचीन ढालमय चरित्रों को इस प्रकार नये गद्यात्मक रूप से प्रकाशित करने की ओर लगा है। यह ग्रन्थ जो आपके हाथ में है, उसी प्रयत्न का एक फल है! पं० मुनि श्री कल्याण-ऋषिजी म० सा० की यह सूझ समयानुकूल होने से सचमुच प्रशंसनीय है!

द्वितीय आवृत्ति

इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित की गई थी। पाठकों की मांग होने से यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है पाठकगण इससे समुचित लाभ उठाएंगे।

स्व. जैनाचार्य श्री **अमोलक ऋषिजी म.** की स्मृति में संस्थापित श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया द्वारा धार्मिक पुस्तकों का-मुख्यतया स्व. आचार्य श्री द्वारा रचित ग्रन्थों का-प्रकाशन कार्य विगत कई वर्षों से किया जा रहा है इस प्रकाशन संस्था को **पण्डित रत्न श्री कल्याण ऋषिजी म. सा.** का तथा **विदुषी प्रवर्तिनीजी श्री सायरकुंवरजी महासतीजी** का शुभाशीर्वाद प्राप्त है जिसके लिये यह संस्था उनकी चिर-ऋणी है।

यह संस्करण संस्था की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है तथा संस्था के उद्देश्यानुसार प्रचार-प्रसार के लिये **अर्ध मूल्य** में वितरित किया जा रहा है। प्रथम संस्करण लगभग १२ वर्ष पूर्व

प्रकाशित हुआ था। तब से अब तक कागज, छपाई आदि में बहुत अधिक मूल्यवृद्धि हो जाने पर भी पुस्तक के मूल्य में केवल १० पैसे की ही वृद्धि की गई है।

इस प्रकाशन संस्था को माननीय जन्मदाता, स्तम्भ आजीवन सदस्य तथा समाज के अन्य कतिपय उदार चेता श्रीमानों का सहयोग प्राप्त होता रहा है जिससे यह संस्था कई वर्षो से अपना कार्य सुचारु रूप से चला रही है। इस सहयोग के लिये मैं उन सभी महानुभावों का आभार प्रदर्शित करता हुआ भविष्य के लिये सहयोग की आशा रखता हूँ।

धूलिया (महाराष्ट्र)
१, मई १९६८

विनीत
कन्हैयालाल मिसरीलाल छाजेड़
मन्त्री
श्री अमोल जैन ज्ञानालय

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

बाल ब्रह्मचारी, श्रीमज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज संबंधी

संक्षिप्त जीवन-परिचय

१ जन्म स्थान–भोपाल (मालवा)

२ माता पिता नाम–सुश्री हुलासाबाई और श्री केवलचंदजी कांसटिया, (ओसवाल बड़े साथ)

३ जन्मतिथि–संवत् १९३३ भाद्रपद कृष्णा ४ दिन के ९ बजे।

४ दीक्षा ग्रहण तिथि संवत् १९४४ फाल्गुन कृष्णा २ गुरुवार स्थान-आष्टा (भोपाल)

५ दीक्षा के समय आयु-वर्ष ११, महीना ५ और दिन २७।

६ बत्तीस शास्त्र अनुवाद कार्य-संवत् १९७२ के कार्तिक शुक्ला ५ गुरुवार, पुष्य नक्षत्र, स्थान–हैदराबाद। और कार्य समाप्ति–तीन वर्ष और पन्द्रह दिन याने सं. १९७५ मगसर वदी ५।

७ आचार्य महोत्सव तिथि संवत् १९८९ ज्येष्ट शुक्ला १२ बुधवार, स्थान इन्दौर, सर सेठ हुक्मीचदजी की नसियां में।

८ वृहत् साधु सम्मेलन–अजमेर संवत् १९९० चैत्र शुक्ला १० बुधवार को सम्मिलित हुए।

९ विहार क्षेत्र–दक्षिण भारत, हैदराबाद स्टेट, कर्नाटक, बेंगलोर, मैसूर स्टेट, महाराष्ट्र प्रदेश, खानदेश, मध्यप्रदेश, बरार बंबई प्रदेश, गुजरात, कच्छ, काठियावाड़, मालवा, मेवाड़, मारवाड़, गोरवाड़, दिल्ली, पंजाब, शिमला आदि आदि।

१० संयम काल पूर्ण वैराग्यमय, कर्मण्यतामय, और साहित्य-सेवा करते हुए सानंद व्यतीत किया। आपश्री बालब्रह्मचारी थे, सभी सम्प्रदाय के संत समुदाय और श्रावक वर्ग पूज्य श्री जी के प्रति समान भाव से प्रेम, सहानुभूति. भक्ति और आदर रखते थे। आप शांत दांत और क्षमाशील थे। अपने युग में आपश्री एक आदर्श–साधु के रूप मे विख्यात तथा सम्मानित थे।

११ साहित्य सेवा–आपश्री द्वारा अनवादित, संपादित, लिखित और सग्रहीत एवं रचित ग्रन्थों की संख्या १०२ है जिनकी कुल प्रतियाँ १७६३२५ प्रकाशित हुई कुल ग्रन्थों की मूल प्रेस कापी के पृष्ठों की संख्या पचास हजार जितनी है।

१२ दीक्षित शिष्य–आप द्वारा दीक्षित संतों की याने खुद के शिष्यों की संख्या १४ है।

१३ संयम काल–पूज्य श्री जी ने ४८ वर्ष ६ महीना और १२ दिन तक साधु–जीवन को याने संयमकाल की परिपालना की।

१४ पुण्य तिथि–संवत १९९३ के दूसरे भाद्रपद कृष्णा १४ तदनुसार तारीख १३–९–१९३६ को रात्रि के ११।। बजे धूलिया (पश्चिम खानदेश) में समाधि पूर्वक एवं शान्ति के साथ स्वर्गवास किया। उस समय पूज्य श्री जी की आयु ६० वर्ष और ९ दिन की थी।

नोटः—चरित–नायक पूज्यश्री जी के पिताश्री केवलचंदजी ने भी दीक्षा ग्रहण की थी, और वे "तपस्वी श्री केवल ऋषिजी" के नाम से जैन समाज में विख्यात और पूजनीय हुए।

श्री अमोल जैन ज्ञानालय-धुलिया (महाराष्ट्र)

इस प्रकाशन-संस्था को आर्थिक सहायता देने वाले सज्जनों की शुभ नामावली

हमारे सदस्य

जन्म दाता :—

१ श्रीमान् राजाबहादुर लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी हैद्राबाद
२ " प्रेमराजजी चन्दुलालजी छाजेड़ "
३ " मोतीलालजी गोविन्दरामजी श्री श्रीमाल धुलिया
४ " हीरालालजी लालचन्दजी धोका यादगिरी
५ " केवलचन्दजी पन्नालालजी बोरा बैंगलोर
६ " सरदारमलजी नवलचन्दजी पुंगलिया नागपुर
७ " केसरचन्दजी कचरदासजी बोरा आश्वी नगर) आश्वासन)
८ " मानमलजी मंगलचन्दजी राका पारा शिवणी (नागपुर)(")

स्तम्भ:—(संरक्षक)

१ श्रीमान् जैन श्रावक संघ बार्शी
२ " दलीचन्दजी चुनीलालजी बोरा रायचूर
३ " शम्भूमलजी गंगारामजी मूत्था बैंगलोर
४ " अगरचन्दजी मानमलजी चोरड़िया मद्रास
५ " कुन्दनमलजी सूंकड़ की सुपुत्री श्री सायराबाई बैंगलोर
६ " नानचन्दजी भगवानदासजी दूगड़ घोड़नदी
७ " बस्तीमलजी हस्तीमलजी मूत्था रायचूर
८ " तेजराजजी उदयराजजी रूनवाल "
९ " मुकनचन्दजी कुशलराजजी भण्डारी "

१० श्रीमान् नेमीचन्दजी शिवराजजी गोलेच्छा — वेलूर
११ ,, पुखराजजी सम्पतराजजी घोका — यादगिरी
१२ ,, इन्दरचन्दजी गेलडा — मद्रास
१३ ,, बिरदीचन्दजी लालचन्दजी मरलेचा — ,,
१४ ,, जसराजजी बोहरा की धर्मपत्नी श्री केसरबाई — सुरापुर
१५ ,, चम्पालालजी लोढ़ा की धर्मपत्नी श्री घीसीबाई सिकदराबाद
१६ ,, सज्जनराजजी मूथा की धर्मपत्नी श्री उमरावबाईआलदूरमद्रास
१७ ,, चम्पालालजी पगारिया — मद्रास
१८ श्री अमोल जैन स्था० सहायक समिति — पूना
१९ श्रीमान् गिरधारीलालजी बालमुकनजी लूंकड़ — बोरद
२० ,, स्थानकवासी जैन श्री संघ — घोटी
२१ श्रीमती भूरीबाई भ्र० छोगमलजी सुराणा — वाणियमवाड़ी
२२ ,, मेहताबाई भ्र० अमोलकचन्दजी सिसोदिया — ,,
२३ श्रीमान् कनीरामजी गांग की धमपत्नी सौ. रामकुंवरबाई पिपलगांव (बसवंत। नाशिक
२४ ,, मन्नालालजी सुराणा की धर्मपत्नी सौ मदनबाई सिकदराबाद
२५ ,, खिवराजजी जीवराजजी चोपड़ा — होळनाथा (धुलिया)
२६ ,, बहूलालजी तुलसीरामजी कटारिया — बलवाड़ा (नासिक)
२७ ,, हीरालालजी हमीरमलजी बोथरा की धर्मपत्नी सौ. श्रीमती मीराबाई — अन्डरसनपेठ
२८ श्रीमती कचरीबाई भ० दलीचन्दजी बेदमूथा — सुरगाणा (नासिक)
२९ श्रीमान् जवरीलालजी माणिकचन्दजी ललवाणी — खेरी
३० ,, मथुरादासजी बशीलालजी बरडिया — राजूर
३१ ,, जयवतराजजी सुराणा की धर्मपत्नी श्री दाकूबाई ह० श्री तेजराजजी सुराणा — सावकार पेठ मद्रास
३२ श्रीमती धनीबाई कन्हैयालालजी वोरा — वरोरा (जिला चांदा)
३३ ,, धापुबाई दुलराजजी गोठी — ,, ,,
३४ ,, फुलीबाई हिराचन्दजी चडालिया — ,, ,,

३५ श्रीमान् मांगीलालजी अगरचन्दजी वोरा ,, ,,

३६ ,, शाह नागसी हीरजी धर्मार्थ ट्रस्ट हस्ते नानजी नागसी शाह नागपुर

आजीवन सदस्यः—

१ श्रीमान् किसनलालजी वच्छावत मूथा की धर्मपत्नी गिलबीबाई रायचूर
२ ,, हसराजजी मरलेचा की धर्मपत्नी मेहताबाई आलदूर (मद्रास)
३ ,, जयवन्तराजजी भवरलालजी चोरड़िया मद्रास
४ ,, निहालचंदजी मगराजजी सांखला वेलूर
५ ,, लाला रामचन्द्रजी की धर्मपत्नी पार्वतीबाई हैदराबाद
६ ,, पुखराजजी लूंकड़ की धर्मपत्नी गजराबाई बैंगलोर
७ ,, किशनलालजी फूलचन्दजी लूणिया ,,
८ ,, मिश्रीमलजी कात्रेला की धर्मपत्नी मिश्रीबाई ,,
९ ,, उमेदमलजी गोलेच्छा की सुपुत्री मिश्रीबाई हैदराबाद
१० ,, गाढमलजी प्रेमराजजी बांठिया सिकदराबाद
११ ,, मुल्तानमलजी चन्दनमलजी सांखला ,,
१२ ,, जेठालालजी रामजी के सुपुत्र गुलाबचन्दजी ,,
(स्व. माता जवलबाई की स्मृति में)
१३ ,, गुलाबचदजी चोथमलजी बोहरा रायचूर
१४ ,, जसराजजी शान्तिलालजी बोहरा ,,
१५ ,, दौलतरामजी अमोलकचदजी घोका यादगिरी
१६ ,, मांगीलालजी भण्डारी मद्रास
१७ ,, हीराचदजी सिवराजजी चोरडिया मद्रास
१८ ,, किशनलालजी रूपचदजी लूणिया ,,
१९ ,, मांगीलालजी वशीलालजी कोठड़िया ,,
२० ,, मोहनलालजी प्रकाशचंदजी दूगड़ ,,
२१ ,, पुखराजजी मीठालालजी बोहरा पेरम्बूर ,,
२२ ,, राजमलजी शान्तिलालजी पोखरणा ,, ,,
२३ ,, ऋषमचंदजी उदयचदजी कोठारी ,, ,,

२४ ,, आर. जेतारामजी कोठारी पेराम्बूर मद्रास
२५ ,, जवानमलजी सुराणा की धर्मपत्नी मोयाबाई आलंदूर ,,
२६ ,, मिश्रीमल रांका की धर्मपत्नी मिश्रीबाई पुदूपेठ ,,
२७ ,, माणकचंदजी चतुर की धर्मपत्नी रतनबाई वेलूर
२८ ,, बोरीदासजी पोरवाल की धर्मपत्नी पानीबाई बैंगलोर
२९ ,, एम. कन्हैयालालजी एण्ड ब्रदर्स समदड़िया ,,
३० ,, हीराचदजी मासला की धर्मपत्नी भूरीबाई ,,
३१ ,, निहालचदजी पेवरचदजी भटेवरा वेलूर
३२ ,, विनयचदजी विजयराजजी भटेवरा ,,
३३ ,, गुलाबचदजी केवलचदजी भटेवरा ,
३४ श्रीमती गुलदानी बहिन ,,
३५ श्रीमान् रामचन्द्रजी बांठिया की धर्मपत्नी पानीबाई ,,
३६ ,, बीजराजजी घाडीवाल की धर्मपत्नी मिश्रीबाई त्रिवेलूर
३७ ,, सम्पतराज एण्ड कम्पनी तिरपातूर
३८ ,, आसकरणजी चोरड़िया की धर्मपत्नी केसरबाई उलदूरपेठ
३९ ,, जुगराजजी, खिवराजजी, केवलचन्दजी, बरमेचा पी पेरमतुर
४० , नवलमलजी शम्भूमलजी चोरड़िया मद्रास
४१ ,, मिश्रीलालजी पारसमलजी कात्रेला बैंगलोर
४२ ,, केशरीमलजी घीसूलालजी कटारिया ,,
४३ ,, मुलतानमलजी चन्दनमलजी गरिया ,,
४४ ,, चुन्नीलालजी की धर्मपत्नी भूमीबाई ,,
४५ ,, अचलदासजी हंसराजजी कवाड़ सिंधनूर
४६ ,, एन. शान्तिलालजी बलदोटा पूना
४७ ,, घोंडीरामजी विनायकया की धर्मपत्नी रंगूबाई निफाड
४८ ,, जुगराजजी मूत्था की धर्मपत्नी पताशीबाई काठपाड़ी
४९ ,, डुंगरमलजी अनराजजी भीकमचन्दजी भंवरलालजी सुराणा मद्रास
५० ,, मिश्रीमलजी बोरा की धर्मपत्नी नेनीबाई बैंगलोर

५१ श्रीमान् केवलचन्दजी बोरा की धर्मपत्नी पार्वतीबाई बैंगलोर
५२ ,, सुवालालजी शकरलालजी जैन माम्फलम्--मद्रास
५३ ,, बक्तावरमलजी गादिया की धर्मपत्नी गंगाबाई ,,
५४ ,, अमरचन्दजी मरलेचा की धर्मपत्नी चौथीबाई पल्लावरम्-,,
५५ ,, गोविन्दरामजी मोट्टरामजी ट्रस्ट की ओर से,
(सेक्रेटरी श्री दीपचन्दजी संचेती) धुलिया
५६ ,, स्वर्गीय रूपचन्दजी भंसाली की धर्मपत्नी श्री जतनबाई फत्तेपुर
५७ ,, (स्वर्गीय श्री अनराजजी जवाहरमलजी मंडलेचा के स्मरणार्थ)
श्रीमान् बशीलालजी मेघराजजी मडलेचा फत्तेपुर
५८ ,, हीरालालजी मोतीलालजी भरगट गुलबर्गा
५९ ,, भीकचन्दजी लालचन्दजी बूरड़ (महावीर स्टोर्स) पिंपलगांव (बसत)
६० ,, मूलचन्दजी माणकचन्दजी चोपड़ा ,,
६१ ,, स्व. नचश्रीरामजी भण्डारी की धर्मपत्नी श्रीमती तुलसाबाई
नान्दुर्डी (नासिक)
६२ श्रीमती मातुश्री स्व. राजीबाई ध्र. मिश्रीलालजी छाजेड़ की
पुण्य स्मृति में छाजेड़ बन्धु की ओर से धुलिया
६३ श्रीमान् पन्नालालजी छल्लाणी की धर्मपत्नी सौ. पतासाबाई वडेल
६४ ,, गुप्तदानीजी नासिक जिला
६५ ,, हिम्मतलालजी पवनलालजी सचेती (देवला)रामसर
६६ ,, कन्हैयालालजी नेमीचन्दजी लोढ़ा मैसूर
६७ ,, चम्पालालजी छगनलालजी चोरड़िया मुकने (नासिक)
६८ श्रीमती धापूबाई ध्र हंसराजजी रांका नासिक सिटी
६९ श्रीमान् मूलचन्दजी गुलराजजी बोहतरा वाणियाविहीर
७० ,, भागचन्दजी दगडुलालजी पगारिया घरणगांव
७१ श्रीमान् अमोलकचन्दजी मोतीलालजी पगारिया घरणगांव
७२ ,, सुखलालजी दगडूरामजी ओस्तवाल पिंपलगांव बसारी
(नासिक)
७३ ,, स्व फूलचन्दजी गोलेच्छा की धर्मपत्नी रगूबाई चाहर्डी

७४ श्रीमान् लालचन्दजी कमलराजजी बागमार रायचूर
७५ ,, मदनलालजी नेमीचन्दजी पारख नाशिक सिटी
७६ ,, कस्तूरचन्दजी पारख की धर्मपत्नी सौ गंगाबाई वरखेडेनाशिक
७७ ,, स्व छगनलालजी पारख की धर्मपत्नी चांदाबाई नाशिक
७८ ,, स्व. वनेचन्दजी के स्मरणार्थ श्रीमान् भुंवरलालजी की
मातुश्री श्रीमती चम्पाबाई पगारिया पाथर्डी (नाशिक)
७९ श्री जैन दिवाकर मण्डल हस्ते श्री दगडूलालजी गांधी सुकेणे
८० श्रीमान् कल्याणजी वछराजजी ह. श्री प्राणजीवनजी बजेराजजी
मालेगांव (नासिक)
८१ ,, धरमचन्दजी रिखकरणजी मोदी उमराणे ,,
८२ ,, घोंडीरामजी की धर्मपत्नी श्रीमती जमनाबाई की तरफ से
हस्ते श्री रतनलालजी ओस्तवाल उमराणे ,,
८३ श्रीमती नानूबाई ध० ताराचन्दजी बाफणा होलनाथा धुलिया
८४ स्व. मुनि श्री मुल्तान ऋषिजी म. सा. की स्मृति में
श्रीमान् शंकरलालजी मोतीलालजी दूगड़ वडनेर
८५ श्रीमान् उदेरामजी हरकचन्दजी रेदासणी धिधी
८६ ,, पारसमलजी किसनलालजी कुचेरिया धुलिया (आश्वासन)
८७ श्रीमान् अध्यक्ष श्री व. स्था जैन श्रावक संघ नागपुर
८८ ,, सेठ चांदमलजी मुथा की धर्मपत्नी सौ रतनीबाई रायचूर
८९ ,, जवरीलालजी माणेकचन्दजी ललवाणी सौरी
९० ,, मांगीलालजी तनसुखदासजी सुराणा माढ़ेली
९१ ,, भवरलालजी हरिचंदजी बोथरा पोहणा
९२ ,, स्व. नगीनदासजी चत्रभुजजी कोठारी
ह. श्री नवलबेन नगीनदासजी कोठारी नागपुर
९३ ,, हीरालालजी पन्नालालजी काठेड़ खैरी
९४ ,, स्व. पुखराजजी सुराणा की धर्मपत्नी पुष्पादेवी वणी
९५ ,, मोहनलालजी मदनलालजी कोटेचा अडगांव
९६ श्रीमती सौ जड़ावबाई प्रेमराजजी चोरड़िया वणी (यवतमाल)

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१	विषय प्रवेश	१	१६	पुण्य-प्रताप	१३७
२	जन्म	६	१७	राजगृह का परित्याग	१४६
३	शिक्षा	२२	१८	धन्नापुर में	१५४
४	भाइयों की ईर्षा	३०	१९	जागीर प्रदान	१६८
५	बन्धु विरोध	३८	२०	लक्ष्मीपुर में	१७३
६	प्रथम परीक्षा	४५	२१	जागीर नदारद	१८९
७	पुनः परीक्षा	५५	२२	अन्त भला सो भला	१९३
८	तीसरी परीक्षा	६५	२३-२४	पूर्वभव	२०४
९	नगरसेठ धन्ना	७४	२५	परिवार की दीक्षा	२२९
१०	गृहत्याग	८२	२६	शालिभद्र की विरक्ति	२३२
११	धन्ना की निस्पृहता	९१	२७	अभिनिष्क्रमण	२६२
१२	राजमंत्री धन्ना	९८	२८	दीक्षा	२८१
१३	करनी का फल	१०३	२९	मुनि जीवन	२८५
१४	पुनः गृहत्याग	१११	३०	सर्वोच्चसाधनाऔरसिद्धि	३११
१५	परिणय	११९	३१	उपसंहार	३१८

धन्ना शालिभद्र

१
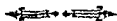
विषय-प्रवेश

"बड़े आये धन्ना सेठ !"

भारत के विभिन्न प्रान्तों में इस आशय की उक्ति आपको सुनने को मिलेगी। जब कोई मनुष्य अपनी धनाढ्यता, उदारता और दानवीरता की डींग मारता है, तो ताना देते हुए उससे यह कहा जाता है। क्या जैन और क्या जैनेतर, सभी वर्गों की जनता पर धन्ना सेठ का प्रभाव है। सब जानते हैं कि धन्ना सेठ उदारता और धनाढ्यता का प्रतीक है। परन्तु वास्तव में धन्ना सेठ कौन था ? क्या था ? कहाँ का था ? उसकी जीवनी में ऐसी क्या विशेषता थी कि वह जन-जन की जिह्वा पर आरूढ़ होगया है ? यह तथ्य जानने वाले विरले ही हैं। जैन परम्परा में धन्ना

सेठ का इतिवृत्त पूरी तरह उपलब्ध है और प्रायः न्यूनाधिक मात्रा में सब उससे परिचित भी हैं; किन्तु जैनेतर भाई धन्ना सेठ के नाम के अतिरिक्त उसके जीवन के विषय में प्रायः नहीं के बराबर ही जानते हैं।

जैसे भीम बल के प्रतीक माने जाते हैं, कुंभकर्ण घोर और दीर्घ निद्रा के प्रतीक समझे जाते हैं, राम न्याय व्यवस्था के प्रतीक स्वीकार किये गये हैं, उसी प्रकार धन्ना सेठ त्याग के प्रतीक हैं। जैसे भीम और राम आदि ने भारतीय जन-जन के मानस पर अपनी विशिष्टता की अमिट छाप अंकित की है, उसी प्रकार धन्ना सेठ ने भी अपने अनुपम, असाधारण और स्पृहणीय त्यागशीलता की छाप अंकित है। लम्बे-लम्बे हजारों वर्ष व्यतीत हो गए, फिर भी धन्ना सेठ का नाम आज भी अमर हैं! अतीत का गहन अंधकार उसे अपने भीतर नहीं समेट सका। वह आज भी जाज्वल्यमान दिनमणि की तरह चमक रहा है।

कौन नहीं चाहता अमर होना? शरीर से अमर न हो सकने की अवस्था में सभी लोग नाम से अमर होना चाहते हैं। अमर होने के लिए लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न भी करते हैं। कोई सन्तति की बदौलत अमरता चाहता है। कोई धर्मशाला, कूप, तालाब आदि बनवा कर और उस पर अपना सुन्दर नाम अंकित करवा कर अमर होना चाहता है। कोई किसी दूसरे उपाय का अवलम्बन करके युग युग में अपना नाम अमिट बनाने का प्रयत्न करता है।

मगर क्या धन्ना सेठ इस प्रकार अमर बना? नहीं। हम धन्ना सेठ की एक भी अगली पीढ़ी के नाम नहीं जानते। कोई

बनवाया हुआ स्थान भी हमें उपलब्ध नहीं है। फिर भी वह अमर है और साहित्य जगत् में ही नहीं, वरन् जनता के मानस में।

तथ्य यह है कि मनुष्य उत्तम से उत्तम भौतिक कृति के द्वारा यश एवं कीर्ति उपार्जन करके चिरकाल तक अपना नाम स्थिर रख सकता है; किन्तु भौतिक कृति अन्ततः विनाश को प्राप्त होती है और उसके साथ उसका वह यश भी अतीत के अन्धकार में विलीन हो जाता है। परन्तु जो महानुभाव भौतिक साधनों द्वारा नहीं, किन्तु अपने विमल व्यवहार से, उत्तम आचार से या श्रेष्ठतर चरित्र से नाम उपार्जन करते हैं, वे सदा के लिए स्मरणीय हो जाते हैं। धन्ना सेठ इसी अंतिम श्रेणी के महानुभाव थे।

जैसा कि अगले पृष्ठों से विदित होगा, धन्ना का समग्र जीवन बड़ा ही त्यागमय रहा है। वह बाल्यकाल से ही त्यागी रहे। अपने भाइयों और भौजाइयों के सन्तोष और सुख के लिए उन्होंने बार-बार लक्ष्मी को ठुकराया। मस्ती और बेफिक्री के साथ घर-बार छोड़कर, केवल अपना शरीर और सौभाग्य साथ लेकर चल दिये, मगर लक्ष्मी ने उनका पीछा न छोड़ा। वह राम के साथ सीता की तरह उनके साथ ही रही। अन्त में वह सर्वस्व-त्यागी बनने के साथ संसारत्यागी भी बन गये और मानवभव की चरम साधना करके शाश्वत सिद्धि के अधिकारी बने।

जिस पैसे को लोग परमात्मा से भी बढ़कर मानते हैं, जिसके लिए घोर से घोर अकृत्य, अन्याय और पाप करते भी नहीं हिचकते, जिसके लिए पिता अपने पुत्र के और पुत्र अपने पिता के प्राणों का ग्राहक बन जाता है, जिसके लिए मनुष्य विकराल दैत्य बनने में भी संकोच नहीं करता, जिसके लिए

मनुष्य अपनी आत्मा को बेच देता है, अपने समग्र जीवन को बर्बाद कर देता है और अपनी आत्मा को नरक का अतिथि बना लेता है, जिसे लोग जीवन का सर्वोत्कृष्ट साध्य समझते हैं, उसी पैसे को धन्ना सेठ ने पैरों की धूल समझा !

धन्ना सेठ ने जगत् को अपने चरित्र से दिखला दिया कि लक्ष्मी को बाँध रखने का सर्वसाधारण का तरीका गलत है। जिन उपायों से लोग धनवान् बने रहने का प्रयत्न करते हैं, वह उपाय विपरीत हैं। सच्चा उपाय वही है जो धन्ना सेठ ने किया था। धनवान् वह है जो धन का गुलाम नहीं बनता, बल्कि धन को अपना गुलाम समझता है। धन का दास धन से भी वंचित रह जाता है।

धन्ना सेठ बन्धु-प्रेम का सजीव उदाहरण है। अपने भाइयों के प्रति उसकी सहानुभूति चरम सीमा को स्पर्श करती जान पड़ती है। इस दृष्टि से भी धन्ना चरित्र आज के जन-जीवन के लिए अतीव आदर्श स्वरूप है।

धन्ना सेठ की जीवनी निस्सन्देह उच्च कोटि की है। भारतीय साहित्य में उसका बड़ा आदरणीय स्थान है। अनेक दृष्टियों से वह अनोखी है।

धन्ना के साथ शालिभद्र का स्पृहणीय जीवन भी संकलित है। शालिभद्र धन्ना के साले थे और साधनामय जीवन में उनके साथी भी रहे। दोनों का ब्यौरेवार वर्णन आगे दिया जा रहा है।

पाठकों को, कथारंभ करने से पहले, एक उपयोगी सूचना कर देना अप्रासंगिक न होगा। वह यह कि इस कथा को पढ़ते समय इसकी बाह्य घटनाओं की विचित्रता पर ही ध्यान न दें,

बल्कि कथा के अन्तरात्मा की ओर लक्ष्य दें। कथा की अन्तरात्मा ही उसका असली सार है। उसे पकड़ने का जो प्रयत्न करेंगे, वही इस कथा से वास्तविक लाभ उठा सकेंगे।

इस कथा का अन्तस्तत्त्व है—पुण्य के फल को प्रकट करना। धन्ना सेठ का चरित्र पुण्य का सजीव प्रतीक है; परन्तु पुण्य के स्वरूप को ठीक-ठीक समझने के लिए पाप का स्वरूप और फल भी समझना चाहिए। इस दृष्टि से धन्ना के भाइयों का चरित्र भी इसके साथ अंकित किया गया है।

'धन्ना' शब्द अति प्रचलित होने के कारण ही यहाँ प्रयोग में लाया गया है। इसका संस्कृत रूप 'धन्य' है, जिसका व्युत्पत्ति-अर्थ होता है—*धन से युक्त या धनवान्।*

इन्हीं 'धन्य' सेठ का जीवन यहाँ शब्दबद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

२

जन्म

प्रतिष्ठानपुर उस समय के भारत के मुख्य नगरों में से एक था। राजधानी होने के कारण उसकी शोभा अद्‌भुत थी। नगर के चारों ओर सुदृढ़ प्राकार बना था और प्राकार को घेरे हुए विशाल परिखा थी। इस कारण वहाँ के नागरिक निर्भय थे। उन्हें बाहरी आक्रमण का कोई भय नहीं था।

प्रतिष्ठानपुर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ बसाया गया था। बाजार में चौड़े-चौड़े राजपथ थे और जगह-जगह एक छोर से दूसरे छोर तक सीधी सड़कें थीं। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक वे सीधी चली गई थीं। इस कारण नगरवासियोंको आवागमन में असुविधा नहीं होती थी।

उस नगर में बड़े-बड़े व्यापारी सेठ साहूकार निवास करते थे। 'व्यापारे वसति लक्ष्मीः' अर्थात् व्यापार में ही लक्ष्मी का वास होता है, इस उक्ति के अनुसार वहाँ प्रचुर लक्ष्मी का वास था। जगह-जगह सुन्दर, मनोहर एवं दर्शकों के मन को मुग्ध कर लेने वाले भव्य प्रासाद खड़े थे।

प्रतिष्ठानपुर के राजा जितशत्रु थे। जितशत्रु का अर्थ है-शत्रुओं को जीत लेने वाला। इस नाम स ही राजा के बल पराक्रम और शौर्य का अनुमान किया जा सकता है। जितशत्रु राजा सज्जनों के लिए वत्सल थे तो दुष्टों, अन्यायियों और अत्याचारियों के लिए काल थे। उनका तेज और प्रताप अद्वितीय था। प्रजा पर उनकी धाक थी। इस कारण नगर में अनीति प्रायः नहीं हो पाती थी। वह दूध का दूध और पानी का पानी करने वाले थे। गरीब और अमीर सभी उन तक पहुँच सकते थे। उनके पास जाकर अपनी कष्ट-कथा कहने में किसी को कठिनाई नहीं होती थी।

इसी नगर में बड़े साहूकार रहते थे, जिनका नाम धनसार था। धनसार वहाँ के सभी श्रेष्ठियों में श्रेष्ठ अग्रगण्य थे। वह धनवान् थे। उनके पास अखूट लक्ष्मी का भंडार था, किन्तु अर्थपिशाच नहीं थे। धन का संग्रह ही संग्रह करते जाना उनके जीवन का ध्येय नहीं था। वह उदारचित्त और दानी थे। उदारता एवं दानशीलता के कारण चहुँ अ र उनका यश फैल गया था। कहा है:—

दाणेण फुरइ कित्ती।

अर्थात्—दान देने से कीर्त्ति का विस्तार होता है।

दानेन भूतानि वशीभवन्ति,
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै—
र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

अर्थात्—दान से सभी प्राणी वशीभूत हो जाते हैं। दान एक अमोघ वशीकरण मंत्र है। वह वैरियों को भी वशवर्त्ती

बना देता है। दान के प्रभाव से वैर भी मिट जाता है। दान में वह शक्ति है कि पराये भी अपने हो जाते हैं। दान सभी संकटों को दूर कर देता है।

यह तो दान का बाहरी प्रभाव है, पर उसका आन्तरिक प्रभाव भी कम नहीं। दान से आत्मा में त्यागशीलता आती है, अपनी वस्तु पर से ममता त्यागने का अवसर मिलता है। अन्तःकरण में उत्पन्न हुई अनुकम्पा की भावना चरितार्थ होती है। उससे दाता को अपूर्व आह्लाद और परितोष प्राप्त होता है।

दान से पारलौकिक फल की भी प्राप्ति होती है। यह कहने में भी अत्युक्ति नहीं होगी कि परलोक में सांसारिक सुख-समृद्धि पाने का एक प्रधान साधन दान है।

ऐसी स्थिति में धनसार श्रेष्ठी अपने दान के प्रभाव से अगर दूर-दूर तक विख्यात हो गये तो क्या आश्चर्य है ?

सेठ धनसार को पुण्य के योग से शीलवती पत्नी का योग मिला था। गृहस्थ जीवन की सुख शान्ति में पत्नी का जो महत्वपूर्ण स्थान है, उसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। पत्नी 'अर्धांगिनी' कहलाती है. अर्थात् वह पुरुष का आधा अङ्ग है। इससे स्पष्ट है कि पति और पत्नी में पूरी अनुरूपता हो, समानता हो, तो ही गृहस्थजीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है। धनसार की पत्नी शीलधर्म का पालन करने वाली, सतीत्व को प्राणों से भी अधिक प्यार करने वाली, रूपवती, पति के सुख में अपना सुख और दुःख में अपना दुःख मानती थी। हर प्रकार से पति की सुख-सुविधा का प्रयत्न करती हुई भी वह अन्य पारिवारिक जनों की उपेक्षा नहीं करती थी। सद्गृहिणी पर

परिवार का जो उत्तरदायित्व होता है, उसे वह बखूबी जानती थी और निभाती भी थी। उसका हृदय इतना उदार था कि उसे परिवार के सुख को देख देख कर ही सुख की अनुभूति होती थी।

गृहजीवन की एक बड़ी साधना यही है कि मनुष्य परिवार में रहता हुआ अपने निरपेक्ष व्यक्तित्व को भूल जाय और समस्त परिवार को ही अपना समझ कर व्यवहार करे। अपने से भिन्न व्यक्तियों को जब अपने ही रूप में समझ कर उनके सुख-दुःख को अपना ही सुख-दुःख समझा जाता है तो अन्तस्तल में विराट भावना का उदय होता है। यह विराट भावना बढ़ती हुई जब प्राणी मात्र को स्पर्श करने लगती है, तब अहिंसा की सिद्धि होती है। इस प्रकार पारिवारिक जीवन विश्व व्यापी अहिंसा की साधना करने की पाठशाला है।

सेठ धनसार की पत्नी में यह विशेषता आ गई थी। अतएव अपने पति ही नहीं, वरन् समस्त परिवार को आत्मा के समान समझकर प्यार करती थी। ऐसी वत्सल्यमूर्ति नारी अपने घर का शृङ्गार बन जाय, यह बात तो स्वाभाविक ही है।

लोग अधिकार चाहते हैं, सत्ता हस्तगत करने के लिए लालायित रहते हैं और प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए सैकड़ों उचित-अनुचित प्रयत्न करते हैं। मगर उन्हें समझना चाहिए कि अधिकार सत्ता और प्रभुता, कर्त्तव्य के साथ संकलित हैं। निष्कपटभाव से, प्रामाणिकता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाला स्वतः सत्ताधीश बन जाता है। उसका कर्त्तव्य उसे स्वयं अधिकार प्रदान कर देता है। उसे प्रभुत्व की याचना नहीं करनी पड़ती और न उसके लिए तरह-तरह की चालें चलनी

पड़ती हैं। कर्त्तव्यपालन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली सत्ता या अधिकार ही मनुष्य को महत्ता प्रदान करते हैं। इस तरीके से प्राप्त हुई महत्ता स्थाई होती है और दूसरों के चित में उससे ईर्षा का भाव उदित नहीं होता। ऐसा होने पर भी अधिकांश लोग कर्तव्य तो करना नहीं चाहते, परंतु अधिकार चाहते हैं।

कर्तव्यपालन किये बिना अधिकार की अभिलाषा करना, उचित मूल्य चुकाये बिना वस्तु को हथिया लेने के समान अप्रामाणिकता है। आज हमारे यहाँ इस प्रकार की अप्रामाणिकता का सब जगह बोलबाला है। क्या सामाजिक क्षेत्र में और क्या राजनीतिक क्षेत्र में, यहाँ तक कि धार्मिक क्षेत्र में भी; सत्ता लोलुपता बेहद बढी हुई है। कर्तव्यपालन से लोग जी चुराना चाहते हैं परंतु सत्ता के लोभ का संवरण नहीं कर सकते। इस वृत्ति से कितने ही प्रकार के अवांछनीय संघर्ष उत्पन्न हो रहे हैं।

धनसार सेठ की पत्नी ने न जाने कहाँ से यह मर्म समझ लिया था वह परिवार के प्रति कर्तव्य पालनही को मुख्य समझती थी। उसका फल यह हुआ कि वह स्वतः अपने परिवार का शृंगार समझी जाने लगी। सब उसका आदर करते थे। अपने घर की चहारदीवारी में उसका राज्य था।

धनसार सेठ के तीन लड़के थे। सब से बड़े का नाम धनदत्त, मँझले का नाम धनदेव और छोटे का नाम धनचंद्र था तीनों के विवाह हो चुके थे। इस प्रकार उनका घर भरा-पूरा था। सम्पत्ति की प्रचुरता थी। किन्तु वह देख रहे थे कि लगातार उनकी सम्पत्ति क्षीण हो रही है। उसे बढ़ाने का जो भी प्रयत्न किया है, वह विपरीत परिणाम उत्पन्न करता है। कोई दाव सीधा नहीं पड़ता, बल्कि उलटा ही पड़ता है। सम्पत्ति की वृद्धि के लिए

उन्होंने जो भी व्यापार किया, उससे हानि ही उठाई। अनेक बार प्रयत्न करने पर भी जब धनसार को विफलता ही मिली तो उन्हें चिंता होने लगी। धनसार मन ही मन उदास रहने लगे। वह सोचते—*क्या कारण है कि दिनों दिन आर्थिक अवनति होती* चली जा रही है ? खूब सोच-समझ कर काम करता हूँ, फिर भी हर बार व्यापार में घाटा ही क्यों पड़ता है ? पहले भी इसी दिमाग से सोचता था। तब घाटा नहीं होता था। अब भी दिमाग वही है; मगर नफा नहीं होता ! लगातार घाटा ही घाटा होता चला जा रहा है !

प्रत्येक कार्य के लिए अनेक कारणों की आवश्यकता होती है। एक ही कारण से कोई भी कार्य नहीं होता। अंकुर का कारण बीज समझा जाता है, परन्तु क्या अकेला बीज ही अंकुर को उत्पन्न कर सकता है ? ऐसा होता तो कोठे में पड़े हुए बीजों में से भी अंकुर फूट निकलते ! पर नहीं, यह संभव नहीं है। अंकुर रूप कार्य को उत्पन्न करने के लिए और भी अनेक कारणों की आवश्यकता होती है। खेत चाहिए, पानी चाहिए, धूप चाहिए। तब कहीं अंकुर उत्पन्न होता है।

अच्छा, खेत जोत कर उसमें बीज डाल दिया जाय, पानी भी सींच दिया जाय, धूप भी गिर रही हो, तथा और भी सहायक कारण सब विद्यमान हों, मगर बीज दस वर्ष पुराना हो तो क्या वह अंकुर को उत्पन्न कर देगा ? नहीं, अंकुर की उत्पत्ति में बाहर दिखाई देने वाले कारणों के अतिरिक्त एक कारण और अपेक्षित होता है। वह अन्तरंग कारण कहलाता है। वही मुख्य कारण है। अन्तरंग कारण की विद्यमानता में ही कार्य की उत्पत्ति हो सकती है। उसके अभाव में लाख प्रयत्न करने पर भी कार्य नहीं हो सकता। अंकुर की उत्पत्ति में वह अन्तरंग कारण

है—बीज की जननशक्ति। बीज में एक नियत समय तक ही अंकुरोत्पादन की शक्ति रहती है। उसके पश्चात् वह शक्ति क्षीण हो जाती है। शक्ति क्षीण हो जाने पर भी बीज साधारणतया पहले जैसा ही दिखाई देता है, मगर आन्तरिक शक्ति न रह जाने के कारण वह कार्यकारी नहीं होता।

बीज और अंकुर यहाँ दृष्टांत मात्र है। प्रत्येक कार्य के संबंध में यही बात समझनी चाहिए। कोई भी कार्य आन्तरिक कारण के अभाव में बाह्य कारण मात्र से या बाह्य कारणों के अभाव में आन्तरिक कारण मात्र से उत्पन्न नहीं हो सकता।

साधारण जन इस तथ्य को या तो समझते नहीं, या समझ कर भी भूल जाते हैं। इस कारण उन्हें विफलता मिलती है, संताप का पात्र बनना पड़ता है और घोर निराशा का सामना करना पड़ता है।

धन की प्राप्ति भी कार्य है। उसके भी अनेक कारण हैं बाह्य कारणों को तो सभी जानते हैं, पर उसका आन्तरिक कारण पुण्योदय है। मनुष्य पुरुषार्थ करे, परिश्रम करे और सभी बाह्य कारण जुटा ले, तो भी आन्तरिक कारण के बिना उसे धन प्राप्ति नहीं हो सकती। अतएव जो मनुष्य धनी बनना चाहता है, उसे पुण्य का उपार्जन करना ही पड़ेगा। पुण्य का उपार्जन किये बिना धन प्राप्ति का उसका मनोरथ उसी प्रकार असफल सिद्ध होगा, जैसे अंकुरजनन शक्ति से विहीन बीज बोने वाले किसान का।

हाँ, यहाँ एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। जैसे बीज बोते ही तत्काल अंकुर नहीं फूट निकलता, वरन् उचित समय पर ही अंकुर उगता है और उगने के पश्चात् निश्चित काल मर्यादा में ही वह फल उत्पन्न करता है, उसी प्रकार पुण्य भी

तत्काल फल नहीं दे सकता। उसकी भी एक मर्यादा है और उसी समय वह फल प्रदान करता है।

साधारण किसान भी यह बात भली भाँति जानता है कि वर्त्तमान में खाने के लिए पहले बोया हुआ बीज चाहिए। वर्त्तमान में बोया हुआ बीज भविष्य में फल देगा। इसी प्रकार पूर्वोपार्जित पुण्य इस समय भोगा जाता है और इस समय किया हुआ पुण्य भविष्य में फल देता है।

कई लोग यह सोचते हैं कि इस संसार में हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, छल-कपट आदि पाप करने वाले चैन की गुड्डी उड़ाते हुए देखे जाते हैं। इसके विरुद्ध प्रामाणिकता, न्याय-नीति और धर्म के अनुसार आचरण करने वाले दीन-हीन अवस्था में दिखाई देते हैं। अगर पाप का परिणाम अशुभ और दुःख रूप होता है तो पापी क्यों सुखी है? अगर पुण्य का फल शुभ और सुख रूप होता है तो धर्मात्मा जन क्यों दुःखी देखे जाते हैं? इस विपरीतता से तो यही जान पड़ता है कि पुण्य पाप का आचरण निष्फल है।

ऐसा सोचने वालों का उपर्युक्त कथन से समाधान हो जाना चाहिए। किसी किसान ने गत वर्ष बीज बोया। अच्छी फसल आई और उसने अपने घर में अनाज का ढेर कर लिया अब वह वर्त्तमान में फसल नहीं बो रहा है पिछली फसल का अनाज खा रहा है और मौज कर रहा है।

दूसरा किसान इस समय फसल बो रहा है, पर उसने गत वर्ष फसल नहीं बोई थी। अतएव वर्त्तमान में बोने पर भी उसके पास पेट भर खाने को अन्न नहीं है। वह भूख का कष्ट उठा रहा है।

इन दोनों किसानों को देखकर तीसरा मनुष्य कहता है– खेती बोना वृथा है; उससे कोई लाभ नहीं होता। देखो, जिसने खेती नहीं बोई है वह भर पेट भोजन करता है; उसके पास अन्न का ढेर है और वह गुल-छर्रे उड़ा रहा है। इसके विपरीत खेती बोने वाला बेचारा भूखा मर रहा है। ऐसी स्थिति में खेती बोने से लाभ ही क्या है ?

कहिए, दोनों किसानों की स्थिति का अवलोकन करके इस प्रकार का नतीजा निकालने वाला मनुष्य क्या आपकी समझ में सही बात सोच रहा है ? ऐसा सोचने वाले को आप क्या कहेंगे ?

आप कहेंगे—पूर्वसंचित अनाज के बल पर मौज उड़ाने वाला और वर्तमान में खेती न करने वाला किसान आगे चल कर दुखी होगा। जब उसका पूर्व संचय समाप्त हो जायगा, तब वह क्या खाएगा ? और इस समय भूखा मरने वाला किसान भविष्य में, फसल आने पर, आनन्द भोगेगा। पहले किसान का आनन्द पहले की खेती का फल है। यह समझना भ्रमपूर्ण है कि पहला किसान खेती न करने के कारण सुखी है और दूसरा खेती करने के कारण दुखी है।

ठीक यही बात पुण्य और पाप के फल के सम्बन्ध में समझी जा सकती है। जिन्होंने पूर्वभव में पुण्य का उपार्जन किया है, वे इस भव में उसका फल भोग रहे हैं। इस भव में अगर वे पाप का आचरण करते हैं तो यथासमय उसका भी फल भोगेंगे। इसी प्रकार जिन्होंने पहले पाप का आचरण किया है, उन्हें उसके फलस्वरूप दुःख भुगतना पड़ रहा है; परंतु अगर वे

इस समय धर्म का आचरण करते हैं तो उसका फल भी उन्हें यथासमय अवश्य मिलेगा।

पुण्य और पाप के परिणाम में कदापि व्यत्यय नहीं हो सकता। अग्नि से शीतलता प्राप्त हो सके तो पाप से सुख हो सकता है; इसी प्रकार जल अगर जलाने लगे तो पुण्य से दुःख की प्राप्ति हो सकती है।

इस विवेचन का अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि पुण्य अथवा पाप आजीवन स्थिर रहते हैं। नहीं, वह समय-समय पर परिवर्तित होते रहते हैं।कौन-सा पुण्य कर्म या पापकर्म कब उदित होगा अथवा कब समाप्त हो जायगा, यह नहीं कहा जा सकता। मगर एक बात अवश्य है। वह यह कि जीव अपने विशुद्ध परिणामों के द्वारा पापकर्म को भी पुण्यकर्म के रूप में पलट सकता है। लम्बी स्थिति को छोटी भी बना सकता है। तीव्र फल देने वाली कर्म की शक्ति को मन्द फल के रूप में बदल सकता है। मगर ऐसा करने के लिए प्रकृष्ट प्रयत्न करना आवश्यक है और अशुभ विचारों एवं संकल्पों का परित्याग करके दृढ़ता पूर्वक शुभ अध्यवसायों में स्थिर होना भी आवश्यक है। ऐसा करने पर कर्म में परिवर्त्तन होना संभव है।

धनसार सेठ पुण्य और पाप के विपाक को भली भांति जानते थे, अतः समझ गये कि बाह्य प्रयत्न पहले के समान करने पर भी व्यापार में हानि हो रही है और लक्ष्मी क्षीण होती जाती है तो, अंतरंग कारण पाप की ही प्रबलता समझनी चाहिए। इस पाप के फल से बचने के लिए हाय हाय करना वृथा है। रोने और छाती पीटने से भी पाप का फल अन्यथा नहीं हो सकता। आर्त्तध्यान करने से पाप पुण्य नहीं बनता।

बल्कि इससे तो पाप की वृद्धि होती है। जैसे आग की ज्वाला से बचने के लिए दूसरी आग की ज्वालाओं में प्रवेश करना विवेकशीलता नहीं, उसी प्रकार धन-हानि, रोग, अनिष्ट संयोग आदि पाप के फल प्राप्त होने पर आर्त्त रौद्र ध्यान का पाप करना उचित नहीं है। विवेकवान् पुरुषों का मुद्रालेख यह होता है:—

होकर सुख में मग्न न फूलें,
दुःख में कभी न घबरावें।

किसी ने ठीक ही कहा है:—

गते शोको न कर्त्तव्यो, भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्त्तमानेषु कार्येषु, वर्त्तयन्ति विचक्षणाः ॥

अर्थात्—भूतकाल में जो हो चुका है, उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए और भविष्य की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। बुद्धिमान् पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे वर्त्तमान कर्त्तव्यों में ही ठीक तरह बर्त्ताव करें।

बात सोलह आने सत्य है। जो घटना घट चुकी है, उसके लिए अब मातम मनाने से क्या लाभ होगा? जो पाप कर्म किया जा चुका है, उसका फलोदय होने पर शोक करने से क्या लाभ है? इसी प्रकार भविष्य की चिंता करना व्यर्थ है। जो मनुष्य अपने वर्त्तमान को सुधार रहा है, उसका भविष्य सुधरा हुआ ही समझिए। भविष्य का निर्माण वर्त्तमान में ही होता है। अतएव भूत-भविष्य की चिंता छोड़ कर वर्त्तमान को सुधारना ही श्रेयस्कर है।

इस प्रकार विचार कर धनसार सेठ ने चिंता का त्याग किया और धर्म की शरण ग्रहण की। अब वह धन का खजाना खाली होते देख पुण्य का खजाना भरने में लग गये। उन्होंने सोचा-धन को प्राप्त करने का एक ही मार्ग है–पुण्य का संचय करना। पुण्य होगा तो धन आप ही आप भागा हुआ आएगा। अतएव डालियों और पत्तों पर पानी छिड़कने के बदले मूल को ही सींचना उत्तम है। मूल सींचा जायगा तो डालियाँ और पत्ते आप ही हरे भरे हो जाएंगे। पुण्य होगा तो धन आ ही जायगा! इस विचार से उन्हें शांति मिली। उनकी उद्विग्नता कम हो गई।

धनसार सेठ की आर्थिक क्षति का कारण वास्तव में उनके तीनों लड़के थे। धनदत्त, धनदेव और धनचन्द्र तीनों हीनपुण्य थे और इन्हीं के दुर्भाग्य के फल स्वरूप धनसार की सम्पत्ति क्षीण होती जाती थी। मगर धनसार इस तथ्य को समझ नहीं पाते थे। वह अपने ही दुर्भाग्य को इसका कारण मानते थे। तथापि शांति धारण किये हुए थे और अपना अधिक से अधिक समय धर्मध्यान में व्यतीत करते थे।

कुछ दिनों के पश्चात् धनसार की पत्नी गर्भवती हुई। गर्भ और माता का सम्बंध अत्यन्त प्रगाढ़ होता है। अतएव माता की भावना का गर्भस्थ जीव पर प्रभाव पड़ता है और गर्भस्थ जीव का माता की भावना पर असर होता है। इस दोहरे प्रभाव को प्रमाणित करने वाले अनेक चरित्र प्रसिद्ध है।

जब कोई पुण्यशाली पवित्र जीव गर्भ में आता है तो माता की भावना धर्म करने की होती है। पावन विचारों का उसके अंतःकरण में संचार होता है। हृदय में हर्ष, उल्लास और प्रमोद की लहरें उठती हैं। अशुभ विचार उसके पास भी नहीं

फटकते। परोपकार और सेवा करने की इच्छा जागृत होती है। दान, शील, तप और सद्भावना की ओर रुचि एवं प्रीति जागृत होती है। इस प्रकार के लक्षणों से सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि गर्भस्थ बालक किस प्रकार की प्रकृति का होगा ?

धनसार की पत्नी जब सगर्भा हुई तो उसके हृदय में आनंद और हर्ष उछलने लगा। उसकी भावना बहुत श्रेष्ठ हो गई। धर्म-प्रेम की विशिष्ट वृद्धि हुई। माता बहुत प्रसन्न रहने लगी।

यही नहीं, गर्भस्थ जीव के पुण्य-प्रभाव से डगमगाता हुआ धनसार सेठ का व्यापार सँभल गया। धन की लगातार जो क्षति होती जा रही थी, वह रुक गई। व्यापार में लाभ होने लगा। धनसार को ऐसा प्रतीत होने लगा कि पुराने दिन फिर आ रहे हैं। दुर्भाग्य पलट गया है। उनके चित्त में भी आनन्द, उत्साह और स्फूर्ति जागृत होने लगी। उनकी प्रतिष्ठा में बीच में जो कमी आ गई थी, वह भी रुक गई। अब लोग उनका आदर सन्मान उसी प्रकार करने लगे, जैसा पहले करते थे। सब प्रकार से आनंद मंगल होने लगा।

सच है, पुण्य का प्रभाव अचिन्त्य है। पुण्य ही इस लोक और परलोक में सच्चा सहायक और सुखदाता होता है। ठीक ही कहा है—

पुण्य प्रबल संसार में, पुण्य को यह सब माया है।
सुख सम्पत्ति पावे वही जिसने पुण्य कमाया है।
मानव-जन्म आर्य भूमि और उत्तम कुल को पाता है।

दीर्घायु परिपूर्ण इन्द्रियाँ, तन निरोग मिल जाता है।
सभी खेल है पुण्य के, ज्ञानी जन फर्माया है ।। १ ।।

मिले पुत्र पुण्यवान् इसी से. पतिव्रता घर नारी है।
करे रंक को राज पुण्य ही, बिना पुण्य के ख्वारी है।
करे कदर कोई नहीं, जो नहीं पुण्य कमाया है ।। २ ।।

तीर्थंकर चक्री पुरुषोत्तम, आदि पद मिल जाता है।
वन में रन में शत्रु जल में, ये ही तुझे बचाता है।
चरण पड़े पुण्यवान् के, जहाँ निधान प्रकटाया है।।३।।

पुण्य की ऐसी महिमा है। वास्तव में संसार में जो भी इच्छित, मनोहर, सारभूत और श्रेष्ठ पदार्थ हैं, सभी पुण्य के योग से प्राप्त होते हैं।

धनसार सेठ के घर में पुण्यात्मा जीव का आगमन हुआ था। अतएव उनके दिन सहसा फिर गये।

सवा नौ मास समाप्त होने पर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और योग में एक अतिशय सुन्दर बालक का जन्म हुआ। बालक के जन्म का शुभ संवाद पाकर धनसार को असीम प्रसन्नता हुई। उन्होंने धूमधाम से जन्मोत्सव मनाया। मंगल-वाद्यों की मधुर ध्वनि ने दिशाओं में अपूर्व माधुर्य प्रसारित कर दिया। हवेली के भीतर नगर की नवेली नारियों ने अपने मंगल-मय गानों से हर्ष का निर्झर बहा दिया।

सद्यः संजात शिशु का नाल काट कर गाड़ दिया जाता है। यहाँ नाल गाड़ने के लिए जो जमीन खोदी गई तो एक अद्भुत घटना घटी। जमीन में गड्हा करने वाले की कुश जब गहराई में जा पहुँची तो अचानक 'खन्न'' की ध्वनि सुनाई दी। खोदने

वाले को कुछ विस्मय हुआ। उसने फिर ध्यानपूर्वक कश लगाई तो फिर वही ध्वनि सुनाई दी। अब उसे निश्चय हो गया कि इस जगह कुछ न कुछ विशेष वस्तु गड़ी है।

खोदने वाले ने खोदना बंद कर दिया। कुश उसी स्थान पर छोड़ कर वह धनसार के पास पहुँचा। उस समय धनसार अपनी बैठक में बैठे थे। उनके बहुत से मित्र, स्वजन और हितैषी उन्हें घेरे हुए थे और सब के सब प्रसन्नता की मुद्रा में थे।

खोदने वाला नौकर समझ गया था कि इस जगह कोई विशिष्ट वस्तु गड़ी हुई है। इसी बात की सूचना देने के लिए वह अपने स्वामी के पास गया था; परन्तु बहुत से आदमियों के साथ उन्हें बैठा देख वह द्वार पर ही ठिठक गया। वह अर्थ दृष्टि से धनसार की ओर देखने लगा, पर मुख से कुछ कह न सका। बैठक में बैठे सभी लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। तब धनसार ने कहा—'क्या है, किसलिए आये हो?'

नौकर—आपसे एक जरूरी बात कहनी है।

धनसार—कहो न?

नौकर—एकांत में कहने की बात है!

धनसार बैठक से बाहर आये तो उसने सब हाल उन्हें बतलाया। धनसार भी वहाँ पहुँचे और ज्यों ही कुछ ज्यादा जमीन खुदवाई कि एक निधान निकल आया। धनसार ने मन ही मन कहा—

'चरण पड़े पुण्यवान् के जहाँ निधान प्रकटाया है।"

इस घटना से धनसार को और उनके सभी हितैपियों को अपार प्रसन्नता हुई। निधान मिलने की प्रसन्नता तो थी ही, साथ ही पुत्र के सौभाग्यशाली होने की प्रसन्नता और भी अधिक थी।

जब से पुत्र गर्भ में आया था तभी से धनसार के यहाँ धन की वृद्धि होने लगी थी। जन्म हुआ तो धन का निधान प्राप्त हुआ। इन सब बातों को ध्यान में रख कर नवजात बालक का नाम 'धन्य' रक्खा गया जो बोलचाल की भाषा में 'धन्न' और 'धन्ना' हो गया।

यद्यपि नाम लोकव्यवहार की सुविधा के लिए रक्खा जाता है और उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति के गुण का द्योतक होना ही चाहिए। तथापि प्राचीन काल में गुण का विचार करके ही प्रायः नामकरण किया जाता था। 'धन्ना' यह गुणनिष्पन्न नाम है, जिसकी पुष्टि आगे की घटनाओं से भी हो जायगी।

धन्य ने जन्म लेते ही अपने माता-पिता को 'धन्य' बना दिया।

३

शिक्षा

धन्नाकुमार पूर्वोपार्जित पुण्य-राशि लेकर अवतरित हुआ था। अतएव उसका रूप, आकार आदि सभी कुछ मनोहर था। उसे देखने वाला एक बार तो मुग्ध हुए बिना नहीं रहता था। सुन्दर चेहरा था। विशाल नेत्र और चौड़ा ललाट था। उसके चेहरे पर कुछ विचित्र ही सौंदर्य झलकता था। सभी अंगोपांग सुन्दर और सुडौल थे। वह ऐसा जान पड़ता, मानो विधि ने अपना समग्र चातुर्य खर्च करके, भाग्यशाली और सुन्दर बालकों का एक आदर्श नमूना बनाया हो!

जिसकी दृष्टि बालक धन्ना पर एक बार पड़ जाती, वह आनंद पाये बिना न रहता। हठात् उसकी दृष्टि थोड़ी देर के लिए उसके भोले-भाले, भव्य चेहरे पर गड़ जाती थी। वास्तव में जिसने धन्ना के मनोज्ञ मुखमण्डल को देखा, वह उसे भूल न सका। ऐसा सुन्दर बालक था वह!

अपनी संतान पर माता-पिता को सहज ही प्रीति होती है। चाहे संतान सुन्दर हो या असुन्दर, माता-पिता की स्नेह

की प्रगाढ़ता के कारण वह सुन्दर ही प्रतीत होती है। किन्तु जब सन्तान वास्तव में ही सुन्दर होती है, तब तो कहना ही क्या है!

धन्ना के माता-पिता इस असाधारण बालक को पाकर निहाल हो गये। उन्हें वह प्राणों से भी अधिक प्रिय प्रतीत होने लगा।

अनेक माता-पिता संतान उत्पन्न करके ही अपने को कृतार्थ समझ लेते हैं। अपना निपूतापन दूर हुआ, यही समझ कर संतोष धारण कर लेते हैं। बालक को अपने मनोरंजन का साधन समझते हैं और अपनी ही प्रसन्नता के लिए उसे लाड़-प्यार करते तथा खिलाते-पिलाते हैं। यह कहना तो मानव-स्वभाव की अवहेलना करना होगा कि माता-पिता अपने सन्तान को अपने सुख की सामग्री न समझें; किन्तु उनका कर्त्तव्य यह अवश्य है कि वे ऐसा करते समय बालक के जीवन के प्रति अपने वास्तविक उत्तरदायित्व को न भूल जाएँ। बालक को जन्म देना ही माता-पिता के उत्तरदायित्व की समाप्ति नहीं है, वरन् बालक जो जन्म देने से उसका उत्तरदायित्व आरम्भ होता है। बालक को सुशिक्षा और सुसंस्कार देना माता-पिता का प्रधान कर्त्तव्य है। जो माता-पिता अपनी सन्तान के सर्वाङ्गीण विकास का भार नहीं संभाल सकते, उन्हें सन्तानोत्पत्ति का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। इस तथ्य को अगर समझ लें तो हमारे यहाँ बालकों की जो दुर्दशा आजकल हो रही है, वह न हो।

आज इस देश में बालकों के जीवन के प्रति घोर उपेक्षा का व्यवहार होता है। अधिकांश अशिक्षित माता-पिता तो उनकी शिक्षा का विचार ही नहीं करते। उन्हें उन्हीं के भाग्य पर छोड़

देते हैं और बनते-बनते जैसे भी वे बन जाते हैं सो बन जाते हैं। भाग्य से अच्छे बन गये तो ठीक, अन्यथा बुरी संगति में पड़ कर, संस्कारहीन, शिक्षाहीन, विवेकहीन होकर अपना जीवन भी सत्यानाश कर डालते हैं और माता-पिता की भी अपकीर्त्ति के कारण बनते हैं। ऐसी सन्तान समाज और देश के लिए भी हानि का ही कारण बनती है।

परन्तु धनसार सेठ उन लोगों में नहीं थे जो बालकों को अपने भाग्य पर छोड़ देते हैं। उन्होंने बालक धन्ना के जीवन-निर्माण के संबंध में विचार किया। उसकी सार-संभाल के लिए सुशिक्षिता धायों की नियुक्ति की। धायें ऐसी नियुक्त की जो अपने-अपने कार्य में निष्णात थीं और स्वास्थ्य रक्षा के नियमों से भलीभाँति परिचित थीं। उन्हें बाल मानस का भी गंभीर ज्ञान था। वह स्नेहशील थीं। ऐसी धायों के संरक्षण में रहता हुआ और द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति अपनी जीवन-कलाओं का प्रतिदिन विकास करता हुआ बालक धन्ना आठ वर्ष का हो गया।

प्राचीनकाल में आठ वर्ष की आयु विद्याभ्यास प्रारम्भ करने के योग्य समझी जाती थी। अतः धन्ना के माता-पिता ने उसे विद्याभ्यास के योग्य समझकर कलाचार्य के पास भेज दिया। कलाचार्य न केवल अक्षरविद्या में ही, अपितु बहत्तर कलाओं में निष्णात थे। अतएव उन्होंने धन्ना को सभी कलाओं का अभ्यास करा दिया।

धन्ना पूर्वसंचित पुण्य का भंडार साथ लाया था। अतएव बचपन से ही उसकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी। अपनी पैनी बुद्धि से गहन से गहन तत्त्व को भी वह चटपट ग्रहण कर लेता था।

न समझने में उसे आयास होता और न समझाने में कलाचार्य को ही। धन्ना प्रकृति से ही विनयशील भी था। वह अपने विद्या-गुरु का अत्यंत आदर करता था और उन्हें अपना परमोपकारक मानता था। इस प्रकार धन्ना सोने में सुगंध की कहावत चरितार्थ कर रहा था।

यों तो प्रत्येक शिक्षक का यही कर्त्तव्य है कि वह अपने सभी शिष्यों को समान दृष्टि से देखे और सबको समान भाव से शिक्षा दे; परन्तु मनुष्य आखिर मनुष्य ही है। नैसर्गिक दुर्बलता उसमें रहती ही है। माता-पिता को भी अपने सुन्दर और सदाचारी एवं विनीत पुत्र पर अपेक्षाकृत अधिक ममता एवं प्रीति देखी जाती है तो शिक्षक इसका अपवाद कैसे हो सकता है? बुद्धिमान् शिष्य पर उसका अनुराग स्वभावतः अधिक हो जाता है। बुद्धिमान् न होने पर भी अगर कोई शिष्य विनयवान् है तो वह भी शिक्षक के चित्त को अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित कर लेता है। ऐसी स्थिति में जो शिष्य बुद्धि और विनय-दोनों में असाधारण हो उसका तो कहना ही क्या है! वह शिक्षक के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना रह नहीं सकता। यही कारण था कि धन्ना ने कलाचार्य के हृदय को पूरी तरह जीत लिया था। कलाचार्य अपने अनेक शिष्यों में धन्ना को सर्वश्रेष्ठ सुपात्र समझते थे। इस प्रकार का भाव उत्पन्न हो जाने के कारण कलाचार्य ने धन्ना के सामने अपना हृदय और मस्तिष्क पूरी तरह खोल कर रख दिया। सभी विद्याओं के गुह्य से गुह्य मर्म उसे समझा दिये और बड़ी सावधानी के साथ धन्ना ने उन्हें ग्रहण कर लिया। अल्पकाल में ही धन्ना बहत्तर कलाओं में पारंगत हो गया।

धन्ना की शिक्षावधि और साथ ही तत्कालीन, अन्य

कुमारों की भी शिक्षाविधि के सम्बन्ध में हमारे प्राचीन साहित्य में जो उल्लेख मिलते हैं, वे अनेक दृष्टियों से हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। प्राचीनकाल की शिक्षाप्रणाली पर उनसे अच्छा प्रकाश पड़ता है।

धन्ना की शिक्षाविधि से स्पष्ट जान पड़ता है कि उस समय में गुरुकुल-प्रणाली का प्रचलन था और वह प्रणाली बहुत उत्तम थी। उस समय राजाओं एवं बड़े-बड़े श्रीमंतों के पुत्र भी, आजकल की तरह विद्याभ्यास नहीं करते थे। उन्हें गुरु के आश्रम में ही रहना पड़ता था, वहाँ के सर्वसाधारण शिष्यों के लिए समान रूप से बने नियमों का पालन करना पड़ता था। सादा, सात्विक, त्यागमय और तपोमय जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इसका एक सुन्दर परिणाम यह होता था कि अमीरों के लड़के भी गरीबों की स्थिति से अपरिचित नहीं रहते थे। गरीबों और अमीरों के बीच कोई दीवार नहीं खड़ी हो सकती थी और आज जैसा वैषम्य उस समय नहीं पनपने पाता था।

गुरुकुल प्रणाली की एक अनिवार्य शर्त थी—स्वालम्बन। प्रत्येक विद्यार्थी को वहाँ स्वाश्रयी बनने का प्रयोगात्मक पाठ पढ़ाया जाता था विद्यार्थी विद्याध्ययन करते समय ही स्वावलम्बी नहीं होते थे, वरन् उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाती कि वे जीवन-पर्यन्त अपने ही पैरों पर खड़े रह सकें।

बहत्तर कलाओं में सभी प्रकार के जीवनोपयोगी उद्योगों का समावेश हो जाता था। मिट्टी के बर्तन बनाना, खेती करना वस्त्र बुनना आदि-आदि समाजोपयोगी सभी कलाएँ उस समय की पाठ विधि में सम्मिलित थीं। ऐसा कलाओं का वेत्ता पुरुष कब परावलंबी हो सकता है? वह स्वाधीनतापूर्वक अपना

जीवन यापन कर सकता है, किसी का दुर्बल नहीं रह सकता। उसे सेवकवृत्ति [सर्विस] पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं होती।

आज दुर्भाग्य से, इस देश से, गुरुकुल पद्धति नष्ट प्राय हो गई है और पाश्चात्यों द्वारा प्रवर्तित पद्धति प्रचलित है। इस पद्धति से इस देश में ऐसी विषम समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं कि उनका समाधान करना कठिन हो रहा है। यह पद्धति बालकों को परावलम्बी निःसत्व, हृदयहीन एवं दुर्व्यसन ग्रस्त बनाने वाली है।

प्राचीनकाल की शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी के भविष्य जीवन का विचार रखा जाता था। कौन विद्यार्थी आगे चल कर क्या व्यवसाय करने वाला है, उसके यहाँ पितृपरम्परा से क्या धन्धा हो रहा है, इस बात को ध्यान में रखकर ही उसे शिक्षा दी जाती थी। इसका परिणाम होता था कि विद्यार्थी जब अध्ययन समाप्त करके घर लौटता तो उसके मन में यह प्रश्न ही नहीं उठता था कि अब मैं क्या करूं? वह घर जाते ही अपने पैत्रिक व्यवसाय में जुट जाता था। इस कारण बेकारी फैलने के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं थी।

आज के शिक्षाधिकारी अगर प्राचीन पद्धति को समझने और प्रयोग में लाने का प्रयत्न करें तो शिक्षा सम्बन्धी व्यापक असंतोष दूर किया जा सकता है। किन्तु इसमें सब से बड़ी बाधा यह है कि जिन लोगों के हाथ में आज शिक्षा-सूत्र है, वे स्वयं आधुनिक प्रणाली से शिक्षित हुए हैं; इसी प्रणाली से प्रभावित हैं, अतएव वे इसी की हिमायत करते हैं। मगर देशोत्थान और जीवन निर्माण की दृष्टि से यह पद्धति एकदम

५

भाइयों की ईर्षा

धनसार के घर में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। मनुष्य-जीवन को सुखमय व्यतीत करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, वह सभी पर्याप्त से भी अधिक मात्रा में उनके यहाँ प्रस्तुत थे। धन-सम्पत्ति का प्राचुर्य था, विशाल राज-प्रसाद की तुलना करने वाली हवेली थी। हीरा, मोती आदि जवाहरात थे। सभी कुछ था।

कुछ लोग होते हैं जो धन-सम्पत्ति से कभी सन्तुष्ट ही नहीं होते। उनके पास आवश्यकता से अधिक धन होने पर भी वे शान्ति नहीं धारण कर सकते, सन्तोष नहीं मान सकते। उनका विचार होता है कि मनुष्य मशीन की नाई धन कमाता ही चला जाय, कभी चैन न ले। यही मनुष्य जीवन का प्रधान ध्येय है।

इसके विपरीत कुछ स्वभाव से ही उदार हृदय वाले भी होते हैं। यह लोग भी धन की सर्वथा उपेक्षा तो नहीं करते, परन्तु उसे जीवन का मुख्य ध्येय भी नहीं समझते। वे धन को जीवन से नीचा समझते हैं। आवश्यकताओं की पूर्ति होती चली जाय, बस यही उनके लिए बस है। यह लोग उच्च विचार के होते हैं और जीवन के वास्तविक मूल्य को समझते हैं।

धन्ना दूसरी कोटि का युवक था। उसे धन सम्पत्ति के प्रति गहरा आकर्षण नहीं था। धन उसके लिए कोई विशेष मूल्यवान वस्तु नहीं था—आवश्यकताओं की पूर्त्ति का साधन मात्र था। अतएव आर्थिक लोलुपता जैसी वृत्ति उसके हृदय में उदित नहीं हुई। वह फक्कड़ तबियत का था। धन उपार्जन करने की तरफ उसका ध्यान ही नहीं था। वह पढ़-लिखकर आ गया था और उसके स्थान पर कोई दूसरा होता तो अपने व्यवसाय में तन-मन से जुट जाता। पर धन्ना तो अनोखी धातु से बना था। वह साहित्य का अध्ययन करता, धर्मशास्त्रों का पठन करता, धर्मक्रिया करता और मौज से रहता था। धनोपार्जन की ओर उसका जरा भी लक्ष्य नहीं था।

धन्ना, धनसार का इकलौता लड़का होता तो बात दूसरी होती; परन्तु उससे बड़े तीन भाई और थे। कुछ दिनों तक तो वह लोग धन्ना के यह रंग-ढंग देखते रहे। उन्होंने सोचा-अभी पढ़ कर आया है, धीरे-धीरे काम पर लग जायगा। मगर जब बहुत दिन बीत गये और धन्ना की रुचि धनोपार्जन में न होती देखी तो उन्हें ईर्षा होने लगी। वह मन ही मन सोचने लगे—आखिर धन्ना इतना बड़ा हो गया है, फिर भी कुछ काम धाम नहीं करता। सदैव चैन की बंशी बजाया करता है। हम लोगों ने ही क्या सारे काम का ठेका लिया है? बराबरी के हिस्सेदार को काम भी बराबर करना चाहिए।

धन्ना के तीनों भाइयों के हृदय में इस प्रकार ईर्षाभाव का प्रादुर्भाव हुआ। धीरे-धीरे वह वचन पर भी आ गया और प्रकट होने लगा। तीनों भाई मिलकर आपस में धन्ना की आलोचना करने लगे। मगर उनकी ईर्षा विष की बेल की तरह निरंतर

बढ़ती ही चली गई। एक दिन तीनों आपस में मंत्रणा करने लगे।

पहले धनदत्त ने कहा–धन्ना बिगड़ता जा रहा है। उसका आजकल जैसा ढंग है, वही रहा तो आगे चल कर वह बिलकुल निकम्मा हो जायगा।

धनदेव-अजी, यह ढंग बदलने वाला नहीं। हम लोग कमाई करने वाले हैं ही, फिर वह क्यों कमाने लगा ? पिताजी का वह प्रियतर पुत्र है फिर उसे चिंता काहे की ?

धनचंद्र—अच्छा यह होगा कि हम लोग भी धन्ना सरीखे ही बन जाएँ ! मौज करें और काम-काज छोड़ दें। जब सारा भार पिताजी पर पड़ेगा तब आप ही उनकी आँखें खुलेंगी।

धनदत्त—होना तो यही चाहिए, पर ऐसा करने में एक हानि है।

धनचन्द्र—क्या ?

धनदत्त—व्यापार चौपट हो जायगा। इससे जो हानि होगी, सभी की होगी। अकेले धन्ना का क्या बिगड़ेगा ?

धनदेव—ठीक है। कोई ऐसा मार्ग खोजना चाहिए, जिससे पिताजी की आँखें खुल जाएँ !

धनचन्द्र—वही तो सोचना है। बताइए न ?

धनदत्त—पहले तो पिताजी से स्पष्ट कह दिया जाय कि धन्ना को काम में लगाना चाहिए। अगर वे हमारी बात मान लें तो ठीक है, अन्यथा हमें दूसरा मार्ग खोजना पड़ेगा।

धनचन्द्र—मगर पिताजी मानने वाले नहीं। जानते नहीं, वे उसे कितना प्यार करते हैं ?

धनदत्त—तो क्या हम उनके लड़के नहीं हैं। पिता का कर्त्तव्य पक्षपात करना नहीं है। वे नहीं मानेंगे तो हम लोग मनवाएँगे। हममें शक्ति चाहिए, संगठन चाहिए और अपने ऊपर भरोसा होना चाहिए। हम डटे रहेंगे तो उन्हें हमारी बात बाध्य होकर माननी पड़ेगी। नहीं कैसे मानेंगे ?

धनचन्द्र—पिताजी को यह भ्रम हो गया है कि धन्ना पुण्यवान् है। सब ठाठ धन्ना के पुण्य का ही प्रभाव है। सब के सामने वे उसी की प्रशंसा किया करते हैं। हम लोग तो किसी गणना में ही नहीं है।

धनदत्त—बस, हमें दृढ़ता धारण करनी चाहिए। अब यह परिस्थिति निभ नहीं सकती।

धनचन्द्र—मगर हमें करना क्या चाहिए ?

धनदत्त—सबसे पहिले तो पिताजी से कहना चाहिए। वे उसे व्यापार में लगावें। पिताजी न मानेंगे तभी आगे की बात सोचेंगे।

आखिर यह निर्णय हो गया। तीनों भाइयों ने धनसार के पास जाकर धन्ना को सही राह पर लाने का निश्चय कर लिया !

मनुष्य के पाप-कर्म का उदय आता है तो सर्वप्रथम उसकी बुद्धि में विकार उत्पन्न होता है। बुद्धि का विकार विचारों में विपरीतता उत्पन्न करता है और विचारों की विप-

रीतता ऐसे कार्य करवाती है जिससे मनुष्य के लिए अपमान, तिरस्कार, लांछना, विपत्ति और दुःख की उत्पत्ति होती है।

पहले कहा जा चुका है कि धनदत्त, धनदेव और धनचंद्र पुण्यहीन थे। अतएव जब उनके पाप का विशेष उदय आया तो उनके मन में ईर्षा का प्रादुर्भाव हुआ। अकारण ही वे धन्ना से द्वेष करने लगे। वह समझने लगे कि मानों सारा बोझ उन्हीं पर है और वही सब व्यापार सँभाले हुए हैं। मगर बात ऐसी नहीं थी। सेठ धनसार स्वयं अपने काम-काज की देखरेख करते थे और मुनीम आदि अपना-अपना कार्य करते थे। तीनों भाइयों को धन्ना के प्रति जो असन्तोष हुआ, उसका प्रधान कारण ईर्षा का भाव ही था और ईर्षा का मुख्य कारण उनके पापकर्म का उदय था।

धन्ना मौज करता था, यह सत्य है, परन्तु यह तीनों भाई भी क्या मौज नहीं कर रहे थे? इनके ऊपर कोई नियंत्रण नहीं था। पिता की विद्यमानता में गृहस्थी का भार इनके माथे पर नहीं था। चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। फिर यह लोग क्यों परेशान हो रहे थे? इन्हें किस वस्तु की कमी थी? पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने और आमोद-प्रमोद करने की सभी सामग्रियाँ इन्हें उपलब्ध थीं। चाहते तो सुख से रह सकते थे। मगर नहीं, पापकर्म की प्रबलता ने उन्हें सुख में नहीं रहने दिया। वे धन्ना को सुखी देखकर जलने लगे। ईर्षा की आग ने उन्हें संतप्त कर दिया!

५

बन्धु-विरोध

एक दिन तीनों भाई परस्पर मंत्रणा करके सेठ धनसार के पास पहुंचे। धनसार को तीनों का एक साथ आना रहस्यपूर्ण प्रतीत हुआ। उन्होंने मन ही मन सोचा—आज क्या कारण है कि तीनों मिलकर आये हैं। उनके चेहरे देखे तो संदेह हो गया। तीनों के चेहरों पर सामान्य अवस्था में होने वाली स्वाभाविकता नहीं दिखाई देती थी। रोष का भाव झलक रहा था। अतएव धनसार ने पूछा—कहो, आज मिलकर आने का क्या प्रयोजन है ?

तीनों की गर्दन नीचे झुक गई। कोई कुछ न कह सका।

धनसार ने थोड़ी देर रुक कर कहा—बेटा, पिता-पुत्र में प्रकृति ने इतनी अभिन्नता रक्खी है कि उनके बीच में कोई पर्दा नहीं होना चाहिए। उच्चकुल के मनुष्य आपस में कपट नहीं करते। जो बात मन में हो, वही वचन से कह देते हैं और जो वचन कहते हैं, उसी के अनुसार कार्य करते हैं, अतएव जो बात तुम्हारे मन में हो, निस्संकोच कह डालो।

मनुष्य के मन में विभिन्न अवसरों पर जो विचार उत्पन्न

होते हैं, क्या उन सब को वह कहने में संकोच नहीं करता? अवश्य करता है। यदि कोई मनुष्य दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले कि मेरे मन में अच्छे या बुरे, जैसे भी विचार उत्पन्न होंगे, मैं निस्संकोच उन्हें वाणी द्वारा व्यक्त कर दूँगा, उनसे मेरी प्रतिष्ठा बढ़े तो बढ़े और घटे तो घटे! चाहे लोग मुझे पापी समझें या देवता समझें, किन्तु मैं अपने किसी भी विचार को छिपाने का प्रयत्न नहीं करूँगा! तो धीरे-धीरे उसका मन इतना सध जायगा कि उसमें बुरे विचारों का प्रादुर्भाव न होगा। मन में मलिन भावनाएँ उदित होने का कारण यही है कि मनुष्य उन्हें छिपा लेता है और इस कारण उन भावनाओं के कारण उसकी प्रतिष्ठा को कोई क्षति नहीं पहुँचती। अगर वह उन्हें निष्कपट बालक की भाँति प्रकट कर दे तो उसे अपनी मान-मर्यादा में न्यूनता आती दिखाई देगी, उसे आत्मग्लानि होगी और वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर कुत्सित भावनाओं को उत्पन्न होने से रोकने की चेष्टा करेगा।

इसी उद्देश्य से शास्त्र में यह विधान किया गया है कि मुनि अपने किसी भी पाप को छिपाने का प्रयत्न न करे। बिना न्यूनता और अधिकता के वह अपने गुरु के समक्ष प्रतिदिन निवेदन कर दे। इस नियम को प्रामाणिकता के साथ पालने वाला मुनि शीघ्र ही पापों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

किन्तु यह विधान सिर्फ मुनियों के लिए ही नहीं, श्रावकों के लिए भी है। इसे शास्त्रीय परिभाषा में 'आलोचना' या 'आलोयणा' कहते हैं। आलोचना करने से कृत पाप धुल नहीं जाते, वरन् भविष्य में पाप का आचरण न करने की वृत्ति भी उत्पन्न होती है।

सारांश यह है कि मनुष्य का मन और वचन एक-सा होना चाहिए। धनसार सेठ ने अपने लड़कों से कहा—जो बात मुँह से कहने में तुम्हें संकोच होता है, उसे तुम अच्छी नहीं समझते, यह स्पष्ट है। वह अच्छी होती तो कहने में दुविधा न होती। और जिसका कहना भी उचित नहीं, उस बात को मन में स्थान देना कैसे उचित हो सकता है? सो या तो मन की बात स्पष्ट रूप से कह डालो या फिर उसे मन में से भी निकाल डालो। मन में किसी बात को स्थान देना और वचन से न कहना—कहने में भय या संकोच अनुभव करना कपटवृत्ति या कायरता है। कपटवृत्ति भी अच्छी नहीं और कायरता भी अच्छी नहीं।

अपने पिता की बात सुनकर लड़के बोले—हमारे चुप्पी साधने का कारण, न कपटवृत्ति है, न कायरता; सिर्फ संकोच के कारण ही कहने में विचार हो रहा है। संकोच यह कि आप कदाचित हमारे अभिप्राय को अन्यथा न समझ लें। भले के लिए कहें और बुरे के लिए समझ लें तो हमारा कहना निरर्थक हो जायगा।

धनसार—यह सब बात पहले सोचकर ही कहने के लिये आते तो ठीक होता। अब अगर तुम समझते हो कि तुम्हारी बात सही रूप में समझी जायगी तो कह डालो। परन्तु यह तो बतलाओ कि तुम्हारे इस सन्देह का कारण क्या है?

धनचन्द्र—धन्ना के प्रति आपका विशेष स्नेह!

धनसार—अच्छा, तो धन्ना के सम्बन्ध में कहना चाहते हो?

धनदत्त—जी हाँ।

धनसार—अवश्य कहो। क्या कहना चाहते हो?

धनदत्त—यही कि धन्ना दिनोंदिन बिगड़ता जा रहा है। अब वह छोटा नहीं है। हम लोगों की बराबरी का जवान पट्ठा है। मगर दिन भर मौज करता है। जरा भी काम नहीं करता। इधर की चीज़ उठाकर उधर नहीं रखता। इतने पर भी मनचाहा धन उड़ाता है। हम भी तो आपके पुत्र हैं। क्या चार बेटों में से तीन कमाने के लिए और एक गँवाने के लिए हैं? बराबर के साझीदार को काम भी बराबर करना चाहिए और खर्च भी बराबर करना चाहिए। हम लोग कभी कहते नहीं, और कदाचित् भूल चूक से कह दें तो सुनता नहीं। जानता है कि पिताजी मेरी पीठ ठोंकने वाले हैं।

धन्ना के विरुद्ध लगाये गये अभियोग सुन कर धनसार सेठ को गहरा आघात लगा। इन अभियोगों के साथ उन पर भी एक आरोप था, जो स्पष्ट झलक रहा था। तीनों लड़के अपने पिता को पक्षपाती समझते थे। उनके खयाल में धनसार धन्ना को बिगाड़ने में सहायक थे। अतः अपने लड़कों की बात सुनकर धनसार मर्माहत हो गये। उन्होंने विचार किया इन लड़कों का यह दुर्विचार यद्यपि आज चिनगारी रूप में है, तथापि चिनगारी क्या बढ़ती-बढ़ती भयानक ज्वालाओं का रूप धारण नहीं कर लेती? अगर यही हाल रहा तो परिवार एक न एक दिन तहस-नहस हो जायगा।

धनसार जानते थे कि यह लड़के हीनपुण्य हैं और धन्ना अतिशय पुण्यशाली है। अतएव उन्हें खयाल आया-पुण्यवान् के प्रति ईर्षा करके यह लोग अपने पापोदय को आमंत्रित कर रहे हैं। अगर इनकी दुर्बुद्धि दूर न हुई तो धन्ना की तो कोई हानि

न होगी, यही संकट में पड़ जाएँगे। यह सोचकर उन्हें विकराल भविष्य की झांकी दिखाई देने लगी।

ईर्षा घोर दुर्गुण है। मनुष्य के अन्तर में छिपा हुआ भयंकर राक्षस है। उसके प्रभाव से मनुष्य उचित और अनुचित का भान भूल जाता है। वह सद्गुणी को दुर्गुणी और सद्गुण को दुर्गुण मान बैठता है। ईर्षा से प्रेरित मनुष्य सद्गुण से द्वेष करता है और वृथा ही अपने सुख को नष्ट कर डालता है। ज्ञानीजनों का कथन है कि मनुष्य का प्रत्येक कदम सद्गुणों की प्राप्ति के पथ पर ही आगे बढ़ना चाहिए। कदाचित् वह सद्गुण प्राप्त नहीं कर सकता तो सद्गुणी जनों को देखकर प्रमोदहर्ष का अनुभव करना चाहिए। सद्गुणी के प्रति प्रमोदभाव रखने से सद्गुणों के प्रति अनुराग की वृद्धि होती है और इससे कालान्तर में सद्गुणों की प्राप्ति होती है। इसीलिए कहा है—

अपास्ताशेषदोषाणां, वस्तुतत्त्वावलोकिनाम्।
गुणेषु पक्षपातो यः स प्रमोदः प्रकीर्त्तितः॥

अर्थात् समस्त दोषों को दूर करने वाले और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले पुरुषों के गुणों के प्रति पक्षपात होना प्रमोद भाव कहलाता है।

गुणों और गुणियों के प्रति प्रमोद के विपरीत जो मत्सरता का भाव धारण करते हैं, वे गुणीजनों की तो कुछ भी हानि नहीं कर सकते, अपना ही अहित कर लेते हैं। ईर्षा की आग उनके अन्तस्तल को संतप्त करती रहती है; व्याकुल बनाये रखती है, शान्ति का रसास्वादन नहीं करने देती और गुणों से वंचित रखती है। ऐसे दुर्गुण को मनुष्य क्यों अपनाता है? इसका एक मात्र कारण अज्ञान ही हो सकता है!

धन्ना के तीनों भाइयों को कोई कष्ट नहीं था। श्रीमन्त के पुत्र होने के कारण उन्हें सभी सुख साधन उपलब्ध थे; फिर भी पापोदय के कारण उनके चित्त में ईर्षा की आग सुलग उठी।

ईर्षा कहो, द्वेष कहो, मात्सर्य कहो; सब एक ही बात है। द्वेषी या ईर्षालु मनुष्य घोर अशुभ कर्मों का बन्धन करता है। कहा है—

राणी से द्वेषी अधिक संच अशुभ कुकर्म।
रागी धर्म समाचरै, द्वेषी न जाने मर्म॥

रागी को भी अशुभ कर्म का बन्ध होता है, परन्तु द्वेषी जीव रागी की अपेक्षा अधिक अशुभ कर्मों का बन्ध करता है। रागी तो धर्म का आचरण कर भी सकता है, परन्तु द्वेषी जीव धर्म का मर्म नहीं पा सकता। और भी कहा है:—

द्वेष वशे उनमत्त भये जन,
काज-अकाज जरा नहीं जोई।
नाश करे तन को धन को,
न रहे उनका कोई सगा अरु सोई।
मारे मरे पर टारे टरै नही,
खोटे पूरत्व में रक्त ये होई।
मति गति और रति भ्रष्ट जु होवत,
द्वेष समो नहि दुष्ट है कोई॥

ऐसी हालत होती है ईर्षालु जनों की। इसीलिए सन्त जन संसार को यह संदेश देते हैं कि—ऐ जीव! तू ईर्षा की आग मत जला। उसमें तू आप ही भस्म हो जाएगा। क्यों तू अपने पाँव पर आप ही कुठाराघात करता है? भलेमानुस, तू शान्ति चाहने के लिए क्यों अशान्ति उत्पन्न करता है! तू गुण-

वानों की प्रशंसा कर सके तो कर; न कर सकता हो तो कम से कम उनसे द्वेष तो मत कर! गुणवानों से द्वेष करना गुणों को ठुकराना है। अभागे, क्यों जान-बूझकर आग में कूदता है! यह आग तुझे शीतलता देने वाली नहीं इसमें झुलस कर तू अनन्त संताप का पात्र बनेगा।

धनसार समझ गये कि उनके तीनों लड़के इस समय ईर्षा से अंधे हो रहे हैं। इन्हें इस समय यदि नीति और धर्म का उपदेश दिया जाय तो वह सफल नहीं होगा। यही नहीं, मुझ पर से इनका रहासहा विश्वास भी उठ जायगा। अतएव उन्होंने कहा—पुत्रो! तुम उच्च और संस्कृत कुल में उत्पन्न हुए हो; इस कारण मैं आशा करता हूं कि तुम्हारे अन्तःकरण में तुच्छ विचार स्थान नहीं पाएँगे। तुम समझते हो कि धन्ना मौज करता है, कुछ भी कमाई नहीं करता; परन्तु किसके भाग्य से कौन आनन्द का उपभोग कर रहा है, यह जान लेना आसान नहीं। हमारे नीतिकार कह गये हैं:—

> स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं
> देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

तिरिया-चरित्र और पुरुष के भाग्य को देव भी नहीं जान सकते तो मनुष्य की तो बात ही क्या है?

धन्ना कमाई नहीं करता, यह तुम देख रहे हो; मगर धन्ना के भाग्य से कमाई हो रही है, यह तुम नहीं देख सकते। हाँ, तुमने शान्तिपूर्वक विचार किया होता तो तुम्हें आभास अवश्य मिल जाता। तुम लोग भूले न होंगे कि मेरी आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो रही थी, प्रत्येक दांव उलटा पड़ रहा था और लक्ष्मी विलीन होती जा रही थी कि धन्ना गर्भ में आया।

उसके गर्भ में आते ही हमारे दिन फिर गये। लक्ष्मी बढ़ी, व्यापार फिर चमक उठा। जब उसका जन्म हुआ तो बहुमूल्य खजाना अनायास ही हमारे हाथ आया। क्या इसे तुम धन्ना के भाग्य की कमाई नहीं समझते? पुत्रो! कोई हाथों-पैरों से कमाता है, कोई दिमाग से कमाता है और कोई अपने पूर्वोपार्जित पुण्य से कमाता है। धन्ना पुण्य से कमाई कर रहा है, यह जानकर तुम्हें सन्तोष धारण करना चाहिए। हमारे घर में उसके पाँव न पड़े होते तो आज हम लोगों की क्या हालत होती यह कल्पना करना भी भयानक है।

धनदत्त—पिताजी, छोटे मुँह बड़ी बात शोभा नहीं देती, तथापि यह कहने के लिए क्षमा कीजिए कि धन्ना के प्रति आपका अति विश्वास और अति-अनुराग धन्ना के लिए ही घातक सिद्ध होगा। इस प्रकार की बातें सुनकर वह और भी अधिक आलसी और निकम्मा हो जायगा! उसका अहंकार बढ़ जायगा।

धनचन्द्र—खजाने की बात भी बड़ी अनोखी है। भूमि खोदी गई और उसी जगह खोदी गई जहाँ खजाना था यह संयोग की बात है। इसमें धन्ना ने क्या कर दिया? धन्ना क्या खजाना साथ लेकर आया था? हमारा नाल गाड़ने के लिए वह जगह खोदी गई होती तो भी आखिर खजाना निकलता ही। वहाँ मौजूद था तो जाता कहाँ?

धनदेव—और व्यापार में उतार-चढ़ाव तो होता ही रहता है। कभी नफा और कभी नुकसान! मगर उसका सम्बन्ध परिस्थितियों के साथ न जोड़ कर व्यक्ति के साथ जोड़ना किस प्रकार तर्कसंगत है, यह हमारी समझ में ही नहीं आता।

लड़कों की नुक्ताचीनी सुनकर धनसार खीझ उठे। फिर भी उन्होंने अपने आपको संभाल लिया। वह बोले—इस समय तुम्हारी जो मनोदशा है, उसे देखते हुए तुम्हारा समझना संभव नहीं है। समय आने पर सब कुछ समझ जाओगे। अच्छा, अब यह बताओ कि तुम चाहते क्या हो?

धनचन्द्र—चाहते क्या हैं, कुछ भी नहीं, धन्ना हमारा भाई है और जैसे आपको प्रिय हैं, वैसे ही हमें भी। वह काम-काज में लगे और कमाई करना सीखे, यही हमारी अभिलाषा थी। मगर आपको हमारा कहना अनुचित जान पड़ता है तो रहने दीजिए। आज से हम लोग कुछ न कहेंगे।

धनसार—तो तुम्हारा खयाल है कि धन्ना कमाई नहीं कर सकता?

धनचन्द्र—पिताजी, 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्?' अर्थात् हाथ कंगन को आरसी की क्या आवश्यकता है। स्थिति हमारे सामने है। धन्ना ने क्या आज तक चार पैसे की भी कमाई की है?

धनसार—पुत्रो! तुम मुझ पर विश्वास करो। मेरे लिए तुम चारों प्राण के समान हो। आखिर तुम्हारे साथ मेरा जो संबंध है, वही धन्ना के साथ है, और जो धन्ना के साथ है वही तुम्हारे साथ है। मेरे लिए न कोई कम है, न बढ़ है। फिर भी मैं तुम्हारे विश्वास के लिए शीघ्र ही उपाय करूँगा। तब तक तुम शांति और सन्तोष धारण करो।

सेठ धनसार का यह उत्तर सुनकर तीनों लड़के चुपचाप उनके पास से खिसक आये। सेठजी चिन्ता के सागर में डूबने उतराने लगे। बन्धु-विरोध गृह-विनाश का प्रधान कारण है और वह मेरे घर में अंकुरित हो रहा है, यही उनकी चिंता का कारण था, वह इसी विचार में उलझ गये कि किस प्रकार इसे तत्काल नष्ट कर दिया जाय?

६

प्रथम-परीक्षा

धीस्तीक्ष्णानुगुणः कालो, व्यवसायः सुसाहसः ।
धैर्यमुद्यत्तथोत्साहः, सर्वं पुण्याद्दृते वृथा ॥

पुण्य के अभाव में तीक्ष्ण बुद्धि, अनुकूल अवसर, उद्योग, साहस, बढ़ता हुआ धैर्य तथा उत्साह, यह सभी व्यर्थ हो जाते हैं। पुण्य की सहायता के बिना इनमें से कोई भी मनुष्य को सफलता प्रदान नहीं कर सकते।

बतलाया जा चुका है कि प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए बाह्य कारणों के साथ अन्तरंग कारण की अनिवार्य आवश्यकता होती है। बाह्य कारण कितने ही प्रबल और प्रचुर परिमाण में क्यों न विद्यमान हों, अगर अन्तरंग कारण का सद्भाव नहीं तो वह सभी बेकार हैं। सफलता प्राप्ति में पुण्य-परिपाक अन्तरंग कारण है। उसका जहाँ अभाव होता है, वहाँ प्रकृष्ट पुरुषार्थ, असीम परिश्रम, साहस और उत्साह आदि कुछ भी काम नहीं आ सकते।

पुण्यहीन जन क्या मिहनत नहीं करते? वह चोटी से एड़ी तक पसीना बहाते हैं, फिर भी धनकी इष्ट सिद्धि नहीं

होती। इसका प्रधान कारण पुण्य का अभाव ही है। इसके विपरीत पुण्यशाली जन अल्प परिश्रम से ही बड़ी से बड़ी सफलताएँ प्राप्त कर लेते हैं।

धनसार सेठ अपने बड़े लड़कों को किसी प्रकार समझाना चाहते थे, किन्तु केवल शाब्दिक उपदेश से उनका समझना सम्भव नहीं था। अतएव दीर्घ विचार के पश्चात् उन्होंने एक मार्ग ढूंढ निकाला।

दूसरे दिन उन्होंने अपने चारों लड़कों को अपने पास बुलाकर कहा—तुम चारों में से कौन किस स्थिति में हैं, कौन कितना बुद्धिमान् है और कितनी कमाई कर सकता है, इस बात की परीक्षा लेना चाहता हूँ। बोलो, चारों में से किसी को कोई आपत्ति तो नहीं है ?

तीनों बड़े लड़के यही चाहते थे। उनका खयाल था कि हम लोग बड़े कमाऊ पूत हैं और धन्ना बेकार है। उससे कुछ करते-धरते नहीं बनेगा। उसका निकम्मापन सिद्ध करने का यह सुन्दर अवसर है ! पिताजी को भी इससे असलियत का पता चल जायगा।

यह सोचकर तीनों लड़कों ने प्रसन्नता के साथ पिता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

धन्ना कुमार गम्भीर विचार वाला था ! यद्यपि उम्र में वह सब भाइयों से छोटा था, तथापि उसकी गम्भीरता सबसे बढ़ी-चढ़ी थी। अतः इस भाग्य-परीक्षा के प्रयोग से न उसे हर्ष ही हुआ और न विषाद ही। वह मध्यस्थ रहा। न उसे परीक्षा देने की उत्कंठा ही हुई और न आपत्ति ही।

चारों पुत्रों में से किसी की असहमति न देख,धनसार ने कहा—चारों भाइयों को क्रमशः चौंसठ-चौंसठ मोहरें एक-एक दिन दी जाएँगी। आज धनदत्त को, कल धनदेव को, परसों धनचंद्र को और उसके बाद धन्ना को। इन चौंसठ मोहरों को मूल पूंजी मान कर कायम रखना होगा और इनसे जो कमाई होगी; उससे परिवार को भोजन कराना होगा।

धनदत्त—ठीक है, यह विधि उचित है। इस परीक्षा में जो सवश्रेष्ठ सिद्ध हो, उसकी समग्र परिवार के सामने प्रशंसा होनी चाहिए और वही चारों भाइयों में उच्च एवं प्रधानपद का भागी होना चाहिए।

धनदत्त सोच रहा था कि मैं आयु में सबसे बड़ा हूं, अतएव बुद्धि में भी सब से बड़ा हूं और इस कारण मैं सब से अधिक कमाई करके दिखला सकूंगा। पर उसकी बुद्धिमत्ता तो इसी से प्रकट हो जाती है कि वह बुद्धि का वय के साथ संबंध स्थापित करता है! जिसकी वय अधिक हो उसमें बुद्धि भी अधिक हो, यह आवश्यक नहीं।

चारों पुत्रों को अपने निर्णय से सहमत देख पहले दिन धनदत्त को चौंसठ मोहरें दी गई। दूसरे दिन, धनदेव को और तीसरे दिन धनचन्द्र को। तीनों भाइयों के लिए यह समय बड़ा महत्त्वपूर्ण था। एक ही दिन की कमाई पर उनकी इज्जत-आबरू निर्भर थी। और क री इज्जत ही नहीं, भविष्य का प्रश्न भी उसके साथ जुड़ा हुआ था। जो इस परीक्षा में सर्वोत्तम सिद्ध होगा, वही परिवार का मुखिया बनेगा। उसी के हाथ में सत्ता रहेगी! भला कौन मूर्ख ऐसा होगा जो इस अलभ्य अवसर से अधिक

से अधिक लाभ न उठाना चाहे ! सभी अधिक से अधिक कमाई करने का सङ्कल्प कर रहे थे।

तीनों लड़कोंने एक-एक दिन तनतोड़ परिश्रम किया। जितना भी सम्भव था, परिश्रम किया। कुछ भी कसर न उठा रक्खी। उससे कुछ कमाई भी हुई, परन्तु उसकी मात्रा अल्प थी। अतएव वे जैसा चाहते थे, वैसा भोजन परिवार को न करा सके। उन्होंने तुच्छ भोजन करवा कर ही सन्तोष धारण किया। तुच्छ भोजन भी वे लोग समय पर न जुटा सके। काफी विलम्ब होने पर वे जिमा सके। इससे उन्हें पूरा सन्तोष न हुआ, फिर भी वे समझ रहे थे कि धन्ना से तो इतना भी नहीं बन सकेगा ! अतएव हमारा दर्जा ही ऊंचा रहेगा।

यह सोचकर उन्हें विशेष हर्ष नहीं था तो विषाद भी नहीं था। हृदय में ऊँची उमंग नहीं थी तो निराशा भी नहीं थी। दूसरी तरह कहा जाय तो यह कहा जा सकता है कि वे धन्ना की अयोग्यता की कल्पना करके, उसकी तुलना में अपनी योग्यता पर भरोसा करते थे। नीतिकार कहते हैं:—

अधोऽधः पश्यतः कस्य, महिमा नोपजायते ?

अर्थात्—जो मनुष्य अपने से नीची श्रेणी वालों को देखता है, वह अपने आपको महान समझने लगता है

धनदत्त आदि धन्ना को अपने से निम्न कोटि का, अपने से अधिक अयोग्य समझकर ही सन्तोष का अनुभव कर रहे थे। परन्तु विशेषता तो यह है कि उन्होंने धन्ना की योग्यता को परखने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया था। वे घृणा और द्वेष के आधार पर ही उसे अयोग्य और निकम्मा समझ रहे थे।

जो मनुष्य अपने जीवन को महान् और उन्नत बनाना चाहता है,उसे सदैव अपनेसे अधिक गुणवानोंकी ओर लक्ष्य देना चाहिए। ऐसा करने से गुणों के प्रति आदरभाव जागृत होता है और अपने में उन गुणों का विकास करने की इच्छा उत्पन्न होती है। ऐसा न करके जो अपने से हीन-गुणों की ओर देखकर अपने विषय में सन्तोष का अनुभव करते हैं, वे कदापि उच्च भूमिका पर आसीन नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त जो अहंकार के वशवर्त्ती होकर गुणवानों को भी निर्गुण के रूप में देखते हैं, अथवा अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं हैं, उनकी दशा तो अतिशय दयनीय ही समझनी चाहिए।

हाँ, तो अपने बड़े भाइयों की दृष्टि में निकम्मे और उड़ाऊ धन्ना की बारी आई। उसे चौंसठ मोहरें पिताजी की ओर से मिलीं। इस पूंजी से उसे कमाई करके अपने परिवार को जिमाना था। उसने गंभीर भाव से मोहरें लीं और बिना ही किसी पूर्वनिर्धारित योजना के वह बाजार की ओर चल पड़ा।

चलते चलते एक बड़े व्यापारी की दुकान पर धन्ना ठहर गया। सेठजी दुकान पर बैठे कोई पत्र पढ़ रहे थे। धन्ना चुपचाप जाकर उनके पास खड़ा हो गया। उसे उलटे अक्षर पढ़ने की विद्या भी आती थी। कागज पर एक ओर लिखे हुए अक्षर दूसरी ओर उलटे दिखाई देते हैं। साधारण आदमी उन्हें पढ़ नहीं सकता। हाँ, कागज पतला हो और अक्षर स्पष्ट नजर आते हों तो परिश्रम करके उन्हें कुछ कुछ समझा जा सकता है। फिर भी सीधे अक्षरों के समान तेजी से पढ़ लेना बड़ा ही कठिन है। परन्तु धन्ना कुमार इस फन में होशियार था। वह उलटे अक्षरों को, सीधे अक्षरों की ही भाँति पढ़ लेता था। सेठजी जो पत्र पढ़

रहे थे, उसी पत्र को पीछे की तरफ से धन्ना ने भी उनके साथ ही साथ पढ़ना आरंभ किया। वह उस पत्र का आशय भली भाँति समझ गया।

पत्र के आशय को समझ कर धन्ना कुमार उसी समय वहाँ से रवाना हुआ और बीच में एक भी पल कहीं ठहरे बिना सीधा समुद्र के किनारे बन्दरगाह पर जा पहुँचा। वहाँ माल से भरा हुआ एक जहाज़ आया हुआ था, जिसकी सूचना धन्ना को सेठ के उस पत्र से मिल गई थी। धन्ना ने वहाँ पहुँच कर जहाज़ के स्वामी से बातचीत की और जहाज का सारा माल खरीद लिया। धन्ना ने सौदा पक्का कर लिया।

धन्ना इतना जब कर चुका तो वह सेठ अनेक व्यापारियों को साथ लेकर बन्दरगाह पर आए। उन्हें क्या कल्पना थी कि यहाँ क्या हो गया है। वह जब वहाँ पहुँचे तो सार्थवाह से मिले। माल खरीदने की बात आरंभ की। पर सार्थवाह ने कहा—आपने आने में विलम्ब कर दिया। मैं अपना सारा माल विक्रय कर चुका हूँ।

सेठ के आश्चर्य की सीमा न रही। उसे सार्थवाह की बात पर विश्वास न हुआ। सेठ समझता था कि इस जहाज के आने का, मेरे सिवाय किसी को पता ही नहीं है। पर जब सार्थवाह ने माल के विक्रय कर देने की बात कही तो उसे आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था।

सेठ ने विस्मित भाव से कहा—क्या, सचमुच आपने माल बेच दिया है?

सार्थवाह—जी हाँ, असत्य क्यों कहूँगा!

सेठ—किसने खरीदा ?

सार्थवाह ने धन्ना कुमार की ओर इशारा करके कहा—इन कुमार ने !

उसी समय धन्ना ने कहा—जी हाँ, मैंने माल खरीद लिया है।

सेठ को उस माल की बड़ी आवश्यकता थी। यह भी संभव है कि उसने उसे अधिक लाभदायक समझा हो। कुछ भी हो, वह देर करने के लिए पश्चात्ताप कर रहा है; यह बात उसका चेहरा देखने से स्पष्ट प्रतीत हो रही थी। कुछ देर मौन रह कर सेठ धन्ना को एक ओर ले गया। उसने कहा—कुमार, यह माल मैं खरीदना चाहता था; परन्तु तुमने खरीद लिया तो भी कोई चिंता की बात नहीं है। अपना मुनाफा लेकर माल हमारे हक में छोड़ दो।

धन्ना ने सेठ का पत्र पढ़कर, आगे की जो कल्पना की थी, वह सब ठीक बैठ रही थीं। जो कुछ उसने सोचा था, उसमें तनिक भी हेर फेर नहीं हुआ। वास्तव में धन्ना की सूझ गजब की निकली। उसने मन ही मन जो योजना गढ़ ली, ठीक उसी के अनुसार सारा कार्य हो रहा था। ऐसा न होता तो सिर्फ चौंसठ मोहरों की पूंजी के बल पर वह जहाज का सारा माल खरीदने का साहस ही कैसे कर सकता था ? सार्थवाह माल की कीमत माँग बैठता तो धन्ना के पास क्या रक्खा था ? पर नहीं, धन्ना जानता था कि मेरे माल खरीद लेने के बाद सेठ आएगा और उसे मुझसे माल खरीदना पड़ेगा। मैं अपना मुनाफा लेकर माल उसके हवाले कर दूंगा। मुझे माल का मूल्य चुकाने का अवसर नहीं आएगा। यही हुआ भी।

सेठ का प्रस्ताव सुनकर धन्ना ने कहा-वणिक् के दो ही काम हैं-खरीदना और बेचना। लाभ मिलने की आशा हो तो वणिक् क्या नहीं बेच सकता? वह खरीद करता है बेचने के लिए और बेचता है खरीदने के लिए। मुझे समुचित लाभ मिलता हो तो मैं प्रसन्नतापूर्वक सारा माल आपको दे सकता हूँ।

सेठ—ठीक है आप क्या मुनाफा चाहते हैं?

धन्ना—मैं अधिक लोभी नहीं, अल्पसन्तोषी हूँ। एक लाख मोहरें लेकर आपको माल दे दूंगा।

सेठ—अच्छा, स्वीकार है।

सेठ ने उसी समय एक लाख मोहरें धन्ना को गिन दीं।

बैलगाड़ी में एक लाख मोहरें रखकर धन्ना कुमार अपनी हवेली की ओर रवाना हुआ। सार्थवाह को कह कर माल सेठ के जिम्मे कर दिया। धन्ना एक लाख मोहरें साथ लेकर जब द्वार पर आया तो उसे कितनी प्रसन्नता हुई होगी? उसके पिता को और माता को कितना आनन्द हुआ होगा। उस समय का दृश्य अनूठा रहा होगा।

यद्यपि धनसार सेठ के लिए या धन्ना के लिए लाख मोहरें कोई बहुत बड़ी चीज नहीं थीं, परन्तु जिस अवसर पर और जिस परिस्थिति में उसे यह लाभ हुआ था, उसे देखते उनका मूल्य बहुत अधिक था। यही कारण है कि उनको अपार आनन्द हुआ। सच है, जिसके पुण्य का उदय होता है, उसे अनायास ही सुख की प्राप्ति होती है। कहा है:—

पुण्यं हि सम्मुखीनं चेत्, सुखोपायशतेन किम् ?
न पुण्यं सम्मुखीनं चेत्, सुखोपायशतेन किम् ?॥

—अनगार धर्मामृत,—

अर्थात्—यदि पुण्य उदय में आया है तो सुख के लिए सैकड़ों उपाय करने से क्या लाभ है ? और यदि पुण्य उदय में नहीं है तो भी सुखके लिए सैकड़ों उपाय करनेसे क्या लाभ है? तात्पर्य यह है कि पुण्य का उदय होनेपर विना प्रयत्न किये ही सुख की प्राप्ति हो जाती है और पुण्य का उदय न होने पर सैकड़ों उपाय करने पर भी सुख नसीब नहीं हो सकता। अतएव सुख चाहने वालों को अन्यान्य उपायों के चक्कर में न पड़ कर पुण्य का ही संचय करना चाहिए। सुख की एक मात्र रामबाण औषध पुण्य ही है।

धन्ना को आज अल्प ही काल में जो अनूठी सफलता मिली, वह उसके परिश्रम का फल नहीं थी। परिश्रम तो लकड़हारे बहुत करते हैं, फिर भी उन्हें कुछ पैसे ही मिलते हैं। धन्ना के भाइयों ने क्या कम परिश्रम किया था ? वे दिनभर इधर से उधर और उधर से इधर भटकते फिरे थे, तब कहीं कुटुम्ब को रूखा सूखा खिलाने योग्य पैसे उपार्जन कर सके थे। मगर धन्ना ने एक चक्कर लगाया और मोहरों की गाड़ी भर लाया ! यह सब पुण्य का परिणाम नहीं तो क्या है ?

कहा जा सकता है कि यह तो धन्ना की अनोखी सूझ का नतीजा था कि वह सेठ के पत्र को पढ़ कर तत्काल बन्दरगाह पर चला गया और माल खरीद कर मुनाफा पा सका। मगर ऐसा कहने वालों को सोचना चाहिए कि धन्ना में यह

उत्कृष्ट सूझ कैसे उत्पन्न हो गई ? यह सूझ भी उसके पुण्य का ही फल है। संसार में जो भी अभीष्ट और श्रेष्ठ है, वह सब पुण्य का ही फल है। पुण्य सहायक न हो तो तीक्ष्ण से तीक्ष्ण बुद्धि, अनुकूल से अनुकूल अवसर, प्रयत्न, साहस और धैर्य आदि सब व्यर्थ हो जाते हैं। पुण्य सहायक होता है तो यह सब कार्यकारी होते हैं। यह बात इस प्रकरण के प्रारम्भ में ही बतलाई जा चुकी है।

धन्ना ने पुण्य के प्रभाव से ही अनायास सफलता प्राप्त की। उसने समस्त कुटुम्बीजनों को शानदार भोज दिया। सब को बहुमूल्य वस्त्र प्रदान किये और आभूषणों का उपहार दिया।

यह देखकर सब लोग धन्ना की मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे पर धन्ना अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जा का अनुभव करने लगा। उसे अपनी प्रशंसा सुन कर तनिक भी अभिमान न आया। वह सदा की भाँति विनीत और नम्र ही बना रहा।

७
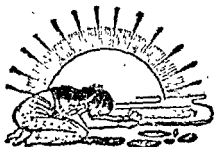
पुनः परीक्षा

> हे हेमकार ! परदुःखविचारमूढ़ !
> किं मां मुहुःक्षिपसि वारशतानि वह्नौ ।
> संदीप्यते मयि सुवर्णगुणातिरेको,
> लाभः पर तव मुखे खलु भस्मपातः ।।

हे स्वर्णकार ! हे पराये दुःख का विचार करने में मूढ़ ! क्यों सौ-सौ बार तू मुझे आग में डालता है ? ऐसा करने से मुझे लाभ ही है—हर बार मेरी चमक बढ़ जाती है, परन्तु तेरे मुंह पर तो राख ही पड़ती है ।

यह एक अन्योक्ति है । कवि ने सोने से सुनार के प्रति यह कहलाई है । परन्तु यही उक्ति यदि धन्ना के मुख से उसके ईर्षालु भाइयों के प्रति कहलाई जाय तो क्या संगत नहीं होगी ?

धन्ना पहली परीक्षा में अत्यन्त सफलता के साथ उत्तीर्ण हुआ । यह देखकर और कुटुम्बीजन तो बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करने लगे, परन्तु उसके भाइयों के मुख पर राख

पड़ गई ! जैसे ही धन्ना की योग्यता अधिक प्रकाश में आई, वैसे ही उनकी ईर्षा अधिक बढ़ गई ।

तीनों भाई इकट्ठे हुए। उन्होंने विचार किया—धन्ना ने हमें नीचा दिखा दिया है। हम लोग जो चाहते थे, उससे विपरीत परिणाम निकला। अब हमें क्या करना चाहिए ?

धनदत्त ने तमतमाते हुए चेहरे से कहा—लोगों का मुंह कौन पकड़ सकता है ? वे जिसकी चाहें प्रशंसा करें, जिसकी चाहे निन्दा करें। पर वास्तव में देखा जाय तो इस सफलता में धन्ना ने कोई प्रशंसा के योग्य काम नहीं किया। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह न्याय नीति के साथ द्रव्योपार्जन करे, न कि अन्याय के साथ। हम लोग नीति पर स्थिर रहे और प्रमाणिकता से ही हमने द्रव्योपार्जन करने का प्रयत्न किया, अतएव स्वल्प सफलता मिली। धन्ना ने अन्याय का आश्रय लिया, उसने धूर्तता और बेईमानी करके सेठ का पत्र पढ़ लिया। इसी कारण उसे अधिक द्रव्य प्राप्त हो गया। इसमें प्रशंसा करने योग्य बात ही क्या है ? मगर जिन्हें धन्ना अधिक प्रिय है, वे क्यों यह विचार करेंगे ? उन्हें तो धन्ना की तारीफ करने का कोई न कोई बहाना मिलना चाहिए। अगर हम लोग भी बेईमानी पर उतारू हो जाएं तो क्या विशेष धनोपार्जन नहीं कर सकते ।

धनचन्द्र—मगर यह भी कैसे मान लिया जाय कि लाख मोहरें धन्ना ने ही अपनी बुद्धि से उपार्जित की हैं ? न कुछ जैसी पूंजी के बल पर कोई जहाज का जहाज खरीदने का साहस नहीं कर सकता। अतएव मेरा खयाल तो यह है कि उसे परोक्ष रूप में किसी बड़े की सहायता अवश्य प्राप्त थी।

यह अकेले धन्ना का काम नहीं हो सकता।

धनदेव—कुछ भी हो, बात यह है कि हमें इस परीक्षा में नीचा देखना पड़ा है। अतएव सोचना चाहिए कि इस अपमान का प्रतीकार किस प्रकार किया जाय ?

धनचन्द्र—पिताजी से कह कर दूसरी बार परीक्षा करवाई जाय।

धनदत्त—ठीक है, यही उचित है।

तीनों भाई मिलकर फिर धनसार सेठ के पास पहुंचे। धनसार तीनों का एक साथ आगमन देख समझ गये कि यह फिर कुछ न कुछ खुरापात करना चाहते हैं। फिर भी उन्होंने प्रेम के साथ कहा—कहो पुत्रो ! किस प्रयोजन से आए हो ?

धनदत्त ने तीनों का नेतृत्व करते हुए कहा—पिताजी, हम चारों भाइयों की यह परीक्षा ठीक ढंग से नहीं हुई। आप इस नगर के प्रतिष्ठित साहूकार हैं। आपकी प्रतिष्ठा को धक्का न पहुंचे, ऐसे उपाय से ही द्रव्योपार्जन करना चाहिए, यह सोच-कर हम लोगों ने कोई अनुचित तरीका अख्तियार नहीं किया। धन्ना ने इस विचार की उपेक्षा की है। अतः दूसरी बार परीक्षा होनी चाहिए।

धनसार—धन्ना ने अनुचित उपाय का अवलम्बन किया, यह तो मैंने किसी के मुँह से नहीं सुना ! तुम ही कह रहे हो !

धनदत्त ने भाइयों के सामने जो बात कही थी, वही धनसार के सामने कह कर अन्त में कहा-अगर वह सेठ मुनाफा

पड़ गई ! जैसे ही धन्ना की योग्यता अधिक प्रकाश में आई, वैसे ही उनकी ईर्षा अधिक बढ़ गई।

तीनों भाई इकट्ठे हुए। उन्होंने विचार किया—धन्ना ने हमें नीचा दिखा दिया है। हम लोग जो चाहते थे, उससे विपरीत परिणाम निकला। अब हमें क्या करना चाहिए ?

धनदत्त ने तमतमाते हुए चेहरे से कहा—लोगों का मुंह कौन पकड़ सकता है ? वे जिसकी चाहें प्रशंसा करें, जिसकी चाहे निन्दा करें। पर वास्तव में देखा जाय तो इस सफलता में धन्ना ने कोई प्रशंसा के योग्य काम नहीं किया। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह न्याय नीति के साथ द्रव्योपार्जन करे, न कि अन्याय के साथ। हम लोग नीति पर स्थिर रहे और प्रमाणिकता से ही हमने द्रव्योपार्जन करने का प्रयत्न किया, अतएव स्वल्प सफलता मिली। धन्ना ने अन्याय का आश्रय लिया, उसने धूर्तता और बेईमानी करके सेठ का पत्र पढ़ लिया। इसी कारण उसे अधिक द्रव्य प्राप्त हो गया। इसमें प्रशंसा करने योग्य बात ही क्या है ? मगर जिन्हें धन्ना अधिक प्रिय है, वे क्यों यह विचार करेंगे ? उन्हें तो धन्ना की तारीफ करने का कोई न कोई बहाना मिलना चाहिए। अगर हम लोग भी बेईमानी पर उतारु हो जाएं तो क्या विशेष धनोपार्जन नहीं कर सकते।

धनचन्द्र—मगर यह भी कैसे मान लिया जाय कि लाख मोहरें धन्ना ने ही अपनी बुद्धि से उपार्जित की हैं ? न कुछ जैसी पूंजी के बल पर कोई जहाज का जहाज खरीदने का साहस नहीं कर सकता। अतएव मेरा खयाल तो यह है कि उसे परोक्ष रूप में किसी बड़े की सहायता अवश्य प्राप्त थी।

यह अकेले धन्ना का काम नहीं हो सकता।

धनदेव—कुछ भी हो, बात यह है कि हमें इस परीक्षा में नीचा देखना पड़ा है। अतएव सोचना चाहिए कि इस अपमान का प्रतीकार किस प्रकार किया जाय ?

धनचन्द्र—पिताजी से कह कर दूसरी बार परीक्षा करवाई जाय।

धनदत्त—ठीक है, यही उचित है।

तीनों भाई मिलकर फिर धनसार सेठ के पास पहुंचे। धनसार तीनों का एक साथ आगमन देख समझ गये कि यह फिर कुछ न कुछ खुरापात करना चाहते हैं। फिर भी उन्होंने प्रेम के साथ कहा—कहो पुत्रो ! किस प्रयोजन से आए हो ?

धनदत्त ने तीनों का नेतृत्व करते हुए कहा—पिताजी, हम चारों भाइयों की यह परीक्षा ठीक ढंग से नहीं हुई। आप इस नगर के प्रतिष्ठित साहूकार हैं। आपकी प्रतिष्ठा को धक्का न पहुंचे, ऐसे उपाय से ही द्रव्योपार्जन करना चाहिए, यह सोचकर हम लोगों ने कोई अनुचित तरीका अख्तियार नहीं किया। धन्ना ने इस विचार की उपेक्षा की है। अतः दूसरी बार परीक्षा होनी चाहिए।

धनसार—धन्ना ने अनुचित उपाय का अवलम्बन किया, यह तो मैंने किसी के मुँह से नहीं सुना ! तुम ही कह रहे हो !

धनदत्त ने भाइयों के सामने जो बात कही थी, वही धनसार के सामने कह कर अन्त में कहा-अगर वह सेठ मुनाफा

देकर माल न खरीदता तो धन्ना क्या करता ? माल का मूल्य कहाँ से चुकाता ?

धनसार—यह बात तो धन्ना से ही पूछनी चाहिए। मगर यह ऐसी बात नहीं जो समझ में न आ सके। अगर सब व्यापारी यही सोच कर बैठ रहें कि हमारा खरीदा माल न बिका तो क्या करेंगे ? तब तो व्यापार आज ही ठप्प हो जाय। व्यापार के मूल में यह मान्यता निहित होती है कि खरीदा हुआ माल बिकेगा। हाँ किस माल की कितनी माँग है, यह सोच लेना व्यापारी की अपनी बुद्धि पर निर्भर है। जो इस बात को समझेगा; उसे सफलता मिलेगी ही।

धनदत्त—खैर, जाने दीजिए इस बात को। हम दोबारा परीक्षा चाहते हैं। एक बार फिर भाग्य आजमाने में हानि ही क्या है ?

धनसार—मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह तो एक प्रकार से व्यापार का अभ्यास है; स्वावलम्वी बनने की शिक्षा है। अवश्य दूसरी बार परीक्षा ली जायगी। परन्तु..........

धनदत्त—क्या ? यह भी बतला दीजिए।

धनसार—तुम लोग अपने हृदय से तुच्छ भावनाओं को निकाल दोगे तो तुम्हारा मंगल होगा। अपने भाई के प्रति दुर्भाव रखना योग्य नहीं है। जैसे मैं धन्ना की सफलता को अपनी ही सफलता समझता हूँ, उसी प्रकार तुम लोग भी बड़े भाई के नाते उसकी सफलता को अपनी ही सफलता क्यों नहीं समझते ? ऐसा समझ लो तो तुम्हें कितना सुख होगा ? कितना सन्तोष मिलेगा ? परिवार में प्रीति का कैसा स्पृहणीय वातावरण

होगा ? जिस परिवार में भाई-भाई में विरोध होता है, अनबन होती है, एक भाई दूसरे भाई के उत्कर्ष को देख कर जलता है, उस परिवार की दशा कदापि अच्छी नहीं रह सकती। उसकी सुख-समृद्धि धूल में मिल जाती है। कौरव-कुल की समृद्धि का विनाश क्यों हुआ ? दुर्योधन की ईर्षा की ज्वालाओं में प्रताप-शाली कौरव वंश निःशेष हो गया ! इसका प्रधान कारण बन्धु-विरोध ही था। भाई को भाई के प्रति ईर्षा ने ही वह भयंकर परिणाम उत्पन्न किया था। इसका विपरीत उदाहरण देखना हो तो अयोध्या की ओर देखो। रघुकुल के राजा दशरथ के पुत्र भी चार ही भाई थे। परन्तु उनमें कितनी गाढ़ी प्रीति थी ? भरत ने भातृ प्रेम के सामने अवध का राज्य तुच्छ समझा। लक्ष्मण ने बन्धु प्रेम की तुलना में राजमहल के ऐश्वर्य भोग की रंच मात्र भी अभिलाषा नहीं की। वे अपने भाई की सेवा के लिए वन में भटके ! चारों एक दूसरे पर अपने प्राण निछावर करने को उद्यत थे। तभी तो वे उस समय के अद्वितीय प्रतापी राक्षसराज रावण को भी परास्त करने में समर्थ हो सके !

पुत्रो ! इन दोनों उदाहरणों पर भली भाँति विचार करो। अपने परिवार का भविष्य यदि सुखमय देखना चाहते हो तो कौरवों से शिक्षा लो और राघवों का अनुकरण करो। भाई-भाई में प्रगाढ़ प्रेम होगा तो तुम्हारे लिए इसी पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आएगा। तुम्हें किसी वस्तु की कमी नहीं रहेगी। चारों एक प्राण होकर रहो। प्रत्येक की सफलता और विफलता को अपनी ही सफलता विफलता अनुभव करो। मेरी बात पर ध्यान दोगे तो तुम्हीं सुख पाओगे।

धनदत्त आदि पूर्वोपार्जित पाप के फल की प्रेरणा के कारण अपने पिता के मंगलमय उपदेश का अनुसरण करने में

समथ न हो सके। नीतिज्ञ जन यथार्थ ही कहते हैं:—

ताद्दशी जायते बुद्धि-र्व्यवसायोऽपि ताद्दशः ।
सहायास्ताद्दशाश्चैव, याद्दशी भवितव्यता ॥

अर्थात्—जिस मनुष्य का जैसा होनहार होता है, उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाती है। वह होनहार के अनुसार ही कार्य करने लगता है और सहायक भी उसे वैसे ही मिल जाते हैं।

और भी कहा है:—

भवितव्यं यथा येन, नासौ भवति चान्यथा ।
नीयते तेन मार्गेण, स्वयं वा तत्र गच्छति ॥

अर्थात्—जैसा होनहार है, वैसा ही होता है; अन्यथा नहीं हो सकता। होनहार के वशीभूत मनुष्य या तो स्वयं ही होनहार के मार्ग पर चलने लगता है या होनहार उसे घसीट कर उस मार्ग पर ले जाती है।

इस कथन के अनुसार धन्ना के तीनों भाई अपनी होनहार से प्रेरित थे। अतएव उन्हें अमृत-सा उपदेश भी विष के समान प्रतीत होता था। वे अपने दुष्ट अभिप्राय का परित्याग न कर सके।

धनसार सेठ ने जब देखा कि मेरी शिक्षा का कुछ भी असर नहीं हो रहा है तो उन्होंने दूसरी बार भाग्य परीक्षा की योजना की। इस बार भी तीनों को चौंसठ-चौंसठ मोहरें दी गईं और उनकी कमाई से कुटुम्ब को भोजन कराने की बात निश्चित हुई। तीनों लड़कों ने इस बार अपनी समस्त बुद्धि और कर्तृत्वशक्ति खर्च कर दी। फिर भी वे थोड़ा-थोड़ा द्रव्य

ही उपार्जन कर सके। थोड़े द्रव्य से परिवार को भोजन कराया तो भोजन भी तुच्छ ही रहा।

चौथे दिन धन्ना चौंसठ मोहरें लेकर चला। जाते ही उसने एक विशालकाय और बलिष्ठ मेष (मेंढ़ा) खरीदा। धन्ना को मालूम था कि यहाँ के राजकुमार को मेष पालने का बहुत शौक है और वह मेषों की लड़ाई देखने का भी शौकीन है। अतएव उसने कीमत की तनिक भी चिन्ता न करके नगर में जो सबसे बलिष्ठ मेष था, वही मुँह-माँगा मोल देकर खरीद लिया।

मेष को साथ लेकर धन्ना राजमहल की तरफ चला। मेष बड़ा ही सुन्दर था। अतएव जब उसे लेकर धन्ना राजपथ पर चला तो कितने ही दर्शक उसके पीछे हो लिए।

राजमहल के सामने पहुँच कर धन्ना ने अपना मेष खड़ा कर दिया और राजकुमार को सूचना दी। राजकुमार बाहर आया उसने धन्ना की चुनौती स्वीकार की और एक लाख मोहरों की शर्त बदी गई। जिसका मेष पराजित हो जाय उसे एक लाख मोहरें जीतने वाले को देना दोनों ने स्वीकार कर लिया। दर्शकों की भीड़ एकत्र हो गई। राज सभा में भी इस प्रतियोगिता का संवाद पहुंच गया। महाराज जितशत्रु भी अपने सभासदों के साथ दर्शक के रूप में उपस्थित हुए।

दोनों मेष आमने-सामने हुए। दोनों ने थोड़ी देर तक युद्ध के योग्य मनोभूमिका तैयार की और एक दूसरे पर हमला करने का मौका देखा। फिर दोनों भीड़ गये। कभी धन्ना का मेष राजकुमार के मेष को पीछे धकेलता तो कभी मौका पाकर राजकुमार का मेष धन्ना के मेष को धकिया देता। मगर दोनों

वड़ी फुर्ती के साथ सँभल जाते और अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने प्रतिस्पर्द्धी को पछाड़ने का प्रयत्न करते। कभी दोनों मस्तक लगाकर क्षण भर के लिए विश्राम लेते और अचानक ही एक हमला कर बैठता। पहले हमला करने वाला दूसरे को पीछे हटाता, पर दूसरा फिर अपना जोर लगा कर रुक जाता। कभी दोनों मेषों के सींग आपस में टकराते और देखने वालों को जान पड़ता कि किसी के सींग टूटने ही वाले हैं। कभी मस्तकों के भिड़ने की अ वाज़ सुनाई देती।

वीच-वीच में दर्शकों की तालियों की ध्वनि मेषों की हिम्मत वढ़ाती हुई जान पड़ती थी।

इस प्रकार लम्बे समय तक दोनों मेष जूझते रहे! दोनों ने ही अपनी अपनी बलिष्ठता का अच्छा परिचय दिया! दर्शकों को बड़ा आह्लाद हो रहा था। परन्तु उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो मध्यस्थ भाव से अनासक्ति पूर्वक इस मेष युद्ध को देख रहे थे।

अन्त में राजकुमार का मेष, धन्ना के मेष की टक्कर झेलने में असमर्थ-सा प्रतीत होने लगा। यह देखकर धन्ना के मेष का साहस ओर अधिक वढ़ गया। उसने प्राणपन से राजकुमार के मेष पर आक्रमण किया। उसके प्रचंड आक्रमण को राजकुमार का मेष सहन करने में असमर्थ रहा। वह अपनी भाषा में चिल्लाता हुआ मैदान छोड़कर हट गया। धन्ना का मेष विजयी हुआ। दर्शकों ने प्रसन्नतासूचक कोलाहल मचाया। तालियाँ बजाई। महाराज जितशत्रु ने निर्णय दे दिया—धन्ना का मेष विजयी हुआ।

उसी समय धन्ना की शर्त के अनुसार एक लाख मोहरें गिन दी गई। धन्ना मोहरें लेकर चलने को उद्यत हुआ तो राजकुमार ने उसे बधाई दी। उसके मेष की प्रशंसा की। धन्ना ने बधाई के लिए राजकुमार को धन्यवाद दिया। आभार प्रकट किया।

उसी समय राजकुमार के मन में आया कि इस मेष को अगर मैं खरीद लूं तो कितना अच्छा हो ! पर धन्ना कुमार उसे बेचने के लिए तैयार होगा या नहीं, यही प्रश्न था। राजकुमार ने कुछ सोच कर धन्ना से कहा—'धन्नाजी, क्या इसे बेच नहीं सकते ? मैं इसे खरीदना चाहता हूँ।'

धन्ना—कुमार, आपको विदित ही हो गया है कि यह मेष मेरे लिए कितना लाभदायक है। इसके द्वारा अभी-अभी मैं एक लाख मोहरें कमा सका हूँ। ऐसी उपयोगी वस्तु को कौन बेचना पसन्द करेगा।

राजकुमार—मगर मेष लड़ाना तुम्हारा धंधा तो नहीं।

धन्ना—नहीं, सो तो नहीं है।

राजकुमार—फिर बेच देने में क्या हर्ज है ?

धन्ना—यह मेष एक रत्न है और रत्न राजाओं के पास ही शोभा देते हैं। इस दृष्टि से मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आपको यह रत्न अर्पित कर दूँ। मगर इसके बदले मूल्य नहीं लूँगा।

राजकुमार—मूल्य दिये बिना मैं मेष नहीं लूँगा।

धन्ना असमंजस में पड़ गया। धन्ना को मेष की कोई आवश्यकता नहीं थी और राजकुमार उसे लेने के लिए इच्छुक

समझने के लिए आन्तरिक दृष्टि चाहिए। अनुभव करने के लिए पुण्य का उदय होना चाहिए। पुण्य की हीनता अपने पास की वस्तु का भी उपयोग नहीं करने देती!

ईर्षा से प्रेरित तीनों भाई आपस में सोचने लगे—सभी कुछ उलटा होता जा रहा है। हमारे पांसे उलटे पड़ रहे हैं। धन्ना बड़ा चालाक है। वह हर बार कुछ न कुछ कबाड़ा कर डालता है। इस बार उसने गजब कर दिया!

धनदत्त ने कहा—लोग परिणाम को देखते हैं, काम को नहीं देखते। मेष लड़ाना क्या साहूकारों का काम है? यह तो स्पष्ट ही जूआ है और जूआ सात कुव्यसनों में से एक है। धन्ना जुआरी बन गया है। पर पिताजी उसकी पीठ थपथपाते हैं। हम लोगों की एक नहीं मानते। फिर भी हमें एक बार फिर कहना चाहिए।

धनचन्द्र ने धनदत्त का समर्थन किया। कहा—पिताजी ने व्यापार करने के लिए पूंजी दी थी, जूआ खेलने के लिए नहीं। अतएव धन्ना की यह कमाई अवैधानिक है। उसने पिताजी की आज्ञा भंग की है। अतएव यह परीक्षा, परीक्षा नहीं गिनी जा सकती। हम लोग मिल कर चलें और पिताजी को यह बात स्पष्ट जतला दें।

आखिर तीनों सलाह करके धनसार सेठ के पास पहुँचे। सेठ को समझते देर नहीं लगी कि यह लोग किस प्रयोजन से आए हैं। फिर भी उन्होंने प्रेम से बैठने का आदेश दिया। तीनों बैठे और बैठते ही धनदत्त ने बात छेड़ दी। वह बोला—पिताजी, आज का भोज तो बड़ा ही अद्भुत रहा!

धनसार—कैसे ?

धनदत्त—आपके राज्य में न्याय-नीति का अन्न खा रहे थे, आज जुआ चोरी का अन्न भी खाना नसीब हो गया !

धनदेव—इतने बड़े घर में सब को आश्रय मिलना चाहिए। बेचारे जुआ ने क्या बिगाड़ा है ! साहूकार के घर में उसे आश्रय न मिला तो फिर कहाँ मिलेगा !

धनचन्द्र—बड़ी अच्छी बात है कि यह सब पिताजी के सामने ही हो रहा है। कोई हम लोगों को तो दोष न देगा !

धनदत्त—मगर जुआ तो ऐसी बलाय है कि सारे परिवार को ले डूबेगा। जुआरी राजा भी क्षण भर में भिखारी बन जाते हैं ! राजा नल और युधिष्ठिर को कौन भूल सकता है ?

धनसार—तुम्हारे व्यंग-वचनों का अर्थ समझ में नहीं आया। जरा खोल कर कहो तो पता चले।

धनदत्त—संभावना भी नहीं पिताजी, कि आपकी समझ में आ सके। आ सके तो परिवार की आबरू बच जाय। अन्यथा वह जाने को ही है।

धनसार—ऐसा है तो तुम्हारा यह सब कहना वृथा है !

धनदत्त—वृथा जानते हुए भी बिना कहे रहा नहीं जाता।

धनसार—तो फिर कह डालो न !

धनदत्त—आप क्या नहीं जानते ? मोहरों की चमक से आपकी बुद्धि चकाचौंध नहीं हो सकती। आपको मालूम ही है

कि आज धन्ना ने जुआ खेला है। यह मोहरें जुआ की कमाई हैं।

धनसार—धन्ना ने जुआ खेला है ?

धनदत्त—जी हाँ, नहीं तो क्या खजाना खोद कर लाया है ? उसने मेंढों की लड़ाई करवाई और उसी में मोहरें जीत कर लाया है !

धनचन्द्र—आपने जो पूंजी दी थी सो क्या जुआ खेलने के लिए ? साहूकार का बेटा और मेष युद्ध की शर्त ! धन्ना ने आपकी प्रतिष्ठा को धब्बा लगाया है। आपकी आज्ञा की अवहेलना की है। घर में जुआ का प्रवेश कराया है। अगर उसे रोका न गया तो आगे चलकर क्या दशा होगी, यह आप स्वयं कल्पना कर सकते हैं।

धनदेव—पिताजी, क्या आज की घटना से हम लोग यह परिणाम निकालें कि आपने हम लोगों को जुआ खेलने की छुट्टी दे दी है ? मैं समझता हूँ, आप अपने पुत्रों का जुआरी बनना पसंद नहीं करेंगे। अगर यही बात है तो आज की परीक्षा गैर-कानूनी है।

धनसार—मुझे तुम लोगों से जो कुछ कहना था सो पहले ही कह चुका हूँ। परन्तु दुर्भाग्य से मेरी बात तुम्हारी समझ में नहीं आई। यह तुम्हारे भाग्य का ही दोष है, तुम्हारा नहीं। इस बन्धु विग्रह में मुझे घोर अमंगल दिखाई दे रहा है। मेरी दीर्घ दृष्टि जो कुछ देख रही है, कदाचित् तुम उसे देख पाते तो अपने तौर-तरीके अवश्य बदल डालते और अमंगल से बचने का प्रयत्न करते। किन्तु भवितव्य अत्यन्त प्रबल है। अतएव अभी

नहीं, बाद में तुम्हें समझ आएगी। उस समय पश्चात्ताप करना पड़ेगा। मगर इन बातों को जाने दो। तुमने आज की घटना को जिस अतिरंजित रूप में कल्पित किया है, इसी को तिल का ताड़ बनाना कहते हैं। धन्ना के प्रति तुम्हारी ईर्षा किस सीमा तक जा पहुँची है, इसी से विदित हो जाता है। उसके विरुद्ध तुम्हारा आरोप कमाई न कर सकने का था। उस आरोप को उसने अपने बुद्धिबल से निराधार सिद्ध कर दिया। तब तुम उस पर दूसरे-दूसरे आरोप लगाने लगे। इच्छा हो सो कह सकते हो। कोई किसी के मुँह पर ताला नहीं डाल सकता। तथापि तुम्हारे प्रति मेरे अन्तःकरण में जो प्रगाढ़ प्रीति है, उसी से प्रेरित होकर एक बार फिर कहता हूँ-अपना अहित न करो। भाई-भाई प्रेम करके रहो। आपस में आत्मीयता का स्निग्ध भाव जगाओ।

धनसार फिर बोले-हाँ, परीक्षा की बात कहते हो सो उसे अस्वीकार करने का कोई प्रश्न नहीं है उससे तो तुम सबका अर्थोपार्जन का अभ्यास बढ़ता ही है। अतएव कल पुनः परीक्षा ले लेंगे। परंतु प्रतिस्पर्द्धा में भी सद्भावना हो सकती है।

तीनों भाई यही चाहते थे कि एक बार फिर परीक्षा ली जाय। धनसार ने इसे स्वीकार कर लिया। अतएव तीनों वहाँ से चल दिये। धनसार के हृदयस्पर्शी उपदेश पर उन्होंने तनिक भी विचार न किया।

दूसरे दिन से फिर परीक्षा आरंभ हुई। इस बार प्रत्येक को सौ-सौ स्वर्ण मोहर पूंजी के रूप में दी गई। तीनों इस बार बड़ी से बड़ी कमाई करके दिखलाना चाहते थे। मगर इस प्रयत्न

में वे थोड़ी–सी कमाई भी न कर सके। यही नहीं, वे गांठ की पूंजी गँवाकर लौटे। उनके मुँह पर स्याही पुत गई।

इसी प्रतिष्ठानपुर नगर में श्रीधर नामक एक विपुल धन का स्वामी साहूकार रहता था। लोगों का अनुमान था कि उसके पास छयासठ करोड़ का धन है। घोर परिश्रम करके उनने यह धन कमाया था। वह पक्का अर्थपिशाच था। न अच्छा खाता-पीता न पहिनता आढ़ता। अपने परिवार को भी उसने कभी सुख चैन से नहीं रहने दिया। उसकी कृपणता चरम सीमा को प्राप्त हो चुकी थी। उसके विषय में निम्नलिखित उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती थी:—

> कृपणेन समो दाता, न भूतो न भविष्यति।
> अस्पृशन्नेव वित्तानि, यः परेभ्यः प्रयच्छति॥

अर्थात्—इस जगत में कंजूस के समान दानी न तो कोई आज तक हुआ है और न कोई होगा ही। वह बेचारा अपने धन को छूता तक नहीं है और सब का सब दूसरों को दे देता है।

श्रीधर सेठ स्वयं अपने धन का उपभोग नहीं कर सकता था और चाहता था कि कोई दूसरा भी मेरे धन का उपभोग न कर ले। यहाँ तक कि अपने पुत्रों को भी वह अपना कष्टोपार्जित द्रव्य देना नहीं चाहता था। अतएव उसने कुछ अत्यन्त बहुमूल्य मणियाँ खरीद ली थीं और अपने शयन करने के पलंग के पायों में छेद करवा कर उनमें मणियां भर रखी थीं। वह उसी पलंग पर सोता और मणियों की रखवाली करता।

श्रीधर एक बार बीमार हुआ। बीमारी कुछ बढ़ गई तो उसने अपने लड़कों को बुला कर कहा—इस शरीर का कोई

भरोसा नहीं है। बुढ़ापे का शरीर ठहरा, किसी भी समय इसका अन्त हो सकता है। मेरी इच्छा यह है कि जब देहान्त हो तो मेरा यह पलंग भी श्मशान में ले जाया जाय। इसे घर में मत छोड़ देना।

लड़कों को क्या पता था कि इस इच्छा के भीतर क्या मर्म छिपा है ? उन्होंने पलंग के श्मशान में ले जाने की बात स्वीकार करते हुए कहा--आप चिंता न करें। अभी ऐसी स्थिति दिखाई नहीं देती। फिर भी आपको दान-पुण्य करना हो सो दिल खोल कर कीजिए।'

श्रीधर को यह वचन कांटे के समान चुभे। उसने सोचा दान पुण्य की बातें करने वाले यह लड़के मेरे धन को कितने दिन रहने देंगे ? अतएव मैंने मणियाँ अपने साथ लेते जाने का जो विचार किया है, वह उचित ही है। इनके पल्ले पड़ी तो यह लोग आनन-फानन उड़ा देंगे !

कर्मयोग से श्रीधर सेठ की बीमारी बढ़ती ही चली गई। अन्त में एक दिन वह नीलाम बोल गये। पिता की अन्तिम इच्छा के अनुसार उसके लड़के पलंग के साथ ही उसे श्मशान में ले गये। पलंग चाण्डाल ने ले लिया और कंजूस श्रीधर की लाश चिता की आग में भस्म हो गई। देखते-देखते वह नाम-शेष हो गया।

नादान श्रीधर ! कितना मूर्ख था वह कृपण ! उसकी धारणा थी कि वह अपनी मणियाँ परलोक में साथ ले जायगा ! पर लक्ष्मी कभी किसी के साथ गई है ? किन्तु अतिशय लोभ मनुष्य की साधारण बुद्धि पर भी पर्दा डाल देता है। श्रीधर

धन लोभ के कारण विवेकविकल हो गया था अतएव बहुमूल्य मणियाँ न उसके काम आईं और न उसके पुत्र ही उनसे कोई लाभ उठा सके।

आज धन्ना सौ मोहरें लेकर कमाई करने चला और बाजार में पहुंचा तो उसे पलंग बेचता वही चाण्डाल मिला। चाण्डाल को उस पलंग से ज्यादा पैसे की आवश्यकता थी। अतएव वह बेचने के लिए लाया था। परन्तु मुर्दे का पलंग जानकर कोई खरीदता नहीं था। इसी समय धन्ना वहाँ जा पहुँचा। उसे पता चला कि पलंग सूम-शिरोमणि श्रीधर का है और श्मशान से आया है। धन्ना की सूक्ष्म और दूरगामिनी बुद्धि ने बहुत कुछ समझ लिया। उसने सोचा—पलंग रहस्यमय होना चाहिए, अन्यथा श्रीधर क्यों श्मशान तक ले जाने की आज्ञा देता? अवश्य कुछ मर्म है!

यह सोच कर धन्ना ने एक मोहर देकर वह पलंग खरीद लिया। चाण्डाल उसे धन्ना के घर रखने आया। वह रख रहा था कि असावधानी के कारण पलंग दीवाल से टकरा गया। पाये सब पोले थे, अतएव टक्कर खाकर टूट गये और उनमें भरी हुई मणियाँ नीचे बिखर गईं।

नीचे बिखरी मणियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो श्रीधर सेठ की मूढ़ता का उपहास कर रही हों और अब समुचित आश्रय पाकर प्रसन्नता की हँसी हँस रही हों।

यह दृश्य देखकर धन्ना के घर वाले विस्मित रह गये और उसकी शतमुखी बुद्धि की प्रशंसा करने लगे।

धन्ना हर बार पूर्व की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त कर रहा था और इस कारण उसका यश भी बढ़ता जाता था। यह देख धनदत्त आदि को अत्यन्त निराशा हुई। उनकी हिम्मत टूट गई। अब उनमें प्रतिस्पर्द्धा की भावना न रही; तथापि वे हृदय से द्वेष को न निकाल सके।

६

नगरसेठ धन्ना
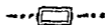
आयुः श्रेयोऽनुबन्धि प्रचुरमुरुगुणं वज्रसारः शरीरम्,
श्रीस्त्यागप्रायभोगा सततमुदयिनी धीः परार्ध्या श्रुताढ्या।
गीरादेया सदस्या व्यवहृतिरपथोन्माथिनी सद्भिरर्थ्या,
स्वाम्यं प्रत्यर्थिकाम्यं प्रणयिपरवशं प्राणिनां पुण्यपाकात्॥

पुण्य का परिपाक होने पर प्राणियों को सभी अनुकूल संयोग मिल जाते हैं। इस विशाल विश्व में कोई वस्तु नहीं जिसे पुण्यशाली पुरुष चाहे और वह उसे प्राप्त न हो। पुण्यवान को दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है और वह दीर्घायु कल्याणमय होती है। सुन्दरता, मनोहरता आदि सद्‌गुणों से सम्पन्न शरीर मिलता है और वह वज्र की तरह अभेद्य होता है। उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। वह लक्ष्मी निरन्तर बढ़ती ही चली जाती है और प्रायः दान के रूप में ही पुण्यवान् उसका उपभोग करता है। पुण्यवान् की बुद्धि भी उत्कृष्ट होती है। उस बुद्धि में उसे सेवा-शुश्रूषा करने का विचार उत्पन्न होता है। उसकी बुद्धि शास्त्रज्ञान से समृद्ध होती है। पुण्यवान् की वाणी में ऐसा जादू होता है कि सभी उसे ग्रहण करते हैं। किसी भी सभा-समूह में वह अपना अद्‌भुत प्रभाव प्रदर्शित करती है। पुण्यवान् का व्यवहार इतना सुन्दर होता है कि उसे देखकर दूसरे लोग भी

कुमार्ग का त्याग कर देते हैं। सत्पुरुष उसके समान व्यवहार करने की अभिलाषा करते हैं। पुण्यशाली को प्रभुत्व भी ऐसा प्राप्त होता है कि उसके विरोधी भी उसके समान बनने की इच्छा करते हैं।

पुण्य की यह महिमा जानते हुए और उसके फल की कामना करते हुए भी लोग पुण्य का उपार्जन नहीं करते, यह आश्चर्य की बात है ! परन्तु जो लोग पुण्यात्माओं के प्रति द्वेष का भाव रखते हैं, उनकी दशा तो अत्यन्त ही दयनीय है ! किसी के द्वेष करने से पुण्यात्मा को कोई हानि नहीं पहुँच सकती; द्वेष करने वाले स्वयं मुँह की खाते हैं । पुण्यवान् का अपयश करने वाले स्वयं अपयश के भागी होते हैं। उनकी चेष्टाओं से पुण्यवान् का यश उलटा बढ़ता है। धन्ना कुमार पुण्य लेकर अवतरित हुआ था। अतएव उसके लिए सभी इष्ट पदार्थ अनायास ही सुलभ थे। लक्ष्मी उसकी दासी थी। बुद्धि का अक्षय भंडार उसके पास था। कीर्ति उसकी बढ़ रही थी। यह सब कौन नहीं चाहता ? परन्तु इसके लिए पुण्य की आवश्यकता है। उसका आचरण करने वाला सभी कुछ पा सकता है।

इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना घटित हो गई, जिसने धन्ना की प्रतिष्ठा और कीर्ति में चार चाँद लगा दिये।

प्रतिष्ठानपुर बन्दरगाह था। एक दिन इस बन्दरगाह पर एक भूला भटका जहाज आ पहुंचा। जहाज के लोग अत्यन्त परेशान थे। कई दिनों तक समुद्र की यात्रा करते-करते ऊब गये। वे जहाँ जाना चाहते थे, वहाँ न पहुँच कर संयोगवश प्रतिष्ठानपुर आ पहुंचे थे। राजा जितशत्रु को उनके आने का संवाद मिला तो वह स्वयं उनकी सार-सँभाल करने गये। राजा

ने सब की यथोचित व्यवस्था कर दी और सब को आराम पहुंचाया। उनका सब माल खरीद कर लिया और व्यापारियों ने मिलकर खरीदा। उनमें धन्ना भी भागीदार था।

व्यापारियों ने धन्ना को भोला बालक समझ कर ऐसी चीज देनी चाही जो उनकी दृष्टि में निकम्मी थी। वह थी एक प्रकार की मिट्टी जो बहुत से घड़ों में भरी हुई थी और जिसे व्यापारी फिजूल की चीज समझ रहे थे। मगर बहत्तर कलाओं में कुशल धन्नाकुमार वास्तव में भोला नहीं था। वह उस मिट्टी का मूल्य बखूबी समझता था। बहत्तर कलाओं में स्वर्ण बनाने की विद्या भी उसने सीखी थी। उसकी वही विद्या आज काम में आई।

धन्ना के हिस्से में मिट्टी आई तो उसे देखकर वह मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। मगर उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट नहीं होने दी। दूसरे उसे नादान बालक समझ रहे थे और वह उन्हें नादान 'दाना' समझ रहा था।

धन्ना मिट्टी के घड़े लेकर जब घर आया तो उसके भाइयों को भी उसे बदनाम करने का अवसर मिल गया। मिट्टी देखकर वे कहने लगे—धन्ना की बुद्धिमत्ता का यह सर्वश्रेष्ठ नमूना है! और हिस्सेदार तो कीमती माल उठा ले गये और आप यह मिट्टी बटोर कर ले आये हैं! इसी प्रकार का व्यापार जारी रहा तो बहुत शीघ्र ही पूंजी ठिकाने लग जायगी। इसी बिरते पर धन्ना की प्रशंसा की जाती है! धन्य है कुंवर साहब की अक्लमन्दी!

वे लोग सेठ धनसार के पास भी पहुँचे। कहा—पिताजी, आज तो धन्ना ने अनोखी ही सूझ-बूझ का परिचय दिया है! जरा चलकर उसका कौशल देख तो लीजिए! इतना बढ़िया

माल खरीद लाया है ! दूसरे व्यापारियों ने उसे कैसा बुद्धू बनाया है ! लाखों के बदले में मिट्टी पकड़ा दी है और सपूत बेटा उसे बड़े यत्न से हवेली में रखने के लिए लाये हैं।

धनसार सेठ को पूर्ण विश्वास था कि धन्ना ठगाई में नहीं आ सकता। अगर वह मिट्टी लाया है तो उसमें भी कोई मर्म होना चाहिए। उसके खरीदे हुए मुर्दे के पलंग में से भी बहुमूल्य मणियाँ निकलीं तो मिट्टी में से भी कोई मूल्यवान् वस्तु निकल सकती है। फिर भी अपने बड़े लड़कों के सन्तोष के लिए और कूतूहल की उपशान्ति के लिए वे उठ कर वहाँ आये, जहाँ मिट्टी के भरे घड़े रक्खे थे।

सेठ धनसार ने घड़ों में भरी मिट्टी देखी। वह स्वयं भी न समझ सके कि इसका क्या उपयोग हो सकता है ?

इतने में धनदेव ने कहा—पिताजी, यद्यपि यह मिट्टी लाखों के मोल की है, फिर भी हमारी हवेली इसके लिए उपयुक्त स्थान नहीं है। इसके योग्य स्थान सड़क या खेत हो सकता है। या तो सड़क पर फिकवा दीजिए या खेत में फिकवा दीजिए। हवेली में रख कर क्यों व्यर्थ जगह घेरी जाय ?

सच है, जो जिस वस्तु के गुण को नहीं जानता, वह उसकी निन्दा करता है। परन्तु गुणज्ञ जन उन निन्दकों की अज्ञानता पर दया करते हैं। कहा भी है:—

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं,
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भजाताम्
मुक्तां परित्यज्य बिभर्त्ति गुञ्जाम् ॥

अर्थात्—जो मनुष्य जिस वस्तु के गुणों के अतिशय को नहीं समझ सकता, वह उसे तुच्छ समझ कर निन्दा करे, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भीलनी बहुमूल्य गजमुक्ताओं को छोड़ कर गुंजाफलों को धारण करती है–उन्हें अपना आभूषण बनाती है।

क्या इससे गजमुक्ता का मूल्य कम हो जाता है? नहीं, विवेकवान् की दृष्टि में गजमुक्ता ही मूल्यवान् रहता है। भीलनी उसे नहीं लेती तो वह अपनी ही मूर्खता प्रकट करती है।

धन्ना इसी कथन को स्मरण करके चुप था। वह जानता था कि इस मिट्टी की खूबी जानते ही यह सब चुप हो जाएँगे। धन्ना की इस चुप्पी ने धनदत्त आदि का हौंसला बढ़ा दिया। आज धनदत्त को बदला लेने का स्वर्ण-अवसर मिला था और धन्ना को स्वर्ण बनाने का शुभ अवसर मिला था।

धनसार ने धन्ना से पूछा—पुत्र, यह सब क्या है? किस उद्देश्य से यह खरीद लाये हो?

धन्ना—पिताजी, आज नगर के अनेक व्यापारियों के साझे में मैंने भी व्यापार किया था, परन्तु उन लोगों ने अच्छा-अच्छा माल रख लिया और जो बेकार समझा, वह मुझे दे दिया! मैंने यही लेकर सन्तोष मान लिया है। इसके बदले बहुत पूंजी देनी पड़ी है, इस कारण इसे फैंक देना उचित नहीं। कुछ न कुछ काम आ ही जायगी।

धनसार—नहीं, इतनी ही बात नहीं है। कुछ और होना चाहिए।

धन्ना—पिताजी, सैकड़ों कोस दूर तक, जहाज पर लाद कर क्या कोई भी व्यापारी साधारण मिट्टी बेचने के लिए लाता है ? मूर्ख से मूर्ख व्यापारी भी ऐसा नहीं कर सकता।

धनसार—तुम्हारा तर्क बहुत उत्तम है। मिट्टी सभी जगह मिलती है। उसे बेचने के लिए कोई जहाज पर नहीं लाद कर लाएगा। फिर भी इनकी उपयोगिता तो समझनी चाहिए।

धन्ना का तर्क सुनकर धनदत्त आदि हक्के-बक्के रह गए। उन्हें इसका कुछ उत्तर नहीं सूझता था। सोचने लगे-है बड़ा ही चंट छोकरा। कुछ न कुछ करामात करके दिखलाएगा।

धन्ना ने कहा-पिताजी, इसे ठिकाने रखकर फिर इसकी उपयोगिता बतलाऊँगा।

धनसार, धनदत्त आदि उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा करने लगे। धन्ना ने सब आवश्यक सामग्री एकत्र करके उस मिट्टी से सोना बना डाला। सब परिवार के लोग धन्ना की बुद्धि का असाधारण चमत्कार देखकर दंग रह गए।

धनदत्त आदि उपहास करने वालों के चेहरे पर कालिख पुत गई। यद्यपि उन्हें इस अवसर पर प्रसन्नता होनी चाहिए थी, मगर ईर्षा के कारण उन्हें उलटा दुःख हुआ। ठीक ही है, पापी जीवों के लिए सुख के कारण भी दुःख के कारण बन जाते हैं।

धीरे-धीरे धन्ना के कौशल का यह संवाद नगर भर में फैल गया। जिन व्यापारियों ने अपनी समझ में धन्ना को ठग लिया था, उन्होंने भी यह समाचार सुना। वह सोचने लगे-धन्ना

को ठगने के प्रयत्न में हम स्वयं ठग गये ! उन्होंने भी मुक्त कंठ से धन्ना के बुद्धि-वैभव की प्रशंसा की ! सारे नगर में उसकी वाह-वाह होने लगी। अनेक लोग तो धन्ना को देखने के लिए आने लगे।

राजा जितशत्रु के कानों तक भी यह समाचार पहुँचा। प्राचीन काल के राजा इस युग के राजाओं के समान नहीं थे। प्रजा का शोषण करना और भोग विलास करना उनका ध्येय नहीं होता था। प्रजा को सन्तति के समान मान कर उसका विकास-साधन करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। देश में शान्ति बनाये रखना, अन्याय अत्याचार न होने देना और प्रजा में नैतिक गुणों का विकास करना ही उनका कार्य था। वे प्रजा को अपना ही अङ्ग समझते थे। अतएव राजा जितशत्रु ने जब धन्ना की प्रशंसा सुनी तो उन्हें प्रसन्नता हुई। उन्होंने धन्ना को दरबार में बुलाया। उसकी सब के समक्ष प्रशंसा की।

राजा ने कहा—धन्ना कुमार प्रतिष्ठानपुर की प्रतिष्ठा है। इस राज्य की शोभा है। जिस राज्य में ऐसे बुद्धिमान् और भाग्यशाली युवक विद्यमान हैं, वह राज्य भी भाग्यशाली है। मैं इस कुमार की योग्यता से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। कुमार 'नगर-सेठ' की सम्मान सूचक पदवी के लिए सर्वथा योग्य है। अतएव मैं यह पदवी प्रदान करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि धन्ना कुमार नगर सेठ के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को भलीभाँति निभा सकेगा।

राजसभा में उपस्थित सभी सभासदों ने महाराज जित-शत्रु के निश्चय की सराहना की और धन्ना कुमार को उसकी योग्यता के लिए धन्यवाद दिया। धन्ना ने अत्यन्त नम्रतापूर्ण

शब्दों में अपनी लघुता प्रकट की और प्रतिष्ठानपुर नरेश की उदारता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अब धन्ना नगर सेठ बन गया। राजा ने नगरसेठ के योग्य सम्मान के साथ, ठाठबाट से, उसे अपने घर भेजा।

कहते हैं, पुण्यवान् मिट्टी छूता है तो वह भी सोना बन जाती है। यह लोकोक्ति धन्ना के विषय में सोलह आने सत्य साबित हुई। उसने जहाँ कहीं हाथ डाला, सर्वत्र अनुपम सफलता प्राप्त की। लक्ष्मी उसके हाथ का खिलौना बन गई। वास्तव में पुण्य का प्रभाव अचिन्त्य है! पुण्य ने आज धन्ना को महान् गौरव प्रदान किया।

१०

गृहत्याग

प्रियान् दूरेऽप्यर्थाज्जनयति पुरो वा जनिजुषः,
करोति स्वाधीनान् सखिवदथ तत्रैव दयते।
ततस्तान्वानीय स्वयमपि तदुद्देशमथवा,
नरं नीत्वा कामं रमयति पुरापुण्यमुदितम् ॥

—आशाधरजी

अर्थात्—पूर्वकाल में उपार्जन किया हुआ और उदयावस्था में आया हुआ पुण्य, दूर देश में भी, पुण्यकर्त्ता के लिए इष्ट भोगोपभोगों को उत्पन्न करता है। पुण्य में यह सामर्थ्य है कि वह अपने स्वामी की उत्पत्ति से पहले ही प्रिय पदार्थों को उसके अधीन कर देता है। पुण्य सन्मित्र की भाँति दूर देश में भी और समीप देश में भी पुण्यवान् के लिए इष्ट भोगोपभोग सामग्री को दूर देश से भी लाकर पुण्यशाली के चरणों में उपस्थित कर देता है या पुण्यशाली को ही उस देश में ले जाकर रमण कराता है।

पण्डितप्रवर आशाधरजी की यह उक्ति धन्ना के विषय में पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। यह बात कुछ अंशों में पाठक

समझ गये होंगे और आगे की कथा से पूरी तरह समझ जाएंगे।

अभी तक धन्ना का सन्मान सीमित क्षेत्र में था; परन्तु उसके सद्गुणों का सौरभ कस्तूरी की तरह उसकी हवेली की हद में सीमित नहीं रहा। पुण्य रूपी प्रबल पवन के झौंकों ने उसके सौरभ को शीघ्र ही सर्वव्यापी बना दिया। फिर राजा की ओर से भी उसे महान् सन्मान मिला। यह देखकर धन्ना के तीनों सहोदर भाइयों की छाती पर जैसे साँप लौट गया। उनकी मानसिक व्यथा की सीमा न रही। अब उन्हें अत्यन्त निराशा हो गई। वे समझ गये कि धन्ना का विरोध करने में हम सफल मनोरथ नहीं हो सकते। हमारा कोई भी प्रयत्न उसके उदीयमान उत्कर्ष का अवरोध करने में शक्तिमान् सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे नदी के पूर को हथेली लगा कर रोकना शक्य नहीं; उसी प्रकार धन्ना के सन्मान-सत्कार एवं यश को भी अपने प्रयत्नों से रोकना शक्य नहीं है। ज्यों-ज्यों उसे गिराने का प्रयत्न किया जाता है, त्यों-त्यों वह ऊंचा और ऊंचा ही उठता चला जाता है। और ज्यों-ज्यों वह ऊंचा होता जाता है, उसकी तुलना में हम नीचे होते जाते हैं। आखिर इस परिस्थिति का सामना किस प्रकार किया जाय? तीनों भाई इसी उधेड़बुन में लीन रहने लगे और धन्ना के बढ़ते हुए महत्त्व को नष्ट करने का कोई कारगर उपाय खोजने लगे। किसी ने कहा है:—

> दह्यमानाः सुतीव्रेण, नीचाः परयशोऽग्निना।
> अशक्तास्तत्पदं गन्तुं, ततो निन्दां प्रकुर्वते॥

अर्थात्—नीच लोग दूसरे के यश रूपी अत्यन्त तीव्र आग में जलते हुए, उसकी बराबरी करने में समर्थ नहीं होते हैं, तब उसकी निन्दा करने लगते हैं।

है। धन्ना को वृक्ष के नीचे बैठा देख किसान हल चलाना छो कर उसके पास आया। 'राम-राम' करके वह भी बैठ गया कुछ इधर-उधर की बातें होने लगीं। धन्ना ने किसान की बातें में खूब रस लिया।

धन्ना सुस्ता लिया था; अतएव जब वह आगे चलने के तैयार हुआ तो किसान ने कहा—भोजन का समय हो गया है क्या भूखे जाओगे? मेरे पास तुम्हारे योग्य भोजन तो है नहीं वही मोटी मोटी रोटियाँ और चटनी है। सुन्दर भोजन हमेश करते हो, आज इनका भी स्वाद चख लो!

धन्ना—प्रेम का भोजन अमृतमय होता है बाबा! मु तुम्हारा भोजन करने में न ऐतराज है, न अरुचि है। बल्कि भूखा हूं और भोजन करना भी चाहता हूँ।

किसान—फिर क्यों जा रहे हो?

धन्ना—सोचता हूँ, मुझे क्या अधिकार है कि तुम्हा भोजन ग्रहण करूं?

किसान—नगर में रहते हो, इसी से अधिकार का प्र उठा रहे हो! 'मनुष्य' के मन में यह प्रश्न ही नहीं उठता। ए मनुष्य दूसरे मनुष्य के काम आवे, इसमें अधिकार की क बात है?

धन्ना चकित रह गया। सोचने लगा—इसे कहते मनुष्यता! क्या हमारी नागरिकता, मनुष्यता से वंचित कर वाली नहीं है? कितनी सरलता, कितनी उदारता, कित सहृदयता है इस ग्रामीण किसान में। सचमुच, नगरों में

का विकास होता है तो मानवता का ह्रास ही होता है। देहात में बुद्धि का विकास नहीं, परन्तु मनुष्यता का विकास है! मनुष्य बुद्धि चाहता है,मानवता नहीं चाहता ! किन्तु मानवता-हीन बुद्धि मानवजाति के लिए अभिशाप के अतिरिक्त और क्या है !

प्रकट में धन्ना ने कहा—बाबा, तुम देवता मालूम पड़ते हो। पर विना काम किये मैं भोजन नहीं करता। भोजन कराना चाहते हो तो कुछ काम बतलाओ।

किसान असमंजस में पड़ गया। विचार करने लगा—यह कोई अनोखा आदमी है। कहता है, भोजन करना चाहता हूँ पर काम किये विना भोजन नहीं करूँगा! और लोग काम से जी चुराते हैं पर यह काम करना चाहता है!

किसान फिर बोला—अच्छा; काम बतला दूंगा। पहले भोजन कर लो; फिर जी चाहे सो काम कर देना।

धन्ना—नहीं, पहले काम फिर भोजन।

किसान—नहीं, पहले भोजन फिर काम!

धन्ना—यह नहीं होगा बाबा! हठ करोगे तो मुझे भूखा रहना पड़ेगा। खिलाना चाहते हो तो पहले काम बता दो।

किसान—बड़े हठीले मालूम होते हो राहगीर! अच्छा, तुम जीता मैं हार मानता हूँ। यह खड़ा है हल। खेत जोतो और खाना खाओ।

धन्ना ने कृषि-कर्म की भी शिक्षा ली थी। बहत्तर कलाओं में कृषिकला भी एक प्रधान कला है। आज वह भी काम में आई।

१३

करनी का फल
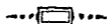
धन्ना राजमंत्री नियुक्त हुए। सब प्रकार की सुख-सामग्री प्राप्त हुई। वह आनन्द और शान्ति के साथ उज्जयिनी में रहने लगे। अपनी असाधारण योग्यता की बदौलत अच्छी ख्याति प्राप्त की! प्रजा में पूरी तरह अमन-चैन कायम किया। लोगों को सच्चा न्याय मिलने लगा। राजा का कोष बढ़ने लगा। थोड़े ही दिनों में वह सर्वप्रिय हो गये।

एक दिन धन्ना अपने महल के झरोखे में बैठे नगर का दृश्य देख रहे थे कि अचानक एक दुखी और दरिद्र परिवार पर उनकी दृष्टि पड़ी। उस परिवार को पहचानने में धन्ना को देर न लगी। वह उन्हीं का परिवार था। उसमें माता-पिता और भाई-भौजाई सभी थे। धन्ना ने जिस स्थिति में अपने परिवार को देखा, उसके हृदय को भारी ठेस पहुंची। आँखों से देखकर और पहचान कर भी उसको विश्वास न हो सका कि मेरे सम्पन्न और सुखी परिवार की यह हालत हो सकती है! सब के चेहरे दुःख और दीनता से मुरझाये हुए थे। फटे और मैले वस्त्रों से वह अपने तन को ढँके हुए थे। पिता और भाइयों की दाढ़ी बढ़ी हुई थी। स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि ये लोग बहुत दिनों से परेशान हैं और आपत्तियों के शिकार हो रहे हैं।

धन्ना का मनोभाव जानने के लिए राजा ने प्रश्न किया-हमारे यहाँ कुछ लोगों का मत है कि एक अज्ञात पथिक को राजमंत्री पद पर प्रतिष्ठित करना नीतिसंगत नहीं। इस विषय में आप क्या सफाई देते हैं?

धन्ना—मेरा खयाल है, इस विषय में सफाई देना आपका कार्य है, मेरा नहीं। मैं राजमंत्री बनने के लिए लालायित हूँ, यह समझ लेना मेरे प्रति अन्याय करना है। कुतूहलवश ही मैंने स्तंभ को बाँध दिया है। इससे आगे का निर्णय करना आपका अधिकार है। हाँ, सुपरिचितों को खोजने के लिए आम घोषणा की आवश्यकता नहीं होती। वे तो बिना घोषणा के ही दृष्टि में रहते हैं। घोषणा तो अज्ञात को खोजने के लिए ही की जाती है।

इस उत्तर में धन्ना ने अपनी मन्त्रीपद सम्बन्धी अनासक्ति भी प्रदर्शित कर दी और अपने विरोधियों के समक्ष एक अकाट्य तर्क भी उपस्थित कर दिया। राजा को भी स्मरण करा दिया कि घोषणा आपने की है, अतएव उसकी रक्षा करना आपका कार्य है, दूसरों का नहीं।

धन्ना की शेष परीक्षा भी हो चुकी। राजा धन्ना की बुद्धिमत्ता पर लट्टू हो गया। उसने कहा—मैं आपको राजमन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित करता हूँ। मुझे विश्वास है, मैंने बहुत उपयुक्त और सुन्दर चुनाव किया है।

खोज करवाई, पर तुम्हारा पता न लगा। हम समझ गये कि तुम्हारे गृहत्याग का उद्देश्य क्या है? हमें यह भी विश्वास था कि हमारा बेटा धन्ना कहीं पर भी कष्ट में नहीं रह सकता। जहाँ रहेगा, सुख-चैन में ही रहेगा। मगर तुम्हारे रवाना होते ही हमारे ऊपर विपत्तियों के वज्र गिरने लगे। व्यापार में घाटा पड़ा। लक्ष्मी रुष्ट हो गई। चारों ओर से बर्बादी ही बर्बादी का दृश्य दिखाई देने लगा।

पिता ने किंचित् ठहर कर फिर कहा—मुझे भली भाँति ज्ञात था कि लक्ष्मी किसके भाग्य की है। इसी कारण मैंने इन मूर्खों को खूब समझाया भी था मगर पापकर्म का उदय जब आता है तो बुद्धि उलटी हो ही जाती है।

प्रायः समापन्नविपत्तिकाले,
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।

इन्होंने मेरी बात पर कान न दिया। जब लक्ष्मी पूरी तरह चली गई तो प्रतिष्ठानपुर में रहना असंभव हो गया। जिस जगह प्रधान धनवान् के रूप में प्रतिष्ठापूर्ण जीवन यापन किया हो उसी जगह दीन, हीन, परमुखापेक्षी, भिखारी की भाँति जीवित रहने से मनस्वी लोग मरना अधिक अच्छा समझते हैं। मगर मरना अपने हाथ की बात नहीं, अतः हमने नगर का त्याग कर देना ही उचित समझा।

रास्ते में भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि की अनेकानेक बाधाएँ सहते आज अकस्मात् यहाँ आये कि तुमसे मिलना हो गया।

धन्ना ने दुखित स्वर में कहा—पिताजी, यह संसार सुख-दुःख का अद्भुत सम्मिश्रण है। इसमें कौन एकान्त सुखी है?

उन्हें देखकर धन्ना को अपना भूतकाल स्मरण हो आया। उनका परिवार कितना सम्पन्न और कितना सुखी था! आज इनको किस स्थिति में देख रहा हूँ! उसका मन गहरी पीड़ा से व्याकुल हो उठा!

धन्ना ने अपने एक विश्वस्त सेवक को बुला कर उससे कहा–देखो, यह दुखिया परिवार है। इसे महल के पिछले द्वार से अन्दर ले आओ। किसी से जिक्र करने की जरूरत नहीं है।

सेवक ने धन्ना के आदेशानुसार गुप्त रूप से उन लोगों को महल में ले आकर खड़ा कर दिया। धन्ना स्वयं उधर जा पहुँचा था। धन्ना को पहचानने में उन्हें भी क्षण भर की देरी न लगी। माता और भौजाइयों के नेत्रों में आँसू देख कर धन्ना को जितनी मार्मिक वेदना हुई, उसने अपने जीवन में कभी अनुभव नहीं की थी। धन्ना ने माता, पिता को प्रणाम किया। भाइयों और भौजाइयों का यथोचित अभिवादन किया। तत्पश्चात् कहा–और सब बातें बाद में होंगी। पहले स्नानभोजन आदि कर लीजिए।

उसी समय नाई बुलाया गया। सबका क्षौर कर्म करवाया। सबने स्नान और भोजन किया। राह चलने का श्रम दूर हो गया। सबके चित्त स्वस्थ हुए। परन्तु धनदत्त आदि तीनों भाइयों ने धन्ना का ठाठ देख कर दुःख का अनुभव किया। उनकी ईर्षा भड़क उठी। मगर मुह से कुछ बोल न सके। ऊपर से मीठी-मीठी बातें करने लगे।

धन्ना के पिता सेठ धनसार ने उसे अपने पास बिठला कर सारा वृत्तान्त बतलाया। कहा—बेटा, तुम बिना कहे-सुने अचानक चल दिये। हम लोगों को जब पता चला तो बहुत

प्रकार का नाच नचाता है। कभी सुख और कभी दुःख प्राणियों को आते ही रहते हैं। रात्रि के पश्चात् दिन और दिन के अनंतर रात्रि का आना जैसे प्रकृति का नियम है, उसी प्रकार पुण्य-पाप भी एक के पश्चात् एक आते ही रहते हैं। इसमें अहंकार क्या? आज मैं राजा का मन्त्री हूं, मेरे हाथ में प्रभूत सत्ता है, परन्तु कौन कह सकता है कि कल क्या होगा?

इधर धन्ना ऐसा सोच रहा था और उधर धन्ना के तीनों भाई मन ही मन उसका विपुल ऐश्वर्य देखकर जल-भुन रहे थे। उनके चित्त को क्षण भर भी शान्ति नहीं मिल सकी। मिलती भी कैसे, पाप का उदय समाप्त नहीं हुआ था। पापी जीव को स्वर्ग में ले जाकर छोड़ दिया जाय तो उसे वहाँ भी सुख नहीं मिलेगा। बाहर की वस्तु सुख नहीं दे सकती। सुख तो आत्मा की एक वृत्ति है और उसे पाने के लिए आत्मा को ही जगाना पड़ता है। जिसकी आत्मा जागृत है वह सर्वत्र, सर्वदा, सर्व परिस्थितियों में सुख का अनुभव कर सकता है और जिसकी आत्मा पाप के पंक से लिप्त है, वह किसी भी अवस्था में सुख नहीं पा सकता।

धनदत्त आदि को धन्ना की मौजूदगी में, प्रतिष्ठानपुर में क्या कमी थी? अब यहाँ आ पहुँचे तो क्या कमी रह गई थी? चाहते तो सुखपूर्वक प्रतिष्ठा के साथ समय बिता सकते थे। संसार में सुख के जितने भी साधन हैं, वह सभी उनको सुलभ थे। परन्तु दुर्भाग्य के कारण वे उन साधनों से सुख का अनुभव न कर सके। यही कर्म की विचित्रता है!

यद्यपि तरणेः किरणैः, सकलमिदं विश्वमुज्ज्वलं विदधे।
तदपि न पश्यति घूकः, पुराकृतं भुज्यते कर्म ॥

सभी को कुछ न कुछ दुःख सता रहा है। किसी को कुछ, किसी को कुछ। पुण्य और पाप का जोड़ा है तो सुख और दुःख का जोड़ा क्यों न होगा? अतएव संसार का वास्तविक स्वरूप समझ कर प्रत्येक दशा में मध्यस्थ भाव रखना ही ज्ञानवान् पुरुषों का कर्त्तव्य है। अब आप सब सुख से रहिए। इस घर में और उस घर में कोई अन्तर न समझिए। भाइयों से भी मेरा यही निवेदन और अनुरोध है कि वे पिछली बातें याद न करें। मुझे अपना सेवक समझें और आनंद के साथ रहें।

धन्ना ने अपनी भौजाइयों के लिए बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण मँगवाये और उन्हें भेंट कर दिये। उन्हें पहले की सी अवस्था में पहुँचा दिया।

ऐसे अवसर पर क्षुद्र पुरुष अहंकार के वशीभूत हो जाते हैं। धन्ना में क्षुद्रता होती तो वह अहंकार कर सकता था। अपने भाइयों को व्यङ्गमयी वाणी से व्यथित कर सकता था। कह सकता था कि मुझे निकम्मा और बेकार समझने वालो, उड़ाऊ कहने वालो यहाँ तक कि मेरे प्राण लेने की इच्छा करने वालों को आज मेरी ही शरण में आना पड़ा! धन्ना ऐसा कहता तो क्या असत्य कहता? परन्तु कहना दूर, एक क्षण के लिए भी उसके हृदय में अभिमान का उदय नहीं हुआ। उसके मन में अहंकार आता तो शायद उसका जीवन ही न लिखा गया होता! फिर साधारण मनुष्य में और धन्ना में अन्तर ही क्या रह जाता?

धन्ना अत्यन्त गम्भीर पुरुष था। वह कर्मों के खेल को भली-भाँति जानता था कि संसार के सभी प्राणी कर्मों के फल के वशवर्त्ती हैं। कर्म रूपी मदारी जीव रूपी बन्दर को नाना

चाहते हो ? यह सब उसके ही पुण्य का प्रताप है। उसकी स्वयमर्जित सम्पत्ति पर मेरा भी कोई अधिकार नहीं। मैं क्या दिलाऊँ ? पर यह प्रश्न उठाना अपने पैरों पर कुठाराघात करना है। भलाई इसी में है कि अपनी कुमति का त्याग कर दो; अन्यथा फिर दर-दर के भिखारी बनोगे। तुम्हारे पीछे बहुओं को और हम लोगों को भी इस बुढ़ापे में मुसीबतें उठानी पड़ेगी।

तीनों भाइयों ने भी कुपित होकर कहा—रहने दीजिए इस सफाई को और अपने उपदेश को। हम इतने भोले नहीं कि कुछ समझते ही न हों। धन्ना घर से धन चुराकर ले आया और यहाँ बड़ा भारी मन्त्री बन गया है ! ऐसा न होता तो क्या इतना वैभव आकाश से बरस पड़ा है ! अगर हम लोगों को समुचित हिस्सा न दिया गया तो व्यर्थ कलह होगा। हमारा क्या बिगड़ेगा ? हमें कोई यहाँ जानता नहीं। प्रतिष्ठा उसी की जायगी, जिसकी है ! नंगा नहावे निचौड़ा क्या ! हम तो ऐसे ही लोगों में हैं।

धनसार—जान पड़ता है, तुम्हारे पापकर्मों का अभी अन्त नहीं आया। यही नहीं, उनका तीव्रतर उदय अभी शेष है। इसी कारण यह दुर्मति उत्पन्न हुई है। मगर मुझसे इस संबंध में बात करना व्यर्थ है। मैं पांती के लिए धन्ना से नहीं कह सकता।

धन्ना जैसे बुद्धिमान् से यह सब अज्ञात नहीं रह सका। उसने सारी बातें मालूम कर लीं। उसने विचार किया—मेरे यहाँ रहने से भाइयों के चित्त को क्लेश है और पिताजी को अपार दुविधा एवं मानसिक संताप है। मैं अकेला हूँ। मेरे लिए देश और विदेश समान है। उज्जयिनी ही कौन-सा मेरा देश है ? जहाँ जाऊँगा, आराम से रह लूंगा। पर यह सब परिवार वाले

यद्यपि जाज्वल्यमान सूर्य की किरणों ने इस समस्त संसार को उज्ज्वल-आलोकमय बना दिया है, फिर भी उल्लू उस आलोक को नहीं देख सकता—उससे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता ! वह अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोगता है।

धनदत्त आदि पर यही उक्ति चरितार्थ होती है !

कुछ दिन चुपचाप रहने के पश्चात् उन्होंने अपनी ओर से खटपट चालू कर दी। संघर्ष आरंभ कर दिया। वे धनसार से कहने लगे कि—पिताजी, किसी के आश्रय में रहना हमें नहीं सुहाता। हम किसी की दया पर निर्भर रह कर जिंदा नहीं रहना चाहते। अतएव आप सम्पत्ति का हिस्सा बाँट कर दीजिए, हम स्वतंत्र रहेंगे।

धनसार को यह सुन कर तीव्र क्रोध आया। लड़कों की मूर्खता उनके लिए असह्य हो उठी। उन्होंने कहा—गँवारो! इस प्रकार के वचन उच्चारण करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? दीन हीन, भिखारी बन कर धन्ना के द्वार पर आये थे। उसने उदारता और आत्मीयता की भावना से तुम्हें अपनाया। सब प्रकार की समुचित सामग्री सुलभ कर दी ! उसका ऐहसान मानने के बदले इस प्रकार की बात करते हो ! संसार में कृतघ्नों की कमी नहीं, पर तुम जैसे कृतघ्न तो शायद खोजने पर भी न मिलें। भला चाहते हो तो चुपचाप बैठे रहो और मौज करो। तकदीर में धन लिखा लागे होते तो प्रतिष्ठानपुर ही क्यों छोड़ना पड़ता ? धन्ना कुछ बाँध कर नहीं लाया था। अपना हिस्सा और अपनी कमाई भी तुम्हारे निमित्त त्याग आया था। तुम्हारे दुर्दैव से सारी सम्पत्ति विलीन हो गई ! अब धन्ना से क्या माँगते हो ? क्या कुछ कमाई करके उसे दी है जो वापिस

चाहते हो ? यह सब उसके ही पुण्य का प्रताप है। उसकी स्वय-मर्जित सम्पत्ति पर मेरा भी कोई अधिकार नहीं। मैं क्या दिलाऊँ ? पर यह प्रश्न उठाना अपने पैरों पर कुठाराघात करना है। भलाई इसी में है कि अपनी कुमति का त्याग कर दो; अन्यथा फिर दर-दर के भिखारी बनोगे। तुम्हारे पीछे बहुओं को और हम लोगों को भी इस बुढ़ापे में मुसीबतें उठानी पड़ेगी।

तीनों भाइयों ने भी कुपित होकर कहा–रहने दीजिए इस सफाई को और अपने उपदेश को। हम इतने भोले नहीं कि कुछ समझते ही न हों। धन्ना घर से धन चुराकर ले आया और यहाँ बड़ा भारी मन्त्री बन गया है ! ऐसा न होता तो क्या इतना वैभव आकाश से बरस पड़ा है ! अगर हम लोगों को समुचित हिस्सा न दिया गया तो व्यर्थ कलह होगा। हमारा क्या बिगड़ेगा ? हमें कोई यहाँ जानता नहीं। प्रतिष्ठा उसी की जायगी, जिसकी है ! नंगा नहावे निचौड़ा क्या ! हम तो ऐसे ही लोगों में हैं।

धनसार–जान पड़ता है, तुम्हारे पापकर्मों का अभी अन्त नहीं आया। यही नहीं, उनका तीव्रतर उदय अभी शेष है। इसी कारण यह दुर्मति उत्पन्न हुई है। मगर मुझसे इस संबंध में बात करना व्यर्थ है। मैं पांती के लिए धन्ना से नहीं कह सकता।

धन्ना जैसे बुद्धिमान् से यह सब अज्ञात नहीं रह सका। उसने सारी बातें मालूम कर ली। उसने विचार किया–मेरे यहाँ रहने से भाइयों के चित्त को क्लेश है और पिताजी को अपार दुविधा एवं मानसिक संताप है। मैं अकेला हूँ। मेरे लिए देश और विदेश समान है। उज्जयिनी ही कौन-सा मेरा देश है ? जहाँ जाऊँगा, आराम से रह लूंगा। पर यह सब परिवार वाले

हैं। कहाँ भटकते फिरेंगे ? अतएव यह सब सम्पत्ति इनके लिए छोड़कर मैं अन्यत्र क्यों न चल दूँ।

धन्ना की निष्पृहता और उदारता की किस प्रकार प्रशंसा की जाय ? एक ओर उसके भाई हैं और दूसरी ओर धन्ना है! जरा दोनों की तुलना तो कर देखिए !

धन्ना का विचार संकल्प के रूप में परिणत हो गया! रात्रि के समय, चुपचाप, धन्ना अपने महल में से निकला और चल दिया।

धन्ना की विदाई धन-सम्पत्ति और सुख-सौभाग्य की विदाई थी। परन्तु पापग्रस्त बुद्धि वाले धन्ना के भाई इस तथ्य को न समझ सके।

१४

पुनः गृहत्याग

अंधकार प्रकृति की एक अनोखी देन है। सूर्यास्त होते ही यह कहाँ से आ टपकता है और किस प्रकार अपना एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित कर लेता है। प्रकृति के इस लोकव्यापी और प्रकाश के बिना ही प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले रहस्यपूर्ण विकार को बड़े-बड़े दार्शनिक भी समझने में भूल कर गए हैं। जिन ऋषियों ने अनन्त प्रकाश को देख लेने का दावा किया, आश्चर्य है कि वे भी अंधकार को उसके यथार्थ रूप में न देख सके। इसी कारण तो कई दार्शनिक कहते हैं—अन्धकार शून्य है-कुछ भी नहीं है।

ठीक है, अन्धकार कुछ भी नहीं है तो हमें दिखाई क्यों देता है ? कहा जा सकता है-'यह तुम्हारा भ्रम है।' मगर भ्रम तो उसी वस्तु का होता है जिसकी कहीं न कहीं सत्ता हो। सर्वथा शून्य के संबंध में कब किसका भ्रम हुआ है ? जहाँ कोई मनुष्य दिखाई न देता हो, वहाँ कभी किसी को भ्रम होता है कि यह 'वन्ध्या का पुत्र' है ? नहीं, क्योंकि वन्ध्या का पुत्र सर्वथा असत् है।

तो फिर सर्वथा शून्य अंधकार का भ्रम क्यों होता है? मान भी लिया जाय कि एक आदमी की आँखों पर पर्दा पड़ जाता है और वह शून्य को अंधकार समझ लेता है, तो क्या सभी मनुष्यों को, एक साथ, एक सरीखा ही भ्रम होता है? स्पष्ट है कि अंधकार को शून्य कहने वाले दार्शनिक भी अंधकार में ही भटक रहे हैं।

मगर दिव्यज्ञानी जन अंधकार को शून्य नहीं कहते। उनका दर्शन अतीव बोधमय है। वे कहते हैं– यह प्रकाश की ही एक विचित्र परिणति है। उनके कथनानुसार एक ही वस्तु प्रकाश और अंधकार के रूप में पलटती रहती है। उस वस्तु का पारिभाषिक नाम 'पुद्गल' है। पकाश भी उसी का परिणमन है और अंधकार भी उसी का परिणमन है।

यह व्याख्या जीवन-स्पर्शी है। हमारा जीवन भी कभी प्रकाशपूर्ण और कभी तिमिराच्छन्न होता है तो पुद्गल का दोनों प्रकार का परिगमन क्यों नहीं हो सकता? इस प्रकार अंधकार हमारे जीवन के एक रूप का प्रतीक है।

अन्धकारमयी रजनी में, एकाकी,पैदल चला जाने वाला, उज्जयिनी का कल तक का राजमन्त्री, प्रतिष्ठानपुर का नगरसेठ, लक्ष्मी का वल्लभ, धन्ना उल्लिखित विचारों में डूबा था, जैसे उसके पैर क्रियाशील थे, उसी प्रकार मन भी क्रियाशील था। वह अंधकार में शान्त, नीरव एवं स्तब्ध अंधकार में अंधकार की ही दार्शनिक मीमांसा करता अग्रसर हो रहा था। जैसे प्रतिष्ठानपुर से चल पड़ा था, वैसे ही उज्जयिनी से भी चल दिया था। चलते-चलते वह ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ

समीप में एक सरिता प्रवाहित हो रही थी। सरिता के जल के कल-कल-निनाद ने उसकी विचारधारा स्खलित कर दी।

विचार-धारा में रुकावट होते ही उसे थकान का कुछ अनुभव हुआ। वह रास्ते के किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।

धन्ना को बैठे कुछ ही देर हुई थी कि पास ही एक शृगाल की ध्वनि उसके कानों में पड़ी। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि शृगाल मनुष्य की भाषा बोला अथवा धन्ना शृगाल की भाषा जानता था। दोनों बातें सम्भव हैं। पुण्यवान् के सहायक देव कुछ भी रूप बना सकते हैं और कोई भी भाषा बोल सकते हैं। इधर धन्ना ने बहत्तर कलाओं में निपुणता प्राप्त की थी और उन कलाओं में पशुओं एवं पक्षियों की आवाज पहचानना भी आ जाता है।

खैर। दोनों में से कुछ भी हो, धन्ना शृगाल की बोली का अर्थ समझ गया। उसने जान लिया कि शृगाल कह रहा है—'नदी में एक मुर्दा बहा जा रहा है। उसकी जांघ में एक मूल्यवान् रत्न है। हे शाह, वह रत्न तुम ले लो और मुझे मेरा भक्ष्य दे दो।'

धन्ना तत्काल नदी की ओर गया। उसने मुर्दे को सँभाला। सचमुच उसकी जांघ से रत्न निकल पड़ा। रत्न धन्ना ने ले लिया और शव एक ओर डाल दिया।

धन्ना आगे चला। चलते चलते कितने ही दिन बीत गये। आखिर एक दिन वह काशी में जा पहुँचा।

काशी में पहुंच कर धन्ना ने गङ्गा की निर्मल जलधारा में स्नान किया। मगर यह स्नान उसके लिए भारी पड़ा। पहले

कहा जा चुका है कि धन्ना अतिशय रूप का धनी था। कामदेव के समान सुन्दर था। उसके सौन्दर्य में अप्सराओं को भी मुग्ध करने की शक्ति थी। उसके इस सौन्दर्य को देख कर गङ्गा देवी का हृदय बेकाबू हो गया। वह धन्ना के साथ विलास करने के लिए लालायित हो उठी-बल्कि बेचैन हो गई।

गङ्गादेवी ने मानुषी सुन्दरी का रूप धारण किया। गङ्गा देवी, मानुषी नवयुवती का रूप धारण करे तो उसके सौन्दर्य का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? अमित लावण्यमूर्त्ति गङ्गादेवी ने धन्ना के समक्ष आकर नाना प्रकार के हाव-भाव प्रदर्शित किये। धन्ना के मन को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उसने आँखें मटकाईं, वदन को नचाया और अंगोपांग दिखलाये। तात्पर्य यह है कि उसने सभी शस्त्रों से एक साथ प्रहार किया। यही नहीं, वह धन्ना का कर ग्रहण करने के लिए समीप आने को उद्यत हुई।

काम-विकार अत्यन्त दुर्जय है। एक नवयौवन-सम्पन्न पुरुष दिव्य सौंदर्यशालिनी, रतिप्रतिकृति नवयुवती की इस प्रकार की विकारोत्पादक चेष्टाओं को देखकर अपने विवेक को स्थिर रख सके, यह कठिन है। विरल महासत्त्ववान् पुरुष ही ऐसे अवसर पर स्थिर रह सकते हैं। परन्तु धन्ना ऐसे ही विरल महापुरुषों में से एक था। देवी की कामुकतापूर्ण चेष्टाएँ उसके हृदय को विकारमय बनाने में समर्थ नहीं हो सकीं। उसने विचार किया—

> वधो बन्धो धनभ्रंशस्तापः शोकः कुलक्षयः ।
> आयासः कलहो मृत्युर्लभ्यन्ते पारदारिकैः ॥

अर्थात्—परस्त्रीगामी पुरुष वध, बंधन, धन विनाश, संताप और शोक को प्राप्त होते हैं। उनके इस घोर पाप के

कारण कुल का क्षय होता है। अनेक मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। कलह का भाजन बनना पड़ता है और अन्त में ऐसे लोगों को मौत के घाट उतरना पड़ता है।

धन्ना ने मन ही मन कहा—

यः कुरुते परयोषित्संगं, वाञ्छति यश्च धनं परकीयम्।
यश्च सदा गुरु-वृद्धविमानो, तस्य सुखं न परत्र न चेह॥

जो परस्त्री का संसर्ग करता है, जो पराये धन की कामना करता है और जो गुरुजनों एवं वृद्ध जनों का अपमान करता है, वह न तो इस लोक में सुख पा सकता है और न परलोक में ही। अतः—

आलिंग्यते वरं क्रुद्धा, व्याघ्री च सर्पिणी तथा।
न तु कौतूहलेनापि पररामा कदाचन॥

अर्थात्—कुपित हुई व्याघ्री (बाघिन) अथवा सर्पिणी का आलिंगन करना अच्छा, पर कुतूहल के वश होकर भी, कभी परस्त्री का आलिंगन करना योग्य नहीं।

व्याघ्री और सर्पिणी का आलिंगन करने से केवल यही लोक बिगड़ सकता है, परन्तु परस्त्री के आलिंगन से तो यह भव और आगामी भव दोनो ही मिट्टी में मिल जाते हैं।

परस्त्रीगमन संसार में एक मत से घोर-अतिघोर पाप माना जाता है। वह आत्मा के पतन का कारण है, बर्बादी का चिह्न है और साथ ही बड़े से बड़ा सामाजिक अपराध है। विवाहित पुरुष अगर परस्त्रीगमन करता है तो वह अपनी पत्नी

के साथ घोर विश्वासघात करता है। अगर अविवाहित ऐसा करता है तो उसके दंभ और छल का पार नहीं है।

धन्ना लंगोटी का पक्का था। वह परम शीलवान् परस्त्री को माता-बहिन के सदृश समझने वाला था। जब गंगादेवी उसका हाथ पकड़ने के लिए पास आने लगी तो धन्ना ने डांट कर कहा—निर्लज्ज नारी! खबरदार जो एक भी पैर आगे बढ़ाया। मैं शीलव्रत का धारक हूं। कदापि अकार्य नहीं कर सकता। भला चाहती है तो अपनी जगह चली जा।

धन्ना की यह दृढ़ता देख गंगा देवी विस्मित हो गई। उसकी उभड़ी हुई वासना शान्त हो गई। यही नहीं, धन्ना की शीलनिष्ठा देखकर उसके चित्त में उल्लास हुआ। वह कहने लगी—धन्य हो युवक, वास्तव में तुम्हें धन्य है! तुम्हारा शीलधर्म प्रशंसनीय है। तुम्हारा कुल सराहनीय है! ऐसे अवसर पर कोई महान् पुण्यात्मा ही अपने विवेक को स्थिर रख कर धर्म पर दृढ़ रह सकते हैं। निस्सन्देह तुम पुण्यशाली हो। मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूं। मुझे कुछ आज्ञा दो। बताओ, मैं क्या अभीष्ट सम्पादन करूँ?

धन्ना—मुझे किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं है। मैं जान गया हूँ कि तुम मानुषी नहीं, देवता हो! मैं यही चाहता हूं कि भविष्य में तुम किसी मनुष्य को भ्रष्ट करने का प्रयत्न न करो। तुम्हें मनुष्यों की धर्मवृद्धि में सहायक होना चाहिए-धर्म से डिगाने में नहीं। मेरी यह बात मान लोगी तो मैं समझूंगा कि तुमने मुझे अभीष्ट वरदान दे दिया।

धन्ना की इस मांग से गंगादेवी को कुछ लज्जा का अनुभव हुआ पर साथ ही प्रसन्नता भी हुई। उसने कहा—तुम्हारी

निस्पृहता भी प्रशंसनीय है। लो, मैं उपहार समर्पित करती हूं। इसे अपने पास रखना। तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध होंगे। यह चिंतामणि रत्न है।

धन्ना ने गंगादेवी का उपहार स्वीकार कर लिया। समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला चिंतामणिरत्न उसने अपनी धर्म-दृढ़ता के कारण प्राप्त कर लिया। उसे पहले भी किसी चीज की कमी नहीं थी; परन्तु अब तो त्रिलोकी की समस्त सम्पदा ही मानो उसकी मुट्ठी में आ गई!

वास्तव में धर्म का प्रभाव अचिन्त्य और अतर्क्य है। धर्म की महिमा का वर्णन हो नहीं सकता। धन्ना अपने धर्म पर दृढ़ रहा तो उसे चिंतामणि मिल गया। चिंतामणि को पाने की किस की इच्छा न होगी? सभी उसे पाने के लिए लालायित रहते हैं। परन्तु उसे पाने के लिए जिस धर्मनिष्ठा की आवश्यकता है, उसके अभाव में वह कैसे मिल सकता है? लोग धर्म का फल चाहते हैं, परन्तु धर्म नहीं करते! धर्म का शुद्ध भाव से आचरण किये बिना धर्म का फल नहीं मिल सकता। कहा भी है—

सुखं दुःखनिवृत्तिश्च पुरुषार्थावुभौ स्मृतौ।
धर्मस्तत्कारणं सम्यक्, सर्वेषामविगानतः॥

अर्थात्—सुख और दुःख की निवृत्ति यही दो प्रधान पुरुषार्थ माने गये हैं। और इन दोनों की सिद्धि का एक मात्र कारण सम्यक् प्रकार से सेवन किया जाने वाला धर्म ही है। यह निर्विवाद सत्य है।

जगत् में जितने जीव हैं, सब निरन्तर सुख की प्राप्ति के

लिए प्रयत्नशील रहते हैं; उनकी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी चेष्टा के मूल में सुख प्राप्त करने और दुःख से बचने की ही वृत्ति होती है। इन्हीं दो उद्देश्यों को लेकर जगत् में विराट आयोजन हो रहे हैं। परन्तु सभी ज्ञानीजन एक मत होकर इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि धर्म से ही सुख की प्राप्ति और दुःख का अभाव सम्भव है। वह धर्म भी सम्यक् होना चाहिए, विपरीत नहीं। इस मर्म को समझ लेने वाले विवेकशाली पुरुष ही सच्चे सुख के अधिकारी बनते हैं।

हमारे कथानायक धन्ना ने इस मर्म को भलीभाँति समझा था। अतएव वह सुख के बदले सुख के मूल को—धर्म को ही पकड़ने के लिए सदा उद्यत रहता था। इसी कारण उसके सभी उद्योग सफल होते थे। चिंतामणि की प्राप्ति भी उसके इसी धर्मोद्योग का फल था।

हाँ, तो चिंतामणि रत्न लेकर और काशी की अद्भुत छटा देखकर धन्ना वहाँ से भी चल दिया। उसका कोई लक्ष्य निश्चित नहीं था। कहाँ पहुँचना है, यह स्वयं उसको भी पता नहीं था। अतएव वह निश्चिंत भाव से पर्यटन कर रहा था।

कुछ दिनों की यात्रा करके धन्ना मगध देश में आ पहुँचा। मगध जनपद के प्रति उसके चित्त में सहज आकर्षण था। यह वही पुण्यभूमि है जो श्रमण भगवान् महावीर आदि तीर्थङ्करों के चरण कमलों से पावन बनी है। मगध में पहुँच कर धन्ना को अपार हर्ष हुआ। वह एक दिन मगध की राजधानी राजगृही में जा पहुँचा। राजगृही नगरी जैन परम्परा में प्रसिद्ध है। यह धर्म का प्रमुख केन्द्रस्थल थी। मगध की राजधानी थी। धन्ना वहाँ आकर नगरी के बाहर एक उद्यान में ठहर गया। उसे ठहरने को और स्थान ही कहाँ था?

१५

परिणय

राजगृह के महत्त्व के विषय में जितना कहा जाय, थोड़ा है। मगध सब जनपदों में महान् है। विश्व की सर्वोत्कृष्ट विभूतियाँ इस जनपद में प्रकट हुई हैं और उन्होंने अपने असाधारण तपोमय जीवन से तथा उसके द्वारा प्राप्त अनन्त आत्मिक प्रकाश से जनता को विशुद्ध बोध प्रदान किया है। भारत को मगध से जो महान् संदेश मिला है, समस्त विश्व उसके लिए आभारी है। मानव को मानवता की शिक्षा, संयम, तप और अहिंसा के मंगलमय सिद्धान्त सर्वप्रथम मगध में ही गूँजे थे और वहाँ से ही वे अन्य जनपदों को प्राप्त हुए। अतएव मगध का भारत की संस्कृति के निर्माण में अद्वितीय स्थान है।

फिर राजगृही का तो कहना ही क्या है? यह नगरी भगवान् महावीर की हलचलों का अन्यतम प्रधान स्थान रहा है। अनेक बार महाप्रभु ने पदार्पण करके उसे सौभाग्य प्रदान किया है। भगवान् के परमभक्त श्रेणिक आदि नरेशों की वह राजधानी थी।

राजगृही नगरी स्वर्गपुरी के समान शोभायमान थी। समृद्धि से सम्पन्न थी। उसकी विशालता का अनुमान करना भी

आज के युग में कठिन है। विशाल होते हुए भी वहाँ के निवासी सभी सुखी थे। वहाँ की नैसर्गिक शोभा भी अद्भुत थी। नगरी के बाहर अनेक उद्यान और सरोवर थे। नगर निवासी जन आमोद-प्रमोद के लिए उन उद्यानों में जाया करते थे।

राजगृही के उस समय के अधिपति सुप्रसिद्ध महाराजा श्रेणिक थे। वह सम्राट् थे और उनके प्रताप एवं बल की दूर-दूर तक धाक थी। उनकी बदौलत मगध की प्रजा स्वचक्र-परचक्र के भय से सर्वथा रहित थी। श्रेणिक राजा की सेना विशाल थी। उसमें तेतीस हजार हाथी, इतने ही घोड़े और इतने ही रथ थे। तेतीस करोड़ पैदल सेना थी। जैन-परम्परा में अतिशय प्रसिद्ध, धर्मनिष्ठा, स्वयं श्रेणिक को जैनधर्म में दीक्षित कराने वाली, पतिव्रता महारानी चेलना उनकी पटरानी थी। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियों के अतिशय के धनी श्रेणिक के अंगज अभयकुमार की तीक्ष्ण प्रज्ञा के सैंकड़ों उदाहरण प्रसिद्ध हैं। उनकी धाक से धूर्त, ठग और लुटेरे कांपते थे!

इसी राजगृही में धन्ना का आगमन हुआ। वहाँ आकर एक बगीचे में ठहर गये और उसी बगीचे में रात्रि व्यतीत की।

बगीचा एक सेठ का था। उन सेठ का नाम कुसुमपाल था। राजगृही में प्रसिद्ध धनाढ्यों में उनकी गिनती होती थी। सेठ कुसुमपाल का यह बगीचा एक दिन हरा-भरा था, मगर इस परिवर्त्तनशील संसार में कोई भी वस्तु अपने एक रूप में स्थिर नहीं रहती। मनुष्य के जीवन की तरह सभी पदार्थ पलटते ही रहते हैं। सेठजी का बगीचा भी कारण मिलने पर बदल गया। उसकी हरियाली गायब हो गई। वह श्रीहीन शुष्क दिखाई देने लगा।

परन्तु आज का प्रभात निराला ही था। उद्यानपाल ने प्रातःकाल उठ कर बगीचे की ओर नज़र फेंकी तो वह चकित और दिग्मूढ़-सा रह गया। उसे कल्पनातीत दृश्य दिखाई दिया। असम्भव प्रतीत होने वाली घटना को वह अपनी आँखों से देख रहा था! आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। कई बार आँखें मलीं। इधर देखा, उधर देखा। चारों ओर देखा। सभी ओर एक ही सा दृश्य था। रात ही रात में सूखा बगीचा सारा का सारा हरा-भरा हो गया था। उसकी शोभा पहले की शोभा से भी द्विगुणित जान पड़ती थी। यही उद्यानपाल के विस्मय का कारण था!

जब अविश्वास का कोई कारण न रहा तो बागवान को विवश होकर विश्वास करना ही पड़ा। उसने समग्र बगीचे का चक्कर लगाया और सब जगह अपूर्व हरीतिमा दृष्टिगोचर हुई।

यह सब दृश्य देखकर उद्यानपाल को अपार आनन्द हुआ। वह इस अद्भुत घटना का हाल सुनाने के लिए उसी समय सेठ कुसुमपाल के पास पहुंचा।

कुसुमपाल भी आश्चर्यान्वित होते हुए बगीचे में आये। वे प्रौढ़ वय के मनुष्य थे। अनुभवी थे। उन्होंने दुनिया देखी थी। अतएव उद्यान को सहसा परिवर्तित परिस्थिति में देखकर उन्होंने बागवान से पूछा—क्या इस बाग में शाम को कोई आया था?

उद्यानपाल—कोई विशिष्ट पुरुष नहीं आया।

सेठ—तू विशिष्ट और सामान्य को क्या पहचानता है? यह बता कि कोई आया या नहीं?

उद्यानपाल—हाँ, एक बटोही आया था।

सेठ—वह अब कहाँ है ?

उद्यानपाल—संध्या समय आया था। यहीं उसने बसेरा किया था।

सेठ—अच्छा, जाओ और तलाश करके खबर दो।

उद्यानपाल की समझ में नहीं आ रहा था कि उस आगत राहगीर के साथ बगीचे के हरा-भरा होने का क्या संबंध हो सकता है ? वह तो साधारण मनुष्य है ! इस अपढ़ उद्यानपाल को कौन समझाता कि संसार में अनेक गुदड़ी के लाल पड़े हैं ! अनेक धूल भरे हीरे हैं। स्थूल बुद्धि के लोग मात्र आडम्बर से चमत्कृत होते हैं। इसीलिए तो दंभी लोग गुलछर्रे उड़ाते हैं !

धन्ना के साथ कोई आडम्बर नहीं था। उसके पास बहुमूल्य रत्न था और सब से बड़ा रत्न-चिंतामणि-उसे प्राप्त था। उसकी सहायता से वह जो चाहता, कर सकता था। उसे किस बात की कमी थी ? मगर सत्य के पुजारी आडम्बर से घृणा करते हैं। इसी कारण धन्ना एक साधारण मुसाफिर की भाँति सफर कर रहा था और इसी कारण उद्यानपाल की समझ में वह किसी गिनती में नहीं था मगर कुसुमपाल सेठ आगत पथिक की महिमा की कल्पना कर सके। अतएव उन्होंने आते ही उसके विषय में पूछताछ की।

उद्यानपाल ने जाकर देखा तो धन्ना वहीं था। उसने कुसुमपाल को उसकी सूचना दी। वह तत्काल धन्ना के पास पहुँचे। उसे देख कर उनके चित्त में प्रबल प्रीति उमड़ी। वह समझ गये कि यह पुरुष वास्तव में गुदड़ी का लाल है। इसका

पुण्य अत्यन्त प्रवल हैं। वे उससे कुछ प्रारंभिक बातचीत करके बड़े सत्कार-सन्मान के साथ अपनी हवेली में ले गये।

कुछ ही दिनों के परिचय में सेठ कुसुमपाल ने धन्ना की महत्ता भलीभाँति समझ ली। वह उस पर लट्टू हो गये।

कुसुमपाल की एक कन्या थी-कुसुमश्री। वह विवाह के योग्य हो चुकी थी। सेठजी उसके योग्य वर तलाश कर रहे थे। जब धन्ना के परिचय में आये तो उन्होंने उसी को अपना जामाता बनाने का विचार कर लिया। सेठानी से परामर्श किया। वह भी धन्ना के शील, स्वभाव, सौंदर्य, विनय, बुद्धिमत्ता आदि सद्गुणों से परिचित हो चुकी थी। अतः उसने भी सेठजी के विचार का समर्थन किया।

सेठजी ने एक दिन धन्ना से इस विषय में वार्त्तालाप किया। पहले तो उसने अपनी अनिच्छा प्रकट की, परन्तु सेठ कुसुमपाल के अति आग्रह के सामने उसे झुकना पड़ा।

शुभ मुहूर्त्त में कुसुमश्री के साथ धन्ना का पाणिग्रहण हो गया। कुसुमपाल सेठ ने अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप धूमधाम से विवाह किया। दहेज में बहुमूल्य वस्तुओं के साथ गृहस्थी के योग्य सभी चीजें दीं।

विवाह के पश्चात धन्ना अपनी पत्नी के साथ अलग मकान में रहने लगे। अभी तक वह अविवाहित थे, अब विवाहित जीवन के नूतन क्षेत्र में प्रवेश किया। मगर इस समय तक उन्हें संसार का पर्याप्त से भी अधिक अनुभव हो चुका था। अतएव कुछ अटपटापन प्रतीत नहीं हुआ। दो ही प्राणी थे। सुख-चैन से रहने लगे। संसार के सभी सुख उन्हें सुलभ थे। जिसके

पास चिन्तामणि रत्न हो, भला उसके सुख का क्या वर्णन किया जाय ? उसके लिए यही स्वर्ग है !

विवाह हुए कुछ महीने बीते थे कि राजगृही में एक उपद्रव हो गया। राजा श्रेणिक का सिंचानक गजराज था। गजराज क्या, यमराज था। पर्वत सरीखा विशाल डीलडौल था। देखने में बड़ा भयंकर प्रतीत होता था। यही गजराज आज मदोन्मत्त हो उठा था। उसने बंधनों को सड़ी रस्सी की तरह तोड़ डाला और गजशाला से निकल कर प्रलय मूर्ति की भाँति इधर से उधर और उधर से इधर राजपथ पर दौड़ने लगा। उसकी उच्छृंखलता ने राजगृही-वासियों को भयभीत कर दिया। किसी का साहस नहीं होता था कि दरवाजे से बाहर निकले ! त्राहि-त्राहि मच गई। काम-काज बंद हो गये। लोग अपने-अपने घरों में कैद हो गये। ऐसा जान पड़ता था, मानों यह वारणेन्द्र, नरेन्द्र को चुनौती दे रहा है कि अब राजगृही पर मेरी प्रभुता है, तुम्हारी नहीं !

राजा श्रेणिक ने अपने बहादुर सिपाहियों और सेनापतियों को गजराज पर काबू पाने के लिये संलग्न किया, पर वे कृतकार्य न हो सके। हाथी ने बड़ी चालाकी से उनके दाव-पेंच बेकार कर दिये।

यह दशा देख श्रेणिक चिन्तित हुए। शीघ्र ही हाथी को काबू में करना आवश्यक था। इसके लिए राजा ने सर्वोत्कृष्ट पुरस्कार की घोषणा की। घोषणा यह थी कि जो शूरवीर पुरुष हाथी को वशीभूत करे, उसे वह अपना जामाता बना लेंगे और अपनी राजकुमारी कन्या सामश्री ब्याह देंगे।

प्राचीन काल में, विवाह-संबंध करते समय वर के गुणों की ही मुख्य रूप से परीक्षा की जाती थी। यदि वर उत्तम गुणों

से सम्पन्न हुआ तो उसे अपनी कन्या देने में लोग संकोच नहीं करते थे। उस समय, आजकल की तरह धनवान् वर खोजने की प्रवृत्ति नहीं थी। जैसे आजकल जाति-पाँति के अनेक बखेड़े खड़े हो गए हैं, उस समय नहीं थे। राजा श्रेणिक की यह घोषणा ही इस कथन की, अनेक प्रमाणों में से, एक प्रमाण है। घोषणा में जाति या वर्ण अथवा धन संबंधी कोई शर्त नहीं थी। कोई नहीं जानता था कि किस वर्ण का, किस जाति का और किस आर्थिक स्थिति का मनुष्य हाथी को वशीभूत करेगा ? जो भी वशीभूत करे वही श्रेणिक सम्राट् का जामाता बनने का अधिकारी था।

हाँ, जाति आदि का प्रतिबन्ध न होने पर भी श्रेणिक यह अवश्य जानते होंगे कि साधारण पुरुष हाथी को वशीभूत नहीं कर सकता। करेगा तो कोई विशिष्ट बुद्धिमान्, साहस का धनी और शूरवीर पुरुष ही करेगा। और जिसमें यह गुण हो उसे अपनी कन्या देने में हानि ही क्या है ? वह तो कोई सुपात्र ही होगा।

इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि सम्राट श्रेणिक की इस घोषणा का दोहरा उद्देश्य था–हाथी को वशीभूत करके प्रजा का संकट दूर करना और साथी ही अपनी कन्या के लिए सुयोग्य वर की तलाश करना।

घोषणा धन्ना के कानों तक पहुंची। धन्ना की प्रकृति और प्रवृत्ति से परिचित पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि धन्ना को राज–जामाता बनने की आकांक्षा नहीं हो सकती और न नव-वधू प्राप्त करने का ही प्रलोभन हो सकता है। वह अलिप्तवृत्ति वाला पुरुष था। संसार का कोई भी प्रलोभन उसे स्पर्श नहीं कर पाया था।

फिर भी घोषणा सुनकर धन्ना मौके पर पहुँचा। चाहे प्रजा का त्रास दूर करने की भावना ने उसे प्रेरित किया हो, चाहे कुतूहल उसे ले गया हो, चाहे गजराज के समक्ष मानवीय सामर्थ्य का प्रदर्शन करने की इच्छा से वह पहुँचा हो, पर घटनास्थल पर पहुँचा। उसने गजराज को वशीभूत करने का अपना संकल्प प्रकट किया। उसे सुनकर बहुत से लोग नाना प्रकार की बातें करने लगे। किसी ने कहा—भाई, बड़ा जोखिम का काम है। जरा-सी चूक हुई कि प्राणों की खैर नहीं है!

दूसरा बोला—गजराज से लड़ना यमराज से लड़ना है।

तीसरे ने कहा—अगर हिम्मत है तो कूद पड़ो मैदान में! शूरवीर नर प्राणों का मोह नहीं करते और जो प्राणों का मोह करते हैं, वे शूरवीर नहीं होते।

चौथा—रहने भी दो भाई, क्यों जानबूझ कर अपने आप को यम के मुंह में डालते हो! राजकुमारी के लोभ में प्राण भी खो बैठोगे!

धन्ना अन्तिम टीका पर मुस्करा दिया। उसने सोचा—मनुष्य कितना ओछा हो सकता है! वह दूसरे के उच्च और उदार आशय की कल्पना भी नहीं कर सकता! इस मनुष्य की भावना हीन है, अतएव यह सभी को हीन भावना वाला समझता है!

धन्ना ने दूसरे लोगों के अभिप्रायों पर भी विचार किया। पर उनके पारस्परिक विरोध से स्पष्ट था कि संसार में कोई भी काम ऐसा नहीं जो सबको समान रूप से रुचिकर हो। प्रत्येक कार्य किसी को अच्छा और किसी को बुरा लगता ही है। अत-

एव लौकैषणा में न पड़कर मनुष्य को अपनी अन्तरात्मा की विशुद्धि ध्वनि का ही अनुसरण करना चाहिए। सबको प्रसन्न करने की चेष्टा करने वाला सदैव असफल होता है। उसने अपनी अन्तरात्मा का नाद सुना। उसने कहा-'धन्ना तेरे विषय में कौन क्या कहता है; इस पर कान न दे। तेरी शुद्ध बुद्धि जिस कार्य को उचित ठहराती है, तू वही कर। हाँ, अपने आपको धोखा न दे, आत्मवञ्चना मत कर। तेरा आशय वास्तव में पवित्र है और तेरे साधन भी पवित्र हैं, तो तू पवित्र कार्य कर रहा है।

आखिर धन्ना ने निश्चय कर लिया। वह एक उपयुक्त स्थान पर खड़ा होकर हाथी के आने की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी ही देर में हाथी आया, मानो प्रलयकालीन घनघटा आ रही हो! अंजन पर्वत पर उठा कर उड़ा चला आ रहा हो!

धन्ना तैयार ही था। उसने गजब की स्फूर्ति दिखला कर हाथी को पराजित कर दिया और फुर्ती के साथ उसके कुम्भ-स्थल पर जा सवार हुआ। किस क्षण क्या हो गया, लोग समझ ही न पाए! जब धन्ना गजराज के कुम्भस्थल पर सवार हो गया, तब सब के जी में जी आया। दर्शक धन्य-धन्य और वाह-वाह करने लगें। कोलाहल मच गया!

धन्ना ने न जाने क्या जादू किया कि विकराल और दुर्दम मदमाता हस्ती बकरी के समान सीधा बन गया। धन्ना उसे राजकीय गजशाला की ओर ले गये और वहाँ जाकर उसे आलानस्तंभ से बाँध दिया।

राजा श्रेणिक का दोहरा उद्देश्य पूर्ण हो गया। उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। बड़े स्नेह के साथ वह धन्ना से मिले।

उन्हें छाती से लगाया और उनकी बुद्धिमत्ता, साहसिकता, वीरता एवं स्फूर्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। प्रजा का संकट दूर हो गया, भय की भीषणता लुप्त हो गई। जनता आनन्द-विभोर होकर इसी घटना की चर्चा करने लगी।

सम्राट् श्रेणिक ने धूमधाम के साथ राजकुमारी सोमश्री का धन्ना के साथ विवाह कर दिया। मगधपति श्रेणिक की सम्पत्ति एवं विभूति के विषय में कुछ कहना वृथा है। अतएव इस बात का उल्लेख करने की भी आवश्यकता नहीं कि विवाह के अवसर पर प्रभूत धन-सम्पत्ति धन्ना को दहेज के रूप में प्राप्त हुई। धन के साथ सम्राट ने सेना भी पर्याप्त संख्या में दान दी।

यद्यपि धन्ना के यहाँ किसी चीज की कमी नहीं थी, उसे वैभव की चाह भी नहीं थी, तथापि वह उसके पुण्यप्रताप से अनायास ही बढ़ता चला जा रहा था। मगधदेश का जामाता हो जाने के कारण राजगृही में उसका सम्मान भी चरम सीमा पर पहुंच गया।

कभी-कभी धन्ना राजसभा में चले जाते थे। राजसभा में भी उन्होंने अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा की बदौलत बहुत ख्याति प्राप्त कर ली थी। जब भी कोई गम्भीर और पेचीदा समस्या उपस्थित होती, धन्ना की सम्मति अवश्य ली जाती। धन्ना अपनी चमत्कारमयी बुद्धि के बल से अतीव सुन्दर ढंग से उसे हल करते थे। अनेक बार उलझन-भरे मामले उनके सामने पेश किये गये, पर उन्हें ठीक ढंग से सुलझाने में उन्होंने कमाल कर दिखलाया। सारी राज सभा में धन्ना अद्वितीय बुद्धिमान् समझे जाने लगे। सभी लोग उनका आदर करने लगे। सभी पर उनकी महत्ता की धाक बैठ गई।

एक बार ऐसी ही एक विकट समस्या उपस्थित हुई। राजगृही नगरी में गोभद्र नामक एक अत्यन्त धनवान् सेठ थे, वह अपनी जाति के मुखिया समझे जाते थे। धर्म प्रेमी, नीतिनिष्ठ और सदाचारी थे। सौजन्य की साक्षात् प्रतिमा थे। रूप, सौभाग्य आदि पुण्य की सब प्रकार की देन उन्हें प्रचुर मात्रा में मिली थी।

गोभद्र सेठ की पत्नी का नाम भद्रा था। उसका रूप-सौंदर्य अनुपम था। जैसा नाम वैसे ही गुण थे उसमें। भद्रता की प्रतिमा थी। नम्रता और उदारता उसकी रग-रग में समाई हुई थी। धर्मशीला थी। वह उन नारियों में से थी जो अपने जीवन को अत्यन्त पवित्रता के साथ व्यतीत करने में ही जीवन को सार्थक समझती हैं। गोभद्र सेठ भद्रा के साथ आनन्द पूर्वक धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग का सेवन करते हुए अपना काल व्यतीत कर रहे थे।

गोभद्र सेठ की एक कन्या थी, जो रूप-लावण्य की खान, सद्गुणों की धाम और अत्यन्त सुशीला थी। माता-पिता को अतिशय दुलारी इस कन्या के चेहरे पर भोलापन टपकता रहता था।

कहा जा चुका है कि गोभद्र सेठ सीधे स्वभाव के सज्जन पुरुष थे। यद्यपि राजगृही में वह नामांकित व्यापारी समझे जाते थे, तथापि कोई उनके व्यवहार की ओर उंगली नहीं उठा सकता था। छल-कपट, बेईमानी, धोखेबाजी, मिथ्याभाषण आदि दुर्गुण उन्हें छू भी नहीं गये थे। धर्म पर उनकी दृढ़ श्रद्धा थी। उनका निश्चित विश्वास था कि प्रमाणिकता के साथ जीवन व्यवहार चलाने वाला मनुष्य कभी घाटे में नहीं रहता। अपने

इस विश्वास पर ही वह डटे रहते थे और सचमुच इस विश्वास के कारण उन्हें कभी कोई क्षति नहीं पहुंची। यही नहीं लोग उनकी प्रमाणिकता पर भरोसा करते थे और इस कारण उनका व्यापार अन्य व्यापारियों की अपेक्षा अधिक चलता था

मगर संसार बड़ा विचित्र है। भले आदमियों के सामने भी कभी-कभी बड़ी कठिन समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं गोभद्र सेठ के सामने भी एक समस्या उपस्थित हो गई।

पता नहीं, कहाँ का एक धूर्त काणा ठग गोभद्र की दुकान पर सहसा आ धमका। उसने सेठजी से कहा—लाइए, मेरी आँख मुझे वापिस दीजिए और अपने रुपये ले लीजिए।

गोभद्र चकित रह गये। उसकी बात उनकी समझ में ही न आई। अतएव उन्होंने कहा—भाई, कैसी आँख? क्या कहते हो?

ठग—कैसी आँख? अजी, बनने से काम नहीं चलेगा। मैंने एक लाख रुपये में आपके यहाँ अपनी आँख गिरवी रक्खी थी। क्या भूल गये? आज उसे लेने आया हूँ।

गोभद्र—भले आदमी, मेरे यहाँ आँख गिरवी नहीं रक्खी जाती। और किसी के यहाँ रक्खी हो तो तुम जानो!

ठग—मैं इतना भोला नहीं हूं सेठ! देर न करो। मेरी आँख मुझे शीघ्र लौटा दो व्यर्थ झगड़ा न बढ़ाओ।

गोभद्र सेठ ने उसे शान्ति के साथ समझाने की बहुत चेष्टा की, पर वह न समझा। समझने की बात भी नहीं थी। काणा ठग समझना ही नहीं चाहता था। बात बढ़ती गई। ठग

अकड़-अकड़ कर बातें करता था और बीच-बीच में तरह-तरह की धमकियाँ देता जाता था, पर गोभद्र सेठ को चिन्ता नहीं थी। वह जानते थे कि महाराजा श्रेणिक के राज्य में दूध का दूध और पानी का पानी होता है।

गोभद्र सेठ ने उससे स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारी धूर्तता यहाँ सफल न होगी। भला चाहते हो तो चुपचाप यहाँ से चल दो।

धूर्त ने राजा के दरबार में मामला पेश किया। उसने ऐसी-ऐसी युक्तियाँ पेश की कि राजा दङ्ग रह गया और मंत्रीगण भी दंग रह गये। मंत्रियों ने बहुत सोच-विचार किया, परंतु किसी निर्णय पर न आ पाये। ऐसे मामलों में अभयकुमार की बुद्धिमत्ता बड़ी कामयाब होती थी, परन्तु संयोगवश वह राजधानी में उपस्थित नहीं थे। सम्भव है, अभयकुमार की उपस्थिति में अपनी दाल गलती न देख कर ही धूर्त्त ने यह अवसर चुना हो।

आखिर उलझनों से भरा यह मामला जब सुलझता न दीखा तो धन्ना को बुलाया गया। धन्ना का बुद्धिकौशल भी कुछ कम नहीं था। उन्होंने आकर मामले को सुना और सुनते ही समझ लिया। स्पष्ट था कि गोभद्र सेठ सच्चे हैं और सीधे हैं। उन्हें लूटने के लिए ही ठग ने अनोखी चाल चली थी। धन्ना ने अपने मन में मामले का फैसला करने का तरीका सोच लिया। उन्होंने मंत्रियों से कहा—मैं गोभद्र की दुकान पर जाता हूं। तुम अभियोक्ता को वहीं भेज देना। मैं वहीं इस विवाद का निर्णय कर दूंगा।

यह कह कर धन्नाजी गोभद्र सेठ की दुकान पर आये। सेठजी को एकान्त में सब बात समझा दी। धन्नाजी स्वयं मुनीम बन कर बैठ गये। थोड़ी ही देर में धूर्त भी आ पहुँचा। उसके आने पर धन्ना ने कहा—भाई, मैं इस दुकान का पुराना मुनीम हूँ। तुमने अपनी आँख गिरवी रक्खी थी सो ठीक है। मूल रकम और ब्याज लाओ और अपनी आँख ले जाओ।

धूर्त ने सोचा—चलो अच्छा है। यह आँख का गिरवी रखना स्वीकार करता है। यह मेरे हक में अच्छा ही है।

यह सोच कर धूर्त ने एक लाख मोहरें सामने रख दीं। ब्याज भी चुका दिया। धन्ना ने उन्हें लेकर तिजोरी के सुपुर्द कर दी। फिर कहा—अच्छा, तुम अपनी दूसरी आँख निकाल कर दो जरा!

धूर्त—क्यों ?

धन्ना—भाई, बड़ी दुकान है। यहाँ प्रतिदिन सैकड़ों आते और जाते हैं। न जाने किस-किस की क्या-क्या चीज गिरवी पड़ी है। तुम्हारे जैसे पचासों की आँखें गिरवी रक्खी हैं। अतः पहचानना कठिन है कि तुम्हारी आँख कौन-सी है और कौन-सी नहीं। दूसरी आँख निकाल दोगे तो उससे मिलान कर लेंगे और तोल कर तुम्हें दे देंगे।

धन्ना की निराली युक्ति सुन कर धूर्त की अक्ल ठिकाने आ गई। उसने कहा—दूसरी आँख कैसे निकाल सकता हूँ ?

धन्ना—जैसे पहले एक आँख निकाली थी।

धूर्त निरुत्तर हो गया। उसका चेहरा फक हो गया। जो ठगने आया था, वह स्वयं ठगा गया। मोहरें वापिस माँग नहीं

सकता था, क्योंकि वह राजदरबार में कर्ज लेना स्वीकार कर चुका था। उसके लिए अब कोई चारा नहीं रह गया था। वह भाग जाने को उद्यत हुआ, पर धन्ना कच्चा खिलाड़ी नहीं था। उसने पहले ही पुलिस का प्रबन्ध कर रक्खा था। इशारा होते ही उन्होंने धूर्त को गिरफ्तार कर लिया। धूर्त ने बहुत आजीजी की, मगर उसे छोड़ देना नीति सम्मत नहीं था। प्रतिष्ठित पुरुषों की इज्जत लेने का और ठगने का अपराध साधारण अपराध नहीं था। उसे समुचित दण्ड दिया गया।

सेठ गोभद्र की प्रतिष्ठा बच गई और धन भी बच गया। यही नहीं, उन्हें लाख मोहरों की प्राप्ति भी हो गई। यह सब धन्नाजी की ही कृपा का फल था। अतएव सेठ ने उनका आभार माना। उनके बुद्धिकौशल की प्रशंसा की। फिर भी सेठजी को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने धन्ना के उपकार का बदला चुकाने के लिए और साथ ही उन्हें अत्यन्त सुयोग्य पात्र जान कर अपनी कन्या ब्याह देने का विचार किया।

सेठजी ने अपना विचार अपनी पत्नी के सामने उपस्थित किया। पत्नी ने कहा—मैंने धन्ना सेठ को देखा है। उनमें सभी गुण हैं। नवयुवक हैं, सुन्दर हैं, बुद्धिमान् हैं, भाग्यशाली हैं। अधिक सोचने की आवश्यकता ही क्या है? जो सम्राट श्रेणिक के जामाता बनने योग्य हैं, उनमें क्या कमी हो सकती है? अतएव यह सम्बन्ध हो तो विलम्ब न कीजिए।

गोभद्र सेठ धन्ना के यहाँ पहुँचे। धन्ना ने सौजन्य के साथ सेठजी का स्वागत किया। समुचित आसान पर बिठलाया और कहा—कहिए, किस उद्देश्य से आपने कष्ट किया है? मेरे लिए क्या आज्ञा है?

धन्ना की यह विनम्रता देख गोभद्र को बड़ा संतोष हुआ। उनके विचार को और समर्थन मिला। वह बोले—आपने आज मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा करके मुझे उपकृत किया है। मैं कृतज्ञता प्रकाश के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

धन्ना—अभयकुमार की अनुपस्थिति में मुझ पर जो दायित्व है, उसे मैंने पूर्ण किया। अपने कर्त्तव्य का पालन किया। राज्य से न्याय लेना आपका अधिकार था। इसमें कृतज्ञता प्रकाश की कोई आवश्यकता ही नहीं। फिर भी आपके सौजन्य के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

गोभद्र—यह आपकी महत्ता का प्रमाण है। पर मैं एक निवेदन और करना चाहता हूं।

धन्ना—कहिए, निःसंकोच!

गोभद्र—मेरी एक कन्या है सुभद्रा। जैसा उसका नाम, वैसा ही स्वभाव। वह सब प्रकार से योग्य है। हम लोग किसी सुयोग्य वर के साथ उसका संबंध करने के इच्छुक हैं। आपके समान योग्य वर हमें अभी तक दिखाई नहीं दिया। आप उसे स्वीकार करने की कृपा करें।

धन्ना—मैं सोचता था कि आप कोई सेवा बतलाएँगे, पर आपने सेवा का पुरस्कार बतलाया।

गोभद्र—नहीं, पुरस्कार नहीं, तुच्छ उपहार भले ही समझिए।

धन्ना—आप वयोवृद्ध हैं, आदरणीय हैं, आपको मैं नीति की शिक्षा देने का अधिकारी नहीं। तथापि स्मरण करा देना

चाहता हूं कि मेरे यहाँ दो पत्नियाँ मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में आपको पुनः विचार करना चाहिए। सौतिया डाह से आप अनभिज्ञ नहीं होंगे।

यह सत्य हैं कि माता-पिता अपनी कन्या का अहित नहीं सोचते, फिर आप जैसे विवेकशील पिता के लिए तो कहना ही क्या है ? आप अपनी कन्या का मंगल ही चाहेंगे। परन्तु हम लोग भूल न जाएँ कि पुरुष, पुरुष है और स्त्री, स्त्री है। पुरुष का हृदय स्त्री का हृदय नहीं हो सकता। अतएव कन्या का सम्बन्ध करना पुरुष के लिए बड़ा जोखिम है। कम से कम हमें नारी जाति की नैसर्गिक लालसाओं और भावनाओं को सहानुभूतिपूर्वक समझ कर ही इस विषय में कदम उठाना चाहिए।

गोभद्र—आप राजनीति में ही नहीं, मनोविज्ञान में भी पारंगत हैं, यह जान कर मुझे और अधिक प्रसन्नता है। परन्तु मैं अपनी कन्या को बखूबी जानता हूँ। वह भोग विलास की इच्छुक नहीं, अपने जीवन की पूर्णता की अभिलाषिणी है। आपका संसर्ग पाकर उसे वह पूर्णता प्राप्त होगी। विश्वास कीजिए, गोभद्र की कन्या सौतिया डाह की शिकार नहीं होगी और आपके सुखमय जीवन में बाधक भी नहीं होगी। वह आपके परिवार को अधिक सुखी बनाने की चेष्टा करेगी।

इस प्रकार गोभद्र जैसे प्रतिष्ठित और वयोवृद्ध व्यक्ति के आग्रह के सामने धन्ना को झुकना पड़ा। उसने कहा—मैंने अपनी स्थिति आपके समक्ष रख दी है। आप विचार कर देखें। अगर आपका यही विश्वास है कि आपकी कन्या मेरा साहचर्य पाकर सुखी होगी तो जैसी आपकी इच्छा !

धन्ना की यह विनम्रता देख गोभद्र को बड़ा सन्तोष हुआ। उनके विचार को और समर्थन मिला। वह बोले—आपने आज मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा करके मुझे उपकृत किया है। मैं कृतज्ञता प्रकाश के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

धन्ना—अभयकुमार की अनुपस्थिति में मुझ पर जो दायित्व है, उसे मैंने पूर्ण किया। अपने कर्त्तव्य का पालन किया। राज्य से न्याय लेना आपका अधिकार था। इसमें कृतज्ञता प्रकाश की कोई आवश्यकता ही नहीं। फिर भी आपके सौजन्य के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

गोभद्र—यह आपकी महत्ता का प्रमाण है। पर मैं एक निवेदन और करना चाहता हूं।

धन्ना—कहिए, निःसंकोच!

गोभद्र—मेरी एक कन्या है सुभद्रा। जैसा उसका नाम, वैसा ही स्वभाव। वह सब प्रकार से योग्य है। हम लोग किसी सुयोग्य वर के साथ उसका संबंध करने के इच्छुक हैं। आपके समान योग्य वर हमें अभी तक दिखाई नहीं दिया। आप उसे स्वीकार करने की कृपा करें।

धन्ना—मैं सोचता था कि आप कोई सेवा बतलाएँगे, पर आपने सेवा का पुरस्कार बतलाया।

गोभद्र—नहीं, पुरस्कार नहीं; तुच्छ उपहार भले कह लीजिए।

धन्ना—आप वयोवृद्ध हैं, आदरणीय हैं, आपको मैं नीति की शिक्षा देने का अधिकारी नहीं। तथापि स्मरण करा देना

चाहता हूं कि मेरे यहाँ दो पत्नियाँ मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में आपको पुनः विचार करना चाहिए। सौतिया डाह से आप अनभिज्ञ नहीं होंगे।

यह सत्य है कि माता-पिता अपनी कन्या का अहित नहीं सोचते, फिर आप जैसे विवेकशील पिता के लिए तो कहना ही क्या है ? आप अपनी कन्या का मंगल ही चाहेंगे। परन्तु हम लोग भूल न जाएँ कि पुरुष, पुरुष है और स्त्री, स्त्री है। पुरुष का हृदय स्त्री का हृदय नहीं हो सकता। अतएव कन्या का सम्बन्ध करना पुरुष के लिए बड़ा जोखिम है। कम से कम हमें नारी जाति की नैसर्गिक लालसाओं और भावनाओं को सहानुभूतिपूर्वक समझ कर ही इस विषय में कदम उठाना चाहिए।

गोभद्र—आप राजनीति में ही नहीं, मनोविज्ञान में भी पारंगत हैं, यह जान कर मुझे और अधिक प्रसन्नता है। परन्तु मैं अपनी कन्या को बखूबी जानता हूँ। वह भोग विलास की इच्छुक नहीं, अपने जीवन की पूर्णता की अभिलाषिणी है। आपका संसर्ग पाकर उसे वह पूर्णता प्राप्त होगी। विश्वास कीजिए, गोभद्र की कन्या सौतिया डाह की शिकार नहीं होगी और आपके सुखमय जीवन में बाधक भी नहीं होगी। वह आपके परिवार को अधिक सुखी बनाने की चेष्टा करेगी।

इस प्रकार गोभद्र जैसे प्रतिष्ठित और वयोवृद्ध व्यक्ति के आग्रह के सामने धन्ना को झुकना पड़ा। उसने कहा—मैंने अपनी स्थिति आपके समक्ष रख दी है। आप विचार कर देखें। अगर आपका यही विश्वास है कि आपकी कन्या मेरा साहचर्य पाकर सुखी होगी तो जैसी आपकी इच्छा !

धन्ना की स्वीकृति पाकर गोभद्र के हर्ष का पार न रहा। बोले—मेरा प्रगाढ़ विश्वास ही तो मुझे यहाँ खींच कर लाया है। अब मैं कृतार्थ हुआ। मेरी कन्या को अंगीकार करने की स्वीकृति देकर आपने मेरा बहुत बड़ा भार हल्का कर दिया।

निश्चित समय पर धन्ना और सुभद्रा का विवाह सम्पन्न हो गया। धन्ना सेठ तीनों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। धन्ना का व्यवहार बड़ा उत्तम था और उनकी तीनों पत्नियों में उच्च श्रेणी की कुलीनता थी। अतएव वे तीनों सहोदरा भगिनियों की भाँति बड़े ही स्नेह के साथ रहती थीं। प्रत्येक दूसरी के विकास में सहायक थी। अतएव परिवार में विमल प्रेम की शीतल मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही थी।

जहाँ पुण्य की प्रबलता है, वहाँ सुख के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

१६

पुण्य-प्रताप

दिग्वाससं गतव्रीडं, जटिलं धूलिधूसरम् ।
पुण्याधिका हि पश्यन्ति, गंगाधरमिवात्मजम् ।।

× × × ×

धूलिधूसरसर्वाङ्गो, विकसद्दन्त-केसरः ।
आस्ते कस्यापि धन्यस्य, द्वारि दन्ती गृहेऽर्भकः ।।

नंग धडंग, लज्जा के स्पर्श से शून्य, जटाधारी और धूल से भरे हुए, महादेव सरीखे पुत्र के दर्शन पुण्यात्माओं को ही होते हैं।

धूल से जिसका सारा अंग भरा हुआ है, जिसके हिम के समान धवल दांत चमकते हैं, ऐसा हाथी जिसके द्वार पर और ऐसा पुत्र जिनके घर में है, वह धन्य पुरुष कोई विरला ही होता है।

कविजन जिस पुत्र को पुण्य का फल और सौभाग्य का चिह्न मानते हैं, गृहस्थ जिसे पाकर अपने आपको धन्य एवं कृतार्थ समझते है, जिसके अभाव में अपने को दरिद्र एवं भाग्य-

हीन अनुभव करते हैं, उसका महत्त्व क्या है ? पुत्र की इतनी तीव्र स्पृहा का कारण क्या है ? गृहस्थजीवन में पुत्र की सार्थकता क्यों है ? इत्यादि प्रश्न सहज ही मन में चक्कर लगाने लगते हैं ? परन्तु इन पर विस्तार से विचार करने का यह स्थल नहीं है।

यहाँ सेठ गोभद्र की विचारधारा को भलीभाँति समझ लेने से ही इन प्रश्नों पर प्रकाश पड़ जाएगा।

सेठ गोभद्र की एक ही सन्तान थी—सुभद्रा। धन्ना के साथ उसका विवाह हो गया और वह अपने पति के घर चली गई। गोभद्र सेठ का घर सूना-सूना हो गया। सेठ तो बाहर जाकर, दुकान आदि में बैठ कर अपना समय काट लेते, पर सेठानी का समय काटे नहीं कटता था। वह उदास और विषण्ण रहने लगी। सेठानी के मन में आता—बिटिया तो पराये घर की चीज होती है। उससे दूसरों का घर भर सकता है, दूसरों की वंश बेल बढ़ सकती है ! अपने घर की शोभा बढ़ाने वाला तो पुत्र ही है। पुत्र के बिना घर सूना है !

सेठ गोभद्र का मन भी प्रसन्न नहीं रहता था। वह धर्मप्रिय पुरुष थे। उनके मन में आता—'वास्तव में वे धन्य हैं जो वृद्धावस्था आने पर अपना गार्हस्थिक उत्तरदायित्व अपने पुत्र के कंधों पर डाल कर, निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व भाव से आत्म-कल्याण की एकाग्र प्रशस्त साधना में निरत हो जाते हैं। मेरी वृद्धावस्था सन्निकट है; परन्तु मुझे एक भी पुत्र प्राप्त नहीं है। मैं अपना उत्तरदायित्व किसे सँभलाऊँगा ? किस प्रकार गृह-भार से मुक्त होकर संयम अंगीकार करके अपने दुर्लभ मनुष्यभव को सफल बनाऊँगा।

पुत्र के अभाव में घर भी श्मशान के समान वीरान–सुनसान जान पड़ता है। इस कारण मेरी पत्नी के चेहरे पर कभी प्रसन्नता और सन्तुष्टि की मधुरता नहीं दिखाई देती। वह जब देखो तभी गहरे विषाद में डूबी हुई जान पड़ती है।

इस प्रकार विचार करते–करते गोभद्र सेठ ने एक दिन संकल्प किया–यदि मुझे पुत्र की प्राप्ति हो जायगी तो मैं उसी समय संयम धारण कर लूँगा।

सेठ के संकल्प में कौन-सी शक्ति काम कर रही थी, यह समझना सरल नहीं है। तथापि संकल्प में, यदि वह उग्र और दृढ़ है तो अपूर्व शक्ति होती है, यह बात अप्रकट नहीं है। गोभद्र का संकल्प दृढ़ और प्रबल था। अतएव वह निरर्थक नहीं गया।

एक दिन गोभद्र की पत्नी ने रात्रि में एक शुभ स्वप्न देखा। उसने शालि से सम्पन्न, सुन्दर, हरा–भरा खेत देखा। उसी समय नींद उड़ गई। स्वप्न देखकर सेठानी भद्रा जागृत हुई तो उसे अपने आप ही प्रसन्नता का अनुभव होने लगा। चित्त में प्रफुल्लता का आभास हुआ। ऐसी प्रफुल्लता उसे बहुत दिनों से नसीब नहीं हुई थी। सेठानी भद्रा उसी समय सेठ के पास पहुँची। स्वप्न का वृत्तान्त बतला कर उसका फल जानना चाहा।

सेठजी ने कहा–प्रिये, तुम्हारा स्वप्न प्रशस्त है। जान पड़ता है, शीघ्र ही हमारे चिरकालीन मनोरथ की सिद्धि होगी। तुम एक अत्यन्त भाग्यशाली पुत्र की माता बनोगी।

भद्रा सेठानी ने भी कुछ ऐसा सोचा था। पति के मुख से अपने विचार की पुष्टि सुनकर उसे कितनी प्रसन्नता हुई, कहना

कठिन है। उसका रोम-रोम खिल उठा। उसे अपने नारीजीवन की सार्थकता के विचार से सन्तोष हुआ। उसने सोचा—चलो, मैं अपने पति की कामना पूर्ण कर सकूँगी और उन्हें एक ऐसा उपहार दे सकूँगी, जो सिर्फ मैं ही दे सकती हूं; कोई दूसरा देने में समर्थ नहीं है।

सेठानी भद्रा गर्भवती हुई। वह गर्भरक्षा और गर्भपालन के नियमों को भलीभाँति समझती थी। किस प्रकार का आहार-विहार करने से गर्भ को लाभ होता है और कौन-सा आहार-विहार गर्भ के लिए हानिकाकारक होता है, यह सब उसे मालूम था। अतएव वह सादा, सात्विक, सुपच आहार करती। न अधिक तीखा, न अधिक मीठा और न अधिक खट्टा भोजन करती। मन में चिन्ता, शोक आदि दुर्भावनाओं को प्रवेश भी न करने देती थी। प्रसन्न रहती। उदारता, पवित्रता, भगवद्भक्ति, दान, दया करुणा आदि की भावनाओं से अपने चित्त को भरपूर रखती थी।

इस प्रकार सावधानी से रहते-रहते सवा नौ महीने का काल समाप्त हो गया। भद्रा ने शुभ मुहूर्त्त में एक भाग्यशाली पुत्र को जन्म दिया। गृहस्थी प्रकाशमान हो उठी। घर में दीपक प्रज्वलित हो गया। आनन्द का वातावरण फैल गया।

गोभद्र सेठ मन ही मन सब तैयारी कर चुके थे। उन्हें अपने संकल्प का प्रतिक्षण स्मरण रहता था। वह उन लोगों में नहीं थे, जो बात-बात में आत्मा और परमात्मा को ठगने का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने यह नहीं सोचा—एक बार भी उनके मन में नहीं आया कि पुत्र उत्पन्न हो गया है तो कुछ दिन गृहस्थी में ठहर जाएँ, पुत्र के सुख का भोग लें और फिर संयम ले लेंगे!

नहीं, वह ऐसे आत्मवञ्चक, कायर नहीं थे। वह सच्चे मर्द थे, अपने संकल्प के पक्के। अतएव ज्यों ही उनकी प्रधान दासी ने पुत्र रत्न के जन्म की बधाई दी, त्यों ही वह संयम धारण करने के लिए उद्यत हुए। संयम ग्रहण करने के समय उनके मन में किसी भी प्रकार की विवशता, लाचारी, उत्साह की मन्दता या अनिच्छा नहीं थी। हार्दिक उल्लास के साथ वह भगवान् महावीर की सेवा में जा पहुंचे। प्रभु की वीतराग छवि देख कर उनका हृदय वैराग्य के रस से और भी अधिक भर गया, उन्होंने महाप्रभु के समक्ष अञ्जलि बाँधकर निवेदन किया -हे तरण-तारण! करुणानिधान! मेरा चिरसंकल्प आज पूर्ण हुआ। मैं आज गृहस्थी के उत्तरदायित्व से मुक्त हो गया हूं। गृहस्थी का उत्तराधिकारी जन्म चुका है। मैं निश्चिन्त हूँ। अब मैं आत्मा की साधना के पुण्य-पथ का पथिक बनना चाहता हूँ। प्रभो! मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। मेरा उद्धार कीजिए। मुझे अपनी वरद शरण में लीजिए। दीनानाथ मुझ पर दया कीजिए। संसार के भोग और उपभोग आज मुझे नीरस प्रतीत हो रहे हैं। सारा संसार जैसे एक कारागार है। इस कारागार से मुक्त होकर मैं अनगार बनना चाहता हूं। हे करुणागार! मेरा निस्तार कीजिए। अपने चरण-कमलों का चंचरीक बनाइए।

प्रभु ने कहा—'जहासुहं देवाणुप्पिया!'

उसी समय गोभद्र सेठ दीक्षित हो गये। उन्होंने मुनि-जीवन अंगीकार कर लिया। मुनि बनते ही उनका जीवन एकदम बदल गया। सारा समय ज्ञान, ध्यान, तप एवं चारित्र की आराधना में व्यतीत होने लगा। उन्होंने विनयपूर्वक ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। यथा शक्ति तप किया। आत्म ध्यान का अभ्यास किया। मुनि की चर्या का भलाभाँति पालन किया।

कठिन है। उसका रोम-रोम खिल उठा। उसे अपने नारीजीवन की सार्थकता के विचार से सन्तोष हुआ। उसने सोचा—चलो, मैं अपने पति की कामना पूर्ण कर सकूँगी और उन्हें एक ऐसा उपहार दे सकूँगी, जो सिर्फ मैं ही दे सकती हूं; कोई दूसरा देने में समर्थ नहीं है।

सेठानी भद्रा गर्भवती हुई। वह गर्भरक्षा और गर्भपालन के नियमों को भलीभाँति समझती थी। किस प्रकार का आहार-विहार करने से गर्भ को लाभ होता है और कौन-सा आहार-विहार गर्भ के लिए हानिकाकारक होता है, यह सब उसे मालूम था। अतएव वह सादा, सात्विक, सुपच आहार करती। न अधिक तीखा, न अधिक मीठा और न अधिक खट्टा भोजन करती। मन में चिन्ता, शोक आदि दुर्भावनाओं को प्रवेश भी न करने देती थी। प्रसन्न रहती। उदारता, पवित्रता, भगवद्भक्ति, दान, दया करुणा आदि की भावनाओं से अपने चित्त को भरपूर रखती थी।

इस प्रकार सावधानी से रहते-रहते सवा नौ महीने का काल समाप्त हो गया। भद्रा ने शुभ मुहूर्त में एक भाग्यशाली पुत्र को जन्म दिया। गृहस्थी प्रकाशमान हो उठी। घर में दीपक प्रज्वलित हो गया। आनन्द का वातावरण फैल गया।

गोभद्र सेठ मन ही मन सब तैयारी कर चुके थे। उन्हें अपने संकल्प का प्रतिक्षण स्मरण रहता था। वह उन लोगों में नहीं थे, जो बात-बात में आत्मा और परमात्मा को ठगने का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने यह नहीं सोचा—एक बार भी उनके मन में नहीं आया कि पुत्र उत्पन्न हो गया है तो कुछ दिन गृहस्थी में ठहर जाएँ, पुत्र के सुख का भोग लें और फिर संयम ले लेंगे!

यह मन रूपी घोड़े की दशा है। चार ज्ञान के धारक मुनि भी इस घोड़े को वश में करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। श्री गौतम स्वामी ने उसे वश में करने का उपाय श्रुत बतलाया है।

अर्जुन जैसा वीर धनुर्धर घबरा कर कहता है:—
चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ॥

अर्थात्—हे कृष्ण ! मन अत्यन्त चंचल है। बड़ा ही पक्का और बलवान् है—मथन करने वाला है। मुझे लगता है कि जैसे वायु को वश में करना अत्यन्त दुष्कर है, उसी प्रकार मन को वश में करना भी अतीव कठिन है।

गोभद्र मुनि ने ग्यारह अंग पढ़े, तप किया; ध्यान किया, मगर मन ने उन्हें धोखा दे ही दिया ! वह पूरी तरह उनके काबू में नहीं आया। उनका मन अकसर शालिभद्र की ओर दौड़ जाता था ! मुनि सोचने लगते—बड़ी लम्बी प्रतीक्षा और भावना के पश्चात् एक मात्र पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसका मुख देखे बिना ही मैंने गृहत्याग दिया ! इस तरह का अनुराग उनके हृदय के एक कोने से निकल न सका।

इस अनुराग के कारण गोभद्र मुनि पांच वर्ष तक संयम पाल करके आयु का अन्त होने पर प्रथम देवलोक तक ही पहुंच सके।

देवों को भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। उस अवधिज्ञान का प्रयोग करके देव ने अपने पूर्वभव के परिवार का समग्र वृत्तान्त जान लिया। उन्हें ज्ञात हो गया कि मेरे गृह त्याग कर देने के पश्चात् स्वयं भद्रा ने पुत्र जन्म का उत्सव मनाया। स्वप्न

मगर मन की गति बड़ी ही विचित्र है। मन बड़ा ही हठीला है। उसका दमन करना अत्यन्त कठिन है। उसे आत्मा के स्वरूप में जोड़ने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु वह फिसल जाता है। न जाने किस मार्ग से बाहर निकल कर कहीं का कहीं भटकने लगता है। ध्याता को जब पता चलता है कि मेरी काया ही ध्यान का अभिनय कर रही है, ध्यान करने वाला मन दूर भाग गया है; तब वह उसे घेर कर ठिकाने लाता है। किन्तु फिर वही हाल होता है! इसीलिए केशी स्वामी जैसे समर्थ सन्त भी गौतम से कहते हैं—

> अयं साहसिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई ।
> जंसि गोयम ! आरूढ़ो, कह तेण न हीरसि ? ॥

अर्थात्—हे गौतम ! यह अश्व बड़ा ही साहसी—सहसा कार्य करने वाला—है; भयानक है। दौड़धाम मचाता रहता है। तुम इस पर आरूढ़ हो। फिर भी वह तुम्हें मार्गच्युत क्यों नहीं कर पाता है ?

गौतम स्वामी ने उत्तर दिया:—

> पधावन्तं विगिण्हामि, सुयरस्सी—समाहियं ।
> न से गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जइ ॥

अर्थात्—मैं इधर-उधर भागते हुए उस अश्व को श्रुत की लगाम लगाकर वशीभूत करता हूँ। श्रुत की लगाम लगाने से मेरा अश्व उन्मार्ग में नहीं जाता और सन्मार्ग में चलता है। अर्थात् जिस ओर मैं ले जाना चाहता हूं उसी ओर चलता है और जिस ओर नहीं ले जाना चाहता, उस ओर नहीं जाता। इस प्रकार मैंने अपने क. वश में कर लिया है।

यह मन रूपी घोड़े की दशा है। चार ज्ञान के धारक मुनि भी इस घोड़े को वश में करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। श्री गौतम स्वामी ने उसे वश में करने का उपाय श्रुत बतलाया है।

अर्जुन जैसा वीर धनुर्धर घबरा कर कहता है:—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ॥

अर्थात्—हे कृष्ण ! मन अत्यन्त चंचल है। बड़ा ही पापा और बलवान् है—मथन करने वाला है। मुझे लगता है कि जैसे वायु को वश में करना अत्यन्त दुष्कर है, उसी प्रकार मन को वश में करना भी अतीव कठिन है।

गोभद्र मुनि ने ग्यारह अंग पढ़े, तप किया, ध्यान किया, मगर मन ने उन्हें धोखा दे ही दिया ! यह पूरी तरह उनके काबू में नहीं आया। उनका मन अकसर शालिभद्र की ओर दौड़ जाता था ! मुनि सोचने लगते—बड़ी लम्बी प्रतीक्षा और भावना के पश्चात् एक मात्र पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसका मुख देखे बिना ही मैंने गृहत्याग दिया ! इस तरह का अनुराग उनके हृदय के एक कोने से निकल न सका।

इस अनुराग के कारण गोभद्र मुनि पांच वर्ष तक संयम पाल करके आयु का अन्त होने पर प्रथम देवलोक तक ही पहुंच सके।

देवों को भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। उस अवधिज्ञान का प्रयोग करके देव ने अपने पूर्वभव के परिवार का समग्र वृत्तान्त जान लिया। उन्हें ज्ञात हो गया कि मेरे गृह त्याग कर देने के पश्चात् स्वयं भद्रा ने पुत्र जन्म का उत्सव मनाया। स्वप्न

में शालिपूर्ण खेत देखने की घटना के आधार पर मेरे पुत्र का 'शालिभद्र' नाम रक्खा गया है। माता अत्यन्त सावधानी और परम प्रीति के साथ पुत्र का पालन कर रही है।

यह सब जानकर देव तत्काल स्वर्ग से प्रस्थान कर राजगृही में अपने पुत्र के घर आया। पुत्र-प्रेम से प्रेरित होकर उसने घर में अनूठा ठाठ रच दिया। सारा का सारा नक्शा बदल दिया। प्रथम ही देव ने एक उत्तुङ्ग और विशाल महल की रचना की। वह सात मंजिल का महल था। देखने में अतिशय रमणीय, विचित्र, मनोरम और सुन्दर था! उसकी रचना इस प्रकार की गई थी कि षट्ऋतुओं में से किसी भी ऋतु में वह असुविधाजनक नहीं था। प्रत्येक ऋतु में अनुपम आनन्ददायक था। उस महल को मूल्यवान वस्तुओं से सुसज्जित किया। सब प्रकार से उसे अनुपम और अद्वितीय बना दिया।

शालिभद्र जब विद्याध्ययन के योग्य हुआ तो उसे बहत्तर कलाएँ सिखलाई। तत्पश्चात् यौवन में प्रवेश करने पर एक से एक सुन्दरी ३२ नारियों के साथ उसका पाणिग्रहण करवाया। समुचित और सुन्दर शयन, आसन, गृहस्थी के उपयोग में आने वाले सभी प्रकार के पात्र, सोना, चांदी, रत्न आदि आदि सभी वस्तुएँ इस घर में अनुपम हो गईं।

इन सबके अतिरिक्त देव ने एक व्यवस्था और कर दी। वह स्वर्ग से प्रतिदिन तेतीस पेटियां भेजता था। प्रत्येक पेटी में तीन खण्ड होते थे। एक खण्ड में चारों प्रकार के आहार, दूसरे में उत्तम और महर्घ्य वस्त्र और तीसरे में अनमोल आभूषण भरे होते थे। एक पेटी शालिभद्र के लिए और बत्तीस उसकी पत्नियों के लिए थीं। इन दिव्य पदार्थों को खाते पीते पहनते-ओढ़ते और

आनन्द करते हुए सब सुखपूर्वक अपना समय यापन करने लगे।

शालिभद्र दोगुन्दक देव की भाँति रहने लगा। उसके लिए पृथ्वी पर ही स्वर्ग उतर आया था। फिर कमी क्या थी? चिन्ता किस बात की थी? उसे दुनिया की कुछ खबर नहीं थी। संसार का व्यवहार किस प्रकार चल रहा है यह जानने की उसे आवश्यकता ही नहीं हुई। मानो, उसके महल में ही उसका सारा संसार समा गया था।

वह और उसकी बत्तीस पत्नियाँ प्रतिदिन नूतन आभूषण धारण करती थीं। पहले के आभूषण उतार कर भंडार में डाल दिये जाते थे। अतएव उन अमूल्य दिव्य आभरणों से शालिभद्र के भण्डार भर गये थे। कभी-कभी दास और दासियों को वह दे दिये जाते थे। लोग अलौकिक आभूषणों को दास-दासियों के अंग पर देख कर चकित रह जाते थे। उन्हें शालिभद्र की ऋद्धि देखकर आश्चर्य होता था।

वास्तव में देखा जाय तो यह सब देव की नहीं, दैव की—पुण्य की कृपा का फल था। शालिभद्र ने पूर्वभव में महान् और उदार दान दिया था। उससे उपार्जित पुण्य के कारण ही देव उसका सहायक हुआ था। अपने उस दान के प्रभाव से शालिभद्र इन्द्र के समान ऐश्वर्य भोग रहा था।

१७

राजगृह का परित्याग

धन्नाकुमार एक दिन अपने महल के गवाक्ष में बैठे बाजार के दृश्य देख रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि एक परिवार पर जा पड़ी। उसके रंग ढंग से स्पष्ट ही प्रतीत होता था कि वह मुसीबतों का मारा है। उसमें कुछ स्त्रियाँ थीं। सभी दुःख और भूख से पीड़ित थे। उनके शरीर कृश और निस्तेज हो गये थे। शरीर पर फटे और मलिन वस्त्र थे। दूर से चले आने के कारण वे थके हुए प्रतीत होते थे। उनके चेहरे दैन्य से व्याप्त थे। सब परेशान थे, व्याकुल थे। दरिद्रता ने उनकी दुर्दशा कर डाली थी।

ये मार्ग की थकावट को दूर करने के लिए धन्नाकुमार के महल की छाया में ठहर गये थे। सब ने अपने माथे का भार उतार कर नीचे रख दिया था और विश्रान्ति ले रहे थे।

धन्नाकुमार की दृष्टि उस परिवार पर पड़ी और उसी पर अटक गई। उसे पहचानने में उन्हें बहुत समय नहीं लगा। वह और कोई नहीं धन्ना का ही परिवार था। उसमें उसके माता-पिता थे, भाई थे, और भौजाइयाँ थीं। ज्यों ही धन्ना ने उन्हें पहिचाना, उसके हृदय को बड़ा गहरा और तीव्र आघात लगा! वास्तव में वह कल्पना ही नहीं कर सकता है कि मेरे परिवार

की यह दशा हो सकती है ! वह तो बहुत सारी सम्पत्ति छोड़ कर आया था—इतनी कि नयी कमाई न करने पर भी वे सुख-पूर्वक सारी जिंदगी व्यतीत कर सकते थे । इसी कारण पहले तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही न हुआ ! जब उसने बार-बार ध्यानपूर्वक देखा तो उसे विश्वास करना पड़ा ।

धन्ना ने उसी समय अपने एक विश्वस्त दास को भेजकर उन सबको महल के भीतर बुलाया । एकान्त में धन्ना उनसे मिला उसने सबके पैरों में गिर कर प्रणाम किया और पूछा—आपकी यह दुर्दशा कैसे होगई ? सब सम्पत्ति कहाँ चली गई ? मैं तो बहुत सम्पदा छोड़ आया था । सोचता था—आप सब सुखपूर्वक रहते होंगे । मगर क्या कारण हुआ कि आपको इतना अधिक कष्ट भोगना पड़ा ?

प्रारम्भ में, थोड़ी देर के लिए तो इन लोगों को खयाल न आया कि यह धन्ना है, मगर प्रणाम करने और उसका भाषण सुनने से वह समझ गये । धन्नाकुमार को पहचानते ही माता-पिता और भोजाइयों के नेत्र आंसुओं से भर गए । उनका चित्त अतिशय व्यथित और व्याकुल हो उठा ।

धनसार बोले-बेटा, तुम बिना कहे-सुने उज्जयिनी से चल दिये । परन्तु तुम्हारे जाते ही हमारे पाप प्रकट हो गए । यद्यपि तुमने किसी से कुछ नहीं कहा; तथापि राजा चण्डप्रद्योतन को सब घटना विदित हो गई । वह हम लोगों पर काल की तरह कुपित हो गया । उसने हमें बुलाकर पूछा-बताओ, हमारा मंत्री कहाँ है ?

इस प्रश्न का मेरे पास कोई उत्तर नहीं था । मैं कैसे बतलाता कि तुम कहाँ हो ? मुझे ज्ञात नहीं था । जब मैंने राजा से

साथ वर्त्ताव करता और उन्हें सदैव प्रसन्न रखने का प्रयास करता था।

कभी-कभी माता-पिता उसके सौजन्य एवं औदार्य की प्रशंसा क. ने लगते। कभी उसकी भौजाइयाँ उसका असीम उपकार मानने लगतीं त. वह लज्जित होता। कहता—बस, रहने दीजिए। 'यदतीतमतीतमेव तत्।' अर्थात् जो बात बीत गई सो बीत गई। चित्त में उद्वेग उत्पन्न करने वाली बातों को स्मरण करने से क्या लाभ है ? मैं अपने को इसी कारण भाग्यशाली समझता हूँ कि आप सबके चरणों की सेवा करने का सौभाग्य मुझे फिर प्राप्त हो गया। आप मेरा आभार मानेंगे तो मैं समझूंगा कि आपकी निगाह में मैं पराया हूँ। भला अपने का कोई आभार मानता है ?

इस प्रकार कह कर धन्ना सब का मुँह बन्द कर देता था। पर मन को वह रोक नहीं सकता था। उसके माता, पिता और भौजाइयाँ उसकी यह उदारता देख कर मन ही मन 'धन्य-धन्य' कहने लगतीं। सोचतीं—जैसा इनका नाम है धन्य, वैसा ही इनका जीवन भी धन्य है। यह मनुष्य की आकृति में देवता से भी बढ़े-चढ़े हैं।

इस प्रकार सभी सुख और सुविधा कर देने के कारण सब का समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था; परन्तु ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि सुख का भागी पुण्यवान् पुरुष ही हो सकता है। जिसके पाप का उदय है वह सर्वत्र अपने लिए दुःख का निर्माण कर लेता है।

ऐसा ही हुआ धन्ना प्रधान रूप से राजकाज में संलग्न रहते थे और सेठ धनसार ने व्यापारिक कार्य सँभाल लिया

था। तीनों भाइयों के सिर पर कोई विशेष उत्तरदायित्व नहीं था। चैन की वंशी बजाना ही उनका काम था। फिर भी दुर्दैव के उदय से वे शान्ति न पा सके, मानसिक सुख का उपभोग न कर सके। धन्ना की महान् प्रतिष्ठा, उसका विशिष्ट आदर सत्कार और प्रभाव उनके हृदय में काँटे के समान चुभता था। वे मन ही मन जलते रहते और धन्ना को फूटी आँखों भी देखना पसंद न करते। वह आपस में कहते—देखो, हम लोगों को कोई पूछता ही नहीं और धन्ना का यह ठाठ है !

अपने मन की मलिनता के कारण वे सदा विषण्ग से रहते और कभी प्रेमपूर्वक धन्ना से बात तक नहीं करते थे। धन्ना जैसा उड़ती चिड़िया को परखने वाला व्यक्ति सभी कुछ समझ रहा था। भाइयों की मनोवृत्ति को वह भलीभाँति जानता था। जब उसने देखा कि मेरे कारण इन्हें बड़ा कष्ट हो रहा है, तो उसने पहले वाली नीति ही अंगीकार करने का विचार किया। उसने इस घर को भी त्याग देने का निश्चय कर लिया।

धन्ना कुमार दो बार गृहत्याग कर चुका था और तीसरी बार त्याग करने के लिए उद्यत था। पहली और दूसरी बार तो वह अकेला था, तब उसका विवाह नहीं हुआ था, किन्तु अब वह तीन विवाह कर चुका था। किन्तु तीन पत्नियों के प्रति उसका जो उत्तरदायित्व है, वह भी उसके संकल्प में बाधक नहीं बना। उसने अपनी विपुलता, वैभव से परिपूर्ण गृहस्थी, असाधारण प्रतिष्ठा, आदि का भी त्याग करते कुछ आगा पीछा नहीं सोचा। आखिर धन्ना की इस फक्कड़शाही कार्रवाई के मूल में कौन सी मनोवृत्ति काम कर रही थी ?

किसी के मन की बात समझना बड़ा कठिन है। फिर जो

साथ वर्त्ताव करता और उन्हें सदैव प्रसन्न रखने का प्रयास करता था।

कभी-कभी माता-पिता उसके सौजन्य एवं औदार्य की प्रशंसा करने लगते। कभी उसकी भौजाइयाँ उसका असीम उपकार मानने लगतीं त वह लज्जित होता। कहता—बस, रहने दीजिए। 'यदतीतमतीतमेव तत्।' अर्थात् जो बात बीत गई सो बीत गई। चित्त में उद्वेग उत्पन्न करने वाली बातों को स्मरण करने से क्या लाभ है? मैं अपने को इसी कारण भाग्यशाली समझता हूँ कि आप सबके चरणों की सेवा करने का सौभाग्य मुझे फिर प्राप्त हो गया। आप मेरा आभार मानेंगे तो मैं समझूंगा कि आपकी निगाह में मैं पराया हूँ। भला अपने का कोई आभार मानता है?

इस प्रकार कह कर धन्ना सब का मुँह बन्द कर देता था। पर मन को वह रोक नहीं सकता था। उसके माता, पिता और भौजाइयाँ उसकी यह उदारता देख कर मन ही मन 'धन्य-धन्य' कहने लगतीं। सोचतीं—जैसा इनका नाम है धन्य, वैसा ही इनका जीवन भी धन्य है। यह मनुष्य की आकृति में देवता से भी बढ़े-चढ़े हैं।

इस प्रकार सभी सुख और सुविधा कर देने के कारण सब का समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था; परन्तु ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि सुख का भागी पुण्यवान् पुरुष ही हो सकता है। जिसके पाप का उदय है वह सर्वत्र अपने लिए दुःख का निर्माण कर लेता है।

ऐसा ही हुआ धन्ना प्रधान रूप से राजकाज में संलग्न रहते थे और सेठ धनसार ने व्यापारिक कार्य सँभाल लिया

धनहानि केवल श्रद्धा के विषय नहीं थे । उसने जीवन में ही दोनों के उदाहरण प्रत्यक्ष देखे थे । उसे किस प्रकार अनायास ही धनलाभ हो जाता और भाइयों का धन किस प्रकार सहसा विलीन हो जाता है, यह बात वह देख चुका था । अतएव उसे अपनी धारणा पर पूर्ण प्रतीति हो गई थी ।

यह भी संभव है कि वह अपने आत्मीयजनों के सुख के लिए, अपने भाइयों के आनन्द के लिए बड़े से बड़ा उत्सर्ग करके अपने महान् कर्त्तव्य का पालन करता था और इसी में उसे आनन्द की अनुभूति होती थी । दूसरों के आनन्द में अपना आनन्द मनाने की मनोभूमिका उच्चतर स्तर की है और धन्ना जैसे महापुरुष के लिए वह सहज मानी जा सकती है ।

इनमें से कोई भी कारण हो या सब मिले-जुले कारण हों, सबसे धन्ना की असाधारण उदारता, महत्ता, अनासक्ति और धीरता टपकती है ।

हाँ, तो धन्ना ने राजगृही का चुपचाप परित्याग कर दिया ।

व्यक्ति हजारों वर्ष पूर्व हो चुके हैं, हैं, उनके मनोभावों के विषय में तो आज के बड़े से बड़े कल्पनाशील मनोविज्ञानी के लिए भी कुछ निर्णय करना और भी कठिन है फिर भी उनके जो कार्य कलाप हमारे सामने हैं उन पर गहरी दृष्टि से विचार करना चाहिए और इनकी मूल प्रेरक भावनाओं को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस दृष्टिकोण से जब हम विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि धन्ना के मन में धन-सम्पत्ति के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। वह बड़ी से बड़ी सम्पत्ति की राशि को और कूड़े-कचरे के ढेर को एक ही दृष्टि से देखता था। जैसे साधारण व्यक्ति कूड़े के ढेर को त्यागने में लोभ नहीं करता, दुविधा का अनुभव नहीं करता उसी प्रकार कुमार धन्ना धनराशि का परित्याग करने में दुविधा अनुभव नहीं करता था। अनसक्ति के गहरे जन्मजात संस्कार उसमें प्रबल थे। इन्हीं संस्कारों के कारण फक्कड़पन का उसमें विकास हो गया था। धन-सम्पत्ति को त्याग देना उसके लिए खिलवाड़ मात्र था।

संभव है धन्नाकुमार यह सोचता हो कि लक्ष्मी छाती से चिपटाने से नहीं रहती और न त्याग करने से जाती है। उसके रहने और जाने का कारण पुण्य और पाप है। पुण्य के उदय से लक्ष्मी आती है और रहती है; पाप के उदय से चली जाती है। अतएव यदि मेरे पुण्य-कर्म का उदय है तो वह मेरे न चाहने पर भी आएगी और यदि पाप का उदय होगा तो चाहने पर भी न रहेगी और छाती से चिपटाने एवं प्राणों की तरह रक्षा करने पर भी चली जाएगी।

धन्ना के समक्ष पुण्य-पाप के फल-स्वरूप धनलाभ और

ग्राम-वासियों को पानी का कष्ट देख कर धन्ना ने तत्काल इस कष्ट को दूर करने का निश्चय कर लिया। एक विशाल तालाब खुदवाने का आयोजन किया। कुमार ने मजदूरी का दर भी नियत कर दिया। पुरुषों को दो सोनैया और स्त्रियों को एक सोनैया मिलती थी। भोजन अलग मिलता था। मजदूरी का यह दर उस समय बहुत ऊँचा था। दूसरी जगह नहीं मिलता था। अतएव सैकड़ों नर नारी आकर प्रसन्नता एवं सन्तोष के साथ तालाब की खुदाई का काम करने लगे। सभी मजदूर बहुत लगन के साथ काम करते थे, क्योंकि उन्हें भरपूर से भी अधिक धन और भोजन मिलता था।

इस विषय में धन्ना के विचार अत्यन्त उदार थे। उसने गरीबों के पालन-पोषण का यह उत्तम उपाय सोचा था। निर्धनों की सेवा का यह सन्मानमय तरीका था। कभी-कभी वह सोचता—जो काम मुझसे होना शक्य नहीं, उस वह लोग कर रहे हैं। मेरी बड़ी भारी सहायता कर रहे हैं। सर्दी-गर्मी की परवाह न करते हुए काम में जुटे रहते हैं। इन उपकारी सहायकों का जितना सम्मान किया जाय, थोड़ा है।

इस प्रकार की विचार धारा से प्रेरित धन्ना अपने सभी मजदूरों के प्रति सहानुभूतिशील रहता था। देखरेख करने वालों को उसने सख्त हिदायत करदी थी कि किसी मजदूर के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार न किया जाय, किसी से शक्ति से अधिक काम लेने का प्रयत्न न किया जाय और किसी को कष्ट न होने दिया जाय। मजदूर थक जाय और विश्राम लेने लगे तो उसे रोका न जाय। विशेषतया स्त्रियों के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की जाय। कम दाम देकर अधिक काम लेने की भावना का सर्वथा परित्याग कर दिया जाय। सब मजदूरों के प्रति

इसके प्रभाव से रोगशोक का विनाश होता है। राज्य-ऋद्धि की वृद्धि होती है। महाराज, इस मणि में और भी अनेक गुण हैं। महान् पुण्य के उदय से इसकी प्राप्ति होती है।

शतानीक—आपके कथन की सत्यता का प्रमाण क्या है?

धन्ना-प्रमाण मैं अभी दिखलाता हूँ। अनाज से भरी हुई एक थाली मँगवा लीजिए।

राजा का संकेत होते ही अनाज से भरा थाल आ गया तब धन्ना ने कहा—अनाज के बीच में इस मणि को रख दीजिए और थाल किसी ऊँचे स्थान पर रखवा दीजिए। जब तक थाल में यह मणि रहेगी, पक्षी अनाज नहीं चुगेंगे। मणि के हटा लेने पर ही चुगेंगे। मेरा यह कथन सत्य सिद्ध हो तो मेरे बतलाये सब गुणों को भी आप सत्य समझ लें।

धन्ना के कथनानुसार सब विधि की गई और वही हुआ जो उसने कहा था। राजा शतानीक को धन्ना के कथन पर पूर्ण विश्वास हो गया। उन्होंने कुमार का बड़ा उपकार माना। हार्दिक सत्कार किया और राजकीय अतिथि बनाया। तत्पश्चात् कुमार की गुणज्ञता, सौभाग्यशीलता और महत्ता से परिचित होकर अपनी 'सौभाग्यमंजरी' नामक कन्या का उनके साथ विवाह कर दिया। दहेज में पाँच सौ ग्राम, हाथी, घोड़े, धन-सम्पत्ति आदि सभी सामग्री प्रदान की। कुमार धन्ना यहाँ भी उसी राजसी ठाठ के साथ रहने लगे और अपना समय सुखपूर्वक व्यतीत करने लगे।

कुमार ने यहाँ 'धन्नापुर' नामक एक गाँव बसाया। उसी में वह रहने लगे। परन्तु वहाँ पानी की कमी दिखाई दी।

ग्राम-वासियों को पानी का कष्ट देख कर धन्ना ने तत्काल इस कष्ट को दूर करने का निश्चय कर लिया। एक विशाल तालाब खुदवाने का आयोजन किया। कुमार ने मजदूरी का दर भी नियत कर दिया। पुरुषों को दो सोनैया और स्त्रियों को एक सोनैया मिलती थी। भोजन अलग मिलता था। मजदूरी का यह दर उस समय बहुत ऊँचा था। दूसरी जगह नहीं मिलता था। अतएव सैकड़ों नर नारी आकर प्रसन्नता एवं सन्तोष के साथ तालाब की खुदाई का काम करने लगे। सभी मजदूर बहुत लगन के साथ काम करते थे, क्योंकि उन्हें भरपूर से भी अधिक धन और भोजन मिलता था।

इस विषय में धन्ना के विचार अत्यन्त उदार थे। उसने गरीबों के पालन-पोषण का यह उत्तम उपाय सोचा था। निर्धनों की सेवा का यह सन्मानमय तरीका था। कभी-कभी वह सोचता—जो काम मुझसे होना शक्य नहीं, उसे यह लोग कर रहे हैं। मेरी बड़ी भारी सहायता कर रहे हैं। सर्दी-गर्मी की परवाह न करते हुए काम में जुटे रहते हैं। इन उपकारी सहायकों का जितना सम्मान किया जाय, थोड़ा है।

इस प्रकार की विचार धारा से प्रेरित धन्ना अपने सभी मजदूरों के प्रति सहानुभूतिशील रहता था। देखरेख करने वालों को उसने सख्त हिदायत करदी थी कि किसी मजदूर के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार न किया जाय, किसी से शक्ति से अधिक काम लेने का प्रयत्न न किया जाय और किसी को कष्ट न होने दिया जाय। मजदूर थक जाय और विश्राम लेने लगे तो उसे रोका न जाय। विशेषतया स्त्रियों के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की जाय। कम दाम देकर अधिक काम लेने की भावना का सर्वथा परित्याग कर दिया जाय। सब मजदूरों के प्रति

समता एवं आत्मीयता का व्यवहार किया जाय। एक ही जगह दस खर्च हों तो चिन्ता नहीं।

इसी भावना से खुदाई का काम चल रहा था। मजदूर सब सन्तुष्ट और प्रसन्न रहते थे। अतएव वे अपनी शक्ति के अनुसार पूरा काम करते थे। न कोई बहाना करता न काम से जी चुराता। इस प्रकार दोनों ओर से उदारता प्रदर्शित की जा रही थी।

आज मजदूरों और मालिकों के बीच सर्वत्र संघर्ष दिखलाई पड़ता है। आये दिन हड़तालें और प्रदर्शन होते हैं। मजदूर मालिक से और मालिक मजदूर से असन्तुष्ट हैं। मालिक चाहता है–किसी प्रकार मजदूर को कम मजदूरी दूँ और काम ज्यादा लूँ। मजदूर चाहता है–किसी भी उपाय से दाम ज्यादा लूँ और काम कम करूँ! दोनों में स्वार्थमय संकीर्ण भावना का प्राबल्य दृष्टिगोचर होता है। यही संघर्ष का बीज है। इस संघर्ष का निवारण धन्ना की नीति को अपनाने से ही संभव है। पारस्परिक सहानुभूति की चेतना जागृत हो तो देश में आनन्द ही आनन्द फैल जाय। किन्तु अनुचित लाभ उठाने की मनोवृत्ति ऐसा होने नहीं देती।

पुण्य पुरुष धन्ना इधर कौशाम्बी में भी राजजामाता बन कर राजसी ठाठ से रहने लगे। उधर धन्ना के एकाएक गायब हो जाने से राजगृही में खलबली मच गई। जहाँ जाइए, यही चर्चा सुनाई देती थी। सब लोग धन्ना के चले जाने से उदास और खिन्न थे।

महाराजा श्रेणिक को जब उनके चले जाने का संवाद मिला तो उन्हें भी गम्भीर आघात लगा। उन्होंने समझ लिया

कि मेरे जामाता के गृहत्याग के प्रधान कारण यही लोग है। अतएव श्रेणिक का कोप उन पर चरम पड़ा। अन्य लोग भी उन्हें घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगे। कोई कहीं आदर नहीं देता था। अतएव धनसार तथा धनदत्त आदि का घर से बाहर निकलना कठिन हो गया। अपमान और तिरस्कार सहते हुए भी वे राजगृही में पड़े रहते, मगर धन्ना के जाते ही धन इस प्रकार विलीन होने लगा, जैसे पानी का बुलबुला पानी में विलीन हो जाता है। हालत यहाँ तक खराब हो गई कि खाने-पीने का भी कष्ट पड़ने लगा। इस प्रकार भीतर निर्धनता और बाहर अपमान एवं लांछना से विवश होकर धनसार ने भी राजगृही को त्याग देने का इरादा कर लिया।

धनसार ने धन्नाकुमार की तीनों पत्नियों को बुलाकर कहा—बेटियो! हमारे कारण तुम्हें जो व्यथा सहन करनी पड़ रही है, उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ! तुम्हारा अभागा श्वसुर तुम्हारे पतिवियोग का कारण बना। तुम्हारी राजा की सी गृहस्थी मिट्टी में मिल गई! मैं नहीं जानता किस प्रकार तुम हमें क्षमा करोगी। मगर स्थिति यह है कि अब यहाँ हमारा रहना संभव नहीं है। हम राजगृही का परित्याग कर रहे हैं। कहाँ जाएँगे और क्या करेंगे, यह मुझे भी नहीं मालूम है। इस स्थिति में मैं चाहता हूँ कि तुम तीनों अपने-अपने मायके चली जाओ और सुखपूर्वक रहो। तुम जैसी सुख में पली और रही हुई सुकुमारी रमणियाँ मार्ग के कष्टों को तथा भूख-प्यास आदि की पीड़ाओं को सहन न कर सकोगी। अतः तुम्हारा यहीं रहना श्रेयस्कर है। हमें अपनी तकदीर के खेल देखने के लिए जाने दो।

धनसार का मार्मिक वेदना से परिपूर्ण करुण कथन

सुनकर तीनों वधुएँ विह्वल हो उठीं। साधारण नारियाँ होतीं तो इसी परिस्थिति में वे श्वसुर और जेठों को अपने आग्नेय वाक्य-वाणों से संतप्त कर देतीं, किन्तु इन्होंने ऐसा नहीं किया। ये तीनों उच्चकुल की बेटियाँ थीं। उनमें गम्भीरता, सहिष्णुता, सुहृदयता और विवेकशीलता थी। अतएव उन्होंने किसी के व्यथित हृदय को अधिक व्यथा पहुँचाना असुरता का लक्षण समझा। उनमें से सुभद्रा ने कहा—पिताजी, इसमें किसी का कोई दोष नहीं है। आप हमारे लिए चिन्तित न हों। इस वृद्धावस्था में आपको कष्ट सहने का प्रसंग आया, यह हमारे लिए अत्यन्त खेद का विषय है। आप अपने मनसे यह धारणा दूर कर दीजिए कि आप हमारे कष्टों के कारण हैं। हमने धर्म शास्त्र का श्रवण और पठन किया है। कर्म सिद्धान्त को भी समझने का प्रयत्न किया है। हमें भलीभांति ज्ञात है कि कोई भी प्राणी, दूसरे को दुखी या सुखी नहीं बना सकता। वास्तविक दृष्टि से सब अपने ही कर्मों का फल भोगते हैं। हमारे पुण्य में न्यूनता न आई होती तो हमें यह दिन क्यों देखना पड़ता? अतएव हम अपने सुख-दुख के लिए अपने आप को ही उत्तरदायी समझती हैं, किसी अन्य को नहीं।

कुसुमश्री और सोमश्री ने भी सुभद्रा के कथन का समर्थन किया और बूढ़े धनसार के दुःखित हृदय को सान्त्वना दी।

अपनी बहुओं की यह उच्च विचारधारा जानकर सचमुच ही धनसार को ढाढस बंधा। उनका भारी हृदय कुछ हल्का हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—तुम मानुषी नहीं देवी हो लक्ष्मी हो। निस्सन्देह तुम्हारी कुलीनता सराहनीय है! बड़े घरों की बेटियाँ का हृदय बड़ा न होगा तो किसका होगा?

थोड़ी देर रुक कर गद्गद् कंठ से धनसार ने कहा—अच्छा, देर हो रही है। हमें प्रस्थान करना होगा। हमारे सामने ही तुम अपने-अपने पीहर चली जाओगी तो हम शान्ति से प्रस्थान कर सकेंगे।

तीनों वधुएँ पीहर जाने के बदले धनसार के ही साथ जाने को तैयार हुईं। उन्होंने कहा—विवाह से पहले पिता का घर हमारा घर था। विवाह के पश्चात् श्वसुर और पति का गृह ही हमारा घर है। हमारा भाग्य आपके साथ संकलित है। जहाँ आप वहीं हम। नारी का कर्त्तव्य है कि वह विवाहित होकर पतिगृह को ही अपना गृह समझे। अतः आपके साथ चलना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।

धनसार ने उन्हें बहुत समझाया। बहुत आग्रह किया। तब कुसुमश्री और सोमश्री तो बिलखती हुई अपने पीहर चली गईं, परन्तु सुभद्रा किसी भी प्रकार न मानी। उसने कहा—पिताजी, मैं दुःख के समय आप लोगों को नहीं त्याग सकती मैं आपके साथ पैदल चलूंगी, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि के सब कष्ट सह लूँगी। वृद्धा सासूजी और जेठानियाँ जो मुसीबतें सहन कर सकती हैं, उन्हें मैं क्यों नहीं सह सकूँगी?

सुभद्रा के हठ के सामने धनसार और उनकी पत्नी को झुकना ही पड़ा। नौ व्यक्तियों का परिवार राजगृही का परित्याग कर चल दिया। पृथ्वी की पीठ पर चलते हुए और नाना प्रकार के कष्ट सहन करते हुए वे इधर-उधर घूमने लगे। कहीं स्थायी रूप से ठहरने की सुविधा न मिल सकी। संयोग की ही बात समझिए कि ये सब चलते-चलते एक दिन 'धन्नापुर' आ पहुँचे। सम्भव है, गाँव का नाम 'धन्नापुर' सुनकर ही उन्हें वहाँ

जाने का आकर्षण हुआ हो। आखिर 'धन्ना' के नाम को वे भूल नहीं सकते थे !

धन्नापुर आकर कोई भूखा नहीं रह सकता था। विशाल तालाब की खुदाई का जो काम चालू था, उसके सहारे किसी का भी गुजर हो सकता था। धनसार आदि वहाँ पहुँचे तो वे सब भी खुदाई के काम में जुट पड़े। गोभद्र सेठ की लाड़ली बेटी और शालिभद्र जैसे दिव्य स्वर्गीय ऋद्धि के भोक्ता की बहिन, सुभद्रा ने भी खुदाई का काम करने में संकोच नहीं किया। वह सन्तोष के साथ मजदूरी करने लगी।

कुछ ही दिन बीते न बीते कि धन्ना तालाब की खुदाई का निरीक्षण करने आए। जब उनकी दृष्टि अपने आत्मीय जनों पर पड़ी तो वे तत्काल उन्हें पहचान गए। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि इन लोगों के कुदाल पृथ्वी की छाती पर नहीं, उन्हीं की छाती पर पड़ रहे हैं! कर्मों की विचित्र गति का विचार कर धन्नाजी अधीर हो उठे।

धन्ना ने अपने दारोगा को—जो इस कार्य का व्यवस्थापक था उसी समय बुलाया और कहा—देखो, इन वृद्ध और वृद्धा को पूरी तरह सुख में रखना। भोजन-सामग्री में जो कुछ भी वह चाहें, देना। उन्हें तेल के बदले घी दिया करना। वृद्धा को सूचना कर दो कि वह मेरे घर से तक्र मंगवा लिया करे। मेरे यहाँ प्रतिदिन होती है।

दारोगा ने धन्नाकुमार की आज्ञा शिरोधार्य की। उन्हें तेल के बदले घी मिलने लगा। यह देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उस आने वाले को-जो वास्तव में धन्ना था, पर

जिसे वह पहचान नहीं सके थे, मन ही मन अनेकानेक धन्यवाद दिये।

इधर धन्नाकुमार ने अपनी पत्नी सौभाग्यमंजरी को चेता दिया कि अपने यहाँ कोई तक लेने आवे तो प्रेम से देना। खुदाई के काम पर सुभद्रा नामक एक महिला लगी है। वह आवे तो उसे दूध, दही, घृत, फल, मेवा, मिष्टान्न आदि देना और प्रीतिपूर्वक मधुर भाषण करके सन्तोष देना। उससे खूब प्रेम करना; पर मेरी यह सूचना उस पर प्रकट न होने देना।

सौभाग्यमंजरी ने स्वाभाविक कुतूहल से पूछा—वह कौन है?

धन्ना—यह रहस्य अभी नहीं, फिर बतलाऊँगा किसी दिन।

सौभाग्यमंजरी ने अधिक आग्रह नहीं किया। उसे अपने पति पर पूर्ण भरोसा था। वह पति के आदेश के अनुसार सुभद्रा को सब वस्तुएं देने लगी। एक दिन पति की आज्ञा पाकर, अवसर देखकर राजकुमारी सौभाग्यमंजरी ने सुभद्रा से पूछा—बहिन, कहाँ की रहने वाली हो? जान पड़ता है, सुख में पली हो, पर यह दुःख कैसे आ पड़ा? तुम्हारे पति कौन हैं और कहाँ हैं?

सुभद्रा—कुछ न पूछिए बहिनजी, कर्म की गति बड़ी बेढब है। मैं राजगृही की रहने वाली हूं। मेरे पिता का नाम सेठ गोभद्र था। शालिभद्र की बहिन हूं। मेरे पतिदेव का नाम भी वही है जो राजाजी का है। वे परदेश पधार गये और उनके चले जाने पर लक्ष्मी भी चल दी। विवश होकर राजगृही का

परित्याग करना पड़ा। जगह-जगह भटकने के बाद अब आपके स्वामी की शरण में हैं।

सुभद्रा यह कह रही थी कि अचानक परिवर्तित वेषभूषा में धन्नाजी वहाँ आ पहुंचे। सुभद्रा सहम गई। लज्जित होकर एक ओर हट गई। मौन हो रही।

धन्नाजी सुभद्रा का यह व्यवहार देखकर प्रसन्न हुए, पर तत्काल उन्हें उसकी स्थिति का विचार कर घोर पीड़ा हुई। उन्होंने चेहरे पर मुस्कराहट लाकर कहा—मैं तुम्हारा वृत्तान्त सुन चुका हूं। तुम मेरी शरण में हो तो मैं शरण देने को तैयार हूँ। समझ लो तुम्हारे कष्टों का अन्त आ गया है। मैं तुम्हें सुख का उपाय बतलाता हूँ। मेरी बात मान लोगी तो किसी प्रकार का कष्ट न होगा। तुम मेरे घर में रहने लगो। सुख भोगो और चैन करो। मैं लेश मात्र भी कष्ट न होने दूंगा। समझ लो कि मैं ही धन्ना हूं। वास्तव में मेरा नाम धन्ना ही है और तुम्हारे कहने से जान पड़ता है कि तुम्हारे पति का भी यही नाम है। फिर क्या हानि समझती हो। यह फूल-सा गात मिट्टी ढोने के लिए नहीं है।

धन्ना के वचन सुभद्रा के कलेजे में विष-बुझे तीर की तरह चुभ गये। वह व्याकुल हो उठी। उसे ऐसा लगा, मानों आग की ज्वालाओं में किसी ने फेंक दिया हो। मगर उसने अपने आपको सँभाल कर कहा—राजन्! आपने उच्च कुल और जाति पाई है। आपके मुख से ऐसे वचन शोभा नहीं देते। थोड़ी शर्म रखिये। मैं इससे करोड़ गुणा कष्ट सहन करके भी सन्तुष्ट रह सकती हूँ, परन्तु धर्म का परित्याग नहीं कर सकती।

यह कह कर सुभद्रा तत्काल उठ खड़ी हुई और जाने के लिए उद्यत हुई।

तब अत्यन्त प्रसन्न धन्ना बोले—चाले, इतने रोष की क्या आवश्यकता है ? मैं तुम्हारा धर्म कब नष्ट करना चाहता हूं ? मेरी तो यही इच्छा है कि तुम धर्म भी पालो और सुख भी भोगो। तुम अपने पति को पहचानती तो हो न ?

सुभद्रा—अपने प्राणधन को कौन नहीं पहचानेगी ?

धन्ना—मालूम होता है, सुभद्रा-पतिव्रता सुभद्रा-अपने पति को भी नहीं पहचानती !

सुभद्रा, धन्ना के मुख से अपना नाम सुन कर विस्मित हो गई। उसने धन्ना की बोली पर ध्यान दिया तो वह भी पहचानी हुई प्रतीत हुई। फिर भी वह अपने ऊपर भरोसा न कर सकी। अलबत्ता, वह जाती-जाती ठिठक गई और नीची निगाह करके आगे की प्रतीक्षा करने लगी।

धन्ना फिर बोले—सुभद्रे ! नहीं जानता था कि तुम इतनी जल्दी ही अपने 'प्राणधन' को भूल जाओगी। कुसुमश्री और सोमश्री को कहाँ छोड़ आई ?

सुभद्रा ने अपने प्राणधन को पहचान लिया। वह लज्जित हो गई। उसके हृदय में अनोखे भाव उठने लगे। इच्छा हुई, पति के चरणों में गिर पड़े। मगर उसने ऐसा किया नहीं।

सौभाग्यमंजरी भी सारा रहस्य समझ गई। उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। वह सुभद्रा की छाती से लग गई। हँसती हुई बोली—बहिन, आज की इस खुशी में इनाम की अधिकारिणी मैं हूं।

सुभद्रा—बहिन, मैंने अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् वस्तु तुम्हें पहले ही समर्पित कर दी है। इससे बड़ा और कोई इनाम हो सकता हो तो खुशी से माँग लो।

सौभाग्यमंजरी—तुम तो बड़ी कंजूस दीखती हो बहिन !

सुभद्रा—कैसे ?

सौभाग्य०—दी हुई वस्तु को फिर देना चाहती हो ! कुछ नया दो।

सुभद्रा—कहो क्या चाहती हो ?

सौभाग्य०—इस खुशी में मैं तुम्हें ही चाहती हूं।

सुभद्रा—मेरा भाग्य धन्य है बहिन, तुम देवी हो !

सौभाग्य०—धन्य तो वह है जिसने इनाम पाया है !

यह कह कर सौभाग्यमंजरी ने सुभद्रा को ज्येष्ठा समझ कर उसके चरणों का स्पर्श किया। सुभद्रा का हृदय ऐसा गद्गद हो उठा कि वह बोल न सकी। उसके नेत्रों में हर्ष के आँसू छलक पड़े।

अपनी पत्नियों की यह पारस्परिक प्रीति देख धन्ना के हर्ष की सीमा न थी। वह प्रसन्न और मौन भाव से यह स्वर्गीय दृश्य देखता रहा।

सौभाग्यमंजरी, सुभद्रा को उसी समय अन्दर ले गई। उसने अपने हाथों से, सुगंधित जल से स्नान कराया। अपने ही समान उत्तम और मूल्यवान वस्त्र और आभूषण पहनाए। फिर कहा—लो बहिन, मैंने छुट्टी पाई। तुम्हारी गैरमौजूदगी में मैंने तुम्हारी गृहस्थी सँभाल रक्खी थी। अब तुम जानो। मैं निश्चिंत हुई !

सौभाग्यमंजरी के इस कथन के मर्म को सुभद्रा बराबर बराबर समझ गई। असल में वह सुभद्रा के संकोच को दूर करना चाहती थी। सुभद्रा के मन में कहीं हीनता का भाव न रह जाय, इसीलिए उसने यह कहा था। सुभद्रा उसकी उदारता, कुलीनता और शिष्टता देखकर अवाक् रह गई। उसने सिफ यही कहा—बहिन, मैं तुम्हारी चीज़ हूँ—तुम्हें इनाम में मिली हूँ। जिस तरह चाहो, अपनी चीज़ को काम में ला सकती हो।

इन देवियों के हृदय की विशालता का कौन बखान कर सकता है? जिस घर में ऐसी धर्मशीला उदारहृदया रमणियाँ रहती हैं उस घर की तुलना में स्वर्ग भी तुच्छ है।

१६

जागीर-प्रदान

सुभद्रा को छाछ के लिए गये बहुत समय हो गया। वह वापिस नहीं लौटी। यह देख वृद्ध धनसार को चिन्ता होने लगी। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—और किसी दिन तो इतना विलंब नहीं होता था। आज सुभद्रा अब तक क्यों नहीं आई? तक लाने में इतनी देर लगने का क्या काम है?

वृद्धा—हाँ, बहुत देर हो गई। जाकर तलाश करना चाहिए।

धनसार उसी समय रवाना होकर धन्ना के महल में आये। सुभद्रा के विषय में पूछताछ की। मगर किसी ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। धन्ना को भी कौतुक करने की सूझी। उसने कह दिया—'वह वापिस लौटना नहीं चाहती। यहीं रहेगी।'

धनसार के पैरों तले की जमीन खिसक गई। उसका हृदय आहत हो गया। निराश धनसार ने कई महाजनों को इकट्ठा किया और अपनी बहू को वापिस लौटा देने के लिए धन्ना पर जोर देने के लिए कहा। महाजन कहने लगे—धन्नाजी बड़े

धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। उनकी ओर से कोई भी अयोग्य आचरण नहीं हो सकता। समझ में नहीं आता कि यह बात किस कारण से हुई है। सभी को बहुत आश्चर्य होन लगा।

धनसार की अत्यन्त प्रेरणा से महाजन, धन्ना के पास आए। धनसार की कही बात दोहराई। तब धन्नाजी ने हँस कर कहा-आप सब अपने-अपने घर पधारिए।

यह छोटा-सा उत्तर सुन कर सब डर गये और लौट गये। किसी को अधिक कहने का साहस न हुआ। धनसार की घबराहट बेहद बढ़ गई। उनका चेहरा विषाद से परिपूर्ण हो गया। यह देख धन्नाजी ने उनसे कहा—वृद्ध, जरा ठहरिए। आपसे बातें करनी हैं।

इसके बाद सब महाजनों के चले जाने पर धनसार जब अकेले रह गये तो धन्ना उनके पैरों में गिर पड़े। कहा—अपने बेटे को ही भूल गये पिताजी !

धनसार अब सब रहस्य समझे। उनके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। धन्ना ने कर्मगति की बात कह कर उन्हे सान्त्वना दी और आराम से बिठलाया।

उधर वृद्धा बेचैन हो रही थी। उसने देखा—सुभद्रा तो लौटी नही और उसकी खोज के लिए जो गये थे, वे भी लापता हो गये हैं। तब वह भी चिन्ता की मारी धन्ना के महल की ओर आई। धन्ना ने अपनी माता को भी प्रणाम किया और महल में ही रख लिया।

वृद्धा अपने लड़कों से कह आई थी कि सुभद्रा की तलाश करने के लिए तुम्हारे पिताजी गये हैं। मगर बहुत समय हो

इससे उनके चित्त में जैसे ज्वालाएँ उठने लगीं। उन्हें अपना भविष्य भयानक दिखाई देने लगा और अपने परिवार के संकट का विचार बेचैन बनाने लगा। लाचार होकर वह वहाँ से लौट गई। कई प्रकार की झंझटों के बाद अन्त में धन्ना उनके सामने प्रकट हुए। जब प्रकट हुए तो उनकी आँखें सावन-भादों के मेघ बन गईं। वे सिसक-सिसक कर रुदन करने लगीं। धन्ना आदि सब रोने लगे।

हृदय के गहरे उद्वेग के कम करने के लिए रुदन एक उत्तम उपाय है। इससे भारी मन हल्का हो जाता है। रुदन-जल से सन्तप्त अन्तःकरण को किंचित् शीतलता प्राप्त होती है।

कुछ क्षणों तक स्तब्धता रही। कोई कुछ बोल न सका। तत्पश्चात् धन्ना ने कहा—मेरे व्यवहार से आप सब को कष्ट पहुंचा। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

धन्नाकुमार का सारा परिवार सुखपूर्वक रहने लगा। लेकिन इस बार धन्ना के मन में कुछ नया विचार आया। उसने सोचा—यह चक्कर आखिर कब तक चलता रहेगा? मेरे भाई मेरा उत्कर्ष देख नहीं सकते। इन्हें धनसम्पत्ति देकर चल देता हूँ तो सब सफाया हो जाता है! साथ रहता हूं तो इन्हें सन्ताप होता है। इस परिस्थिति का कोई प्रतीकार होना चाहिए। पर करूँ तो क्या करूँ? इनके पुण्य का उदय नहीं है फिर भी एक बार कोई नवीन व्यवस्था करके देखना चाहिए।

इस प्रकार कई दिनों तक विचार करने के पश्चात् धन्ना ने बीच का एक रास्ता खोजा। उसने निश्चय किया—सम्मिलित रहने से फिर पहले जैसी स्थिति होगी, अतः भाइयों के अलग रहने की व्यवस्था कर देना उचित है।

यह सोचकर उसने एक दिन महाराज शतानीक को आमंत्रित किया। अपनी समस्त जागीर पिता और भाइयों को सौंप देने का अपना इरादा उनको बतलाया। राजा ने उनके इस विचार का विरोध नहीं किया। सिर्फ यही कहा-जागीर आपकी है। मैं आपको दे चुका हूं। आप जिसे चाहें दे सकते हैं; जैसा उपयोग करना चाहें, कर सकते हैं। किन्तु यह सोच लीजिए कि जिनके पास धन के अक्षय भण्डार न रह सके, उनके पास जागीर कैसे रह सकेगी?

धन्ना—यह बात मेरे विचार से बाहर नहीं है, तथापि एक बार प्रयत्न करके देखना है। यह भी एक प्रयोग सही। आगे जो होगा सो देखा जायगा।

इस प्रकार राजा की अनुमति लेकर धन्ना ने अपनी जागीर अपने पिता और भाइयों को सौंप दी। जागीर की सारी व्यवस्था उन्हें समझा दी। उनके सामने राजा से कहा-आप इन्हें मेरे ही समान जान कर अनुग्रह रखिएगा। यह मेरे पूजनीय गुरुजन हैं। जैसे मेरी सार-सँभाल रखते हैं उसी प्रकार इनकी भी रखिएगा।

राजा ने धन्ना की उदारता और महानुभावता की मन ही मन सराहना करते हुए कहा-ठीक है। सब आपकी इच्छा के अनुसार ही होगा।

अब धन्ना के पिता और भाई जागीरदार हो गये। धन्ना थोड़ी-सी सम्पत्ति लेकर अलग रहने लगे। उन्होंने सोचा - जागीर अचल सम्पत्ति है। चल-सम्पत्ति इनके पास नहीं रहती, मगर अचल सम्पत्ति सहसा कहाँ विलीन हो जायगी। सम्भव है, मेरा परिवार इस व्यवस्था से स्थायी रूप में सुखी हो जाय। मेरे अलग रहने से भाइयों को सन्ताप भी न होगा।

२०

लक्ष्मीपुर में
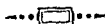
धन्नाकुमार के भाइयों ने जागीर का काम सँभाल लिया। कुछ दिनों तक वह उसकी बराबर सहायता करते रहे। जब उन्होंने देखा कि यह लोग अब जागीर का संचालन करने में समर्थ हो गये हैं और सब व्यवस्था ठीक बैठ गई है तो राजगृही जाने का विचार किया। कुसुमश्री और सोमश्री वहीं थीं और उन्हें अनिश्चित काल तक इस स्थिति में रखना उचित नहीं था। सम्राट् श्रेणिक आदि से भी मिलना आवश्यक था।

यह सोच कर धन्ना ने अपने परिवार के समक्ष अपना विचार प्रकट किया। सब ने इस विचार का समर्थन किया। सुभद्रा को अपनी माता आदि से मिलने की अभिलाषा प्रबल हो रही थी। अतएव वह भी साथ चलने को तैयार हुई। तब सौभाग्यमंजरी ने कहा—आप जा रहे हैं और बहिन सुभद्रा भी जा रही हैं, तो मैं अकेली यहाँ रहकर क्या करूंगी? मुझे भी साथ लेते चलिए।

धन्ना—अच्छी बात है। चलो, देशाटन भी हो जायगा।

इस प्रकार दोनों पत्नियों के साथ धन्नाकुमार महाराजा शतानीक से अनुमति लेकर रवाना हुए। सुखपूर्वक चलते-चलते

लक्ष्मीपुर आए। विश्राम करने के हेतु यहाँ ठहर गये। इसी समय एक नवीन घटना घटित हो गई।

लक्ष्मीपुर के राजा का नाम जितारि था। उनकी पुत्री संगीतकला में अत्यन्त निपुण थी। संगीत से उसे बड़ा प्रेम था। यों कहना चाहिए कि संगीत उसका प्राण था। संगीत की साधना ही उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य बना हुआ था। वह कहा करती थीः—

साहित्य-संगीतकला-विहीनः,
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

अर्थात्—जो मनुष्य साहित्य और संगीत कला से रहित है, वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है। उसे बिना पूंछ और बिना सींगों का पशु ही समझना चाहिए।

इस राजकुमारी के मन में एक दिन विहार की इच्छा जागृत हुई। वह अनेक दासियों और दासों आदि के साथ वन-विहार के लिए वन में गई। वीणा आदि वाद्य उसके साथ ही थे। वन में पहुँच कर उसने वीणा बजाकर ऐसा मधुर और मोहक संगीत गाया कि प्रकृति स्तब्ध रह गई और आसपास के मृगों का समूह उसके निकट आकर खड़ा हो गया।

मृगों के उस झुण्ड में एक मृगी बड़ी सुन्दर थी। राजकुमारी ने उसके गले में, अपने गले से निकाल कर, बहुमूल्य मोतियों का हार पहना दिया। राजकुमारी के साथी विस्मित रह गए। परन्तु उसने कहा—चिन्ता मत करो। इन सब को ललकार कर भगा दो।

राजदुलारी का आदेश होते ही सब हिरणों और हिरणियों को भगा दिया गया। मुक्ताहारधारिणी हरिणी भी अपने यूथ के साथ वन में छलांगें भरती चली गई।

इसके बाद राजकुमारी ने यह प्रतिज्ञा की कि–'जो संगीत-वेत्ता अपने संगीत और वीणावाद के आकर्षण से उस हरिणी को अपने पास बुलाएगा और मेरा हार मुझे वापिस सौंप देगा, उसी के चरणों में मेरा प्रणय-जीवन समर्पित होगा।'

राजकुमारी के इस संकल्प को सुन कर राजा जितारि ने घोषणा करवाई। जिस दिन यह घोषणा हुई, संयोग से उस दिन धन्ना लक्ष्मीपुर में ही थे। राजघोषणा सुन कर धन्ना का संगीतप्रेम हिलोरें मारने लगा। उसने कलाचार्य से संगीत का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया था, परन्तु उसके प्रयोग का अवसर नहीं मिल पाया था। संगीत के अपूर्व प्रभाव को वह जानता था और अपने संगीत-कौशल पर भी उसे विश्वास था। अतएव आज सहज ही अवसर आया देख धन्ना से न रहा गया। वह जितारि की सभा में गया। उसने कहा—राजन्! मैं संगीतवेत्ता हूं और राज-कुमारी का प्रण पूर्ण करने की पूर्ण आशा करता हूं। पर इस समय वीणा मेरे साथ नहीं है। उसकी व्यवस्था आप कर देंगे तो राजकुमारी का हार मैं ला दूँ।

धन्ना का रंग-ढंग राजसी था। उसके बदन पर ऐश्वर्य की स्निग्ध छाया अंकित थी। देखते ही राजा समझ गया कि यह कोई भाग्यवान् पुरुष हैं। उसने धन्ना का यथोचित सन्मान किया और कहा—राजकुमारी के प्रण की पूर्ति आप कर सकते हैं, यह मेरे लिए प्रसन्नता का विषय है। वीणा की व्यवस्था कर देने में कोई कठिनाई नहीं है।

राजा का आदेश होते ही उत्तम वीणा आ गई। धन्ना ने उसकी परीक्षा करने के लिए उसका वादन किया। राजकुमारी उस वीणानाद को सुनकर मुग्ध हो गई। सोचने लगी—जो इतनी कुशलता के साथ वीणा बजा सकता है, वह अवश्य ही मेरे प्रन की पूर्ति कर सकेगा। उसने अपने इष्टदेव से धन्ना की सफलता के लिए प्रार्थना की।

वीणा लेकर धन्नाजी वन की ओर चल पड़े। वहाँ पहुंच कर उन्होंने वीणा पर जो मनोमोहक तान छेड़ी, उसने प्राणी मात्र को मुग्ध कर लिया। क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी-सब का हृदय प्रफुल्लित हो गया। वन के हरिणों और हरिणियों के यूथ के यूथ धन्ना के समीप आकर जमा होने लगे। एक यूथ के साथ राजकुमारी का हार पहने हरिणी भी वहाँ आ पहुँची। उसे देख धन्ना को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

मनमोहिनी तान आलापता हुआ धन्ना कुमार नगर की ओर बढ़ चला। संगीत के लोभी हरिणों का वह विराट दल भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। हरिण-दल संगीत के माधुर्य में इस प्रकार मग्न हो गया था कि भयसंज्ञा उसके मन में अवकाश ही नहीं पा रही थी। धन्ना उस दल को आकर्षण करने वाले मन्त्र के समान अपने संगीत के द्वारा आत्मविस्मृत किये हुए राजा की सभा तक ले आया। राजदुहिता का हार अपनी ग्रीवा में धारण किये हरिणी भी उसी दल की एक सदस्या थी।

इस अद्भुत और अपूर्व दृश्य को देखने के लिए नगर उलट पड़ा। अन्तःपुर की रानियाँ और राजकुमारिकाएँ झरोखों में से यह असाधारण दृश्य देखने लगीं। सब के मुख से 'वाह वाह !' की ध्वनि निकलने लगी। सब लोग कुमार के इस अद्-

षम सामर्थ्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। राजकुमारी का हृदय बांसों उछलने लगा। उसके मन की मुराद पूरी हुई। उसने अपने प्रबल पुण्य का उदय समझा। वह कुमार धन्ना को पाने के लिए छटपटाने लगी।

सब के देखते-देखते कुमार ने उस भाग्यवती हिरणी के गले में से हार निकाल लिया और राजकुमारी के हाथों में सौंप दिया।

उसी समय बड़ी धूमधाम के साथ धन्नाकुमार का, राजकुमारी के साथ विवाह हो गया। राजा जितारि ने दिल खोल कर दहेज दिया और धन्ना को अपने समान बना लिया। धन्ना अलग महल में अपनी नवविवाहिता सहित तीनों पत्नियों के साथ रहने लगे। उन्होंने चिन्तामणि के प्रभाव से असाधारण ठाठ जमा लिया। लक्ष्मीपुर की जनता यह सब देखकर विस्मित रह गई। परन्तु जो महानुभाव अपने पल्ले में पुण्य बाँधकर लाये हैं, उन्हें किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। उनके लिए पग-पग पर निधान हैं। उनके सभी मनोरथ अनायास ही सफल हो जाते हैं।

राजा जितारि के मन्त्री का नाम सुबुद्धि था। उसकी कन्या नाम से भी सरस्वती थी और योग्यता से भी। उसने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। विदुषी सरस्वती अपने लिए विद्वान् पति चाहती थी। उसका चाहना अयोग्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि समान योग्यता के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सरस और मधुर नहीं बनता। समान शील और समान व्यसन वालों में ही मैत्री निभ सकती है।

सरस्वती ने विद्वान् वर की परीक्षा के लिए एक कसौटी

राजा का आदेश होते ही उत्तम वीणा आ गई। धन्ना ने उसकी परीक्षा करने के लिए उसका वादन किया। राजकुमारी उस वीणानाद को सुनकर मुग्ध हो गई। सोचने लगी—जो इतनी कुशलता के साथ वीणा बजा सकता है, वह अवश्य ही मेरे प्रण की पूर्ति कर सकेगा। उसने अपने इष्टदेव से धन्ना की सफलता के लिए प्रार्थना की।

वीणा लेकर धन्नाजी वन की ओर चल पड़े। वहाँ पहुंच कर उन्होंने वीणा पर जो मनोमोहक तान छेड़ी, उसने प्राणी मात्र को मुग्ध कर लिया। क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी-सब का हृदय प्रफुल्लित हो गया। वन के हरिण और हरिणियों के यूथ के यूथ धन्ना के समीप आकर जमा होने लगे। एक यूथ के साथ राजकुमारी का हार पहने हरिणी भी वहाँ आ पहुँची। उसे देख धन्ना को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

मनमोहिनी तान आलापता हुआ धन्ना कुमार नगर की ओर बढ़ चला। संगीत के लोभी हरिणों का वह विराट दल भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। हरिण-दल संगीत के माधुर्य में इस प्रकार मग्न हो गया था कि भयसंज्ञा उसके मन में अवकाश ही नहीं पा रही थी। धन्ना उस दल को आकर्षण करने वाले मत्र के समान अपने संगीत के द्वारा आत्मविस्मृत किये हुए राजा की सभा तक ले आया। राजदुहिता का हार अपनी ग्रीवा में धारण किये हरिणी भी उसी दल की एक सदस्या थी।

इस अद्भुत और अपूर्व दृश्य को देखने के लिए नगर उलट पड़ा। अन्तःपुर की रानियाँ और राजकुमारिकाएँ झरोखों में से यह असाधारण दृश्य देखने लगीं। सब के मुख से 'वाह वाह !' की ध्वनि निकलने लगी। सब लोग कुमार के इस अनु-

घम सामर्थ्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। राजकुमारी का हृदय बांसों उछलने लगा। उसके मन की मुराद पूरी हुई। उसने अपने प्रबल पुण्य का उदय समझा। वह कुमार धन्ना को पाने के लिए छटपटाने लगी।

सब के देखते-देखते कुमार ने उस भाग्यवती हिरणी के गले में से हार निकाल लिया और राजकुमारी के हाथों में सौंप दिया।

उसी समय बड़ी धूमधाम के साथ धन्नाकुमार का, राजकुमारी के साथ विवाह हो गया। राजा जितारि ने दिल खोल कर दहेज दिया और धन्ना को अपने समान बना लिया। धन्ना अलग महल में अपनी नवविवाहिता सहित तीनों पत्नियों के साथ रहने लगे। उन्होंने चिन्तामणि के प्रभाव से असाधारण ठाठ जमा लिया। लक्ष्मीपुर की जनता यह सब देखकर विस्मित रह गई। परन्तु जो महानुभाव अपने पल्ले में पुण्य बाँधकर लाये हैं, उन्हें किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। उनके लिए पग-पग पर निधान हैं। उनके सभी मनोरथ अनायास ही सफल हो जाते हैं।

राजा जितारि के मन्त्री का नाम सुबुद्धि था। उसकी कन्या नाम से भी सरस्वती थी और योग्यता से भी। उसने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। विदुषी सरस्वती अपने लिए विद्वान् पति चाहती थी। उसका चाहना अयोग्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि समान योग्यता के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सरस और मधुर नहीं बनता। समान शील और समान व्यसन वालों में ही मैत्री निभ सकती है।

सरस्वती ने विद्वान् वर की परीक्षा के लिए एक कसौटी

निर्धारित की। उसने निस्संकोच भाव से अपने पिता को भी इस बात की सूचना कर दी। उसके पिता बुद्धिमान् थे और चाहते थे कि मेरी लड़की का जीवन सुखमय बने। अतएव उन्होंने उसकी इच्छा का आदर किया।

सरस्वती की प्रतिज्ञा यह थी कि जो विद्वान् मेरे श्लोक का अर्थ बता देगा और जिसके श्लोक का अर्थ मैं नहीं बता पाऊँगी, वही मेरा जीवन-सहचर होगा।

सरस्वती की यह प्रतिज्ञा धन्ना ने सुनी तो उसे अपनी विद्वत्ता को प्रकट करने का कुतूहल हुआ। वह राजमन्त्री के पास गया और उसने सरस्वती की प्रतिज्ञा पूर्ण करने की इच्छा प्रदर्शित की। मन्त्री ने सोचा—धन्ना जैसे राज जामाता ऐश्वर्यशाली, पुण्यात्मा, सुन्दर और श्रेष्ठ पुरुष यदि सरस्वती को ग्रहण कर ले तो उसका भाग्य खुल जाय। यह सोचकर मन्त्री ने सरस्वती को अपने पास बुलवाया। सरस्वती सादी वेषभूषा में आई। धन्ना को देखकर वह प्रभावित हुई। मन्त्री के कहने पर वह समुचित आसन पर बैठ गई।

तत्पश्चात् मन्त्री ने कुमार का परिचय दिया। कुमार को भी बतलाया कि यही मेरी विदुषी कन्या सरस्वती है।

इसके बाद मन्त्री ने सरस्वती को अपना श्लोक बतलाने का आदेश दिया। सरस्वती किंचित् सकुचाई और बोली—

गंगायां दीयते दानम्, एकचित्तेन भाविता।
दातारो नरकं यान्ति, प्रतिग्राही न जीवति॥

इस श्लोक का साधारण अर्थ यह है—गङ्गा के किनारे जो

दान दिया जाता है, उसके दाता नरक में जाते हैं और दान ग्रहण करने वाला मर जाता है।

श्लोक सुनकर धन्ना ने तत्काल श्लोक निर्मित करके उत्तर दिया—

मीनो ग्राही गलो देयं, कन्ये ! दाताऽत्र धीवर ।
फलं यज्जायते यत्र तयोस्तद्विदितं जिनैः ॥

अर्थात्—गंगा में मछली दान लेने वाली है और धीवर दान-दाता हैं। वे मछली को गल खिला कर पकड़ लेते हैं। परिणाम यह होता है कि धीवर हिंसा के फलस्वरूप नरक में जाते हैं और उनका दान ग्रहण करने वाली मछली मृत्यु को प्राप्त होती है।

इस गूढ़ अर्थ को सुनकर सरस्वती ने कहा—यथार्थ है।

इसके पश्चात् एक श्लोक धन्ना ने उपस्थित किया, जिसका अर्थ सरस्वती को बतलाना था। धन्ना ने कहा—

न लगेन्नाग नारिङ्गे, निम्बे तुम्बे पुनर्लगेत् ।
काकेत्युक्ते लगेन्नैव, मामेत्युक्ते पुनर्लगेत् ॥

इस श्लोक का साधारणतया प्रतिभासित होने वाला अर्थ इस प्रकार है—नारंगी और नाग में नहीं लगता तथा तुम्ब और निम्ब में लगता है। "काका" कहो तो लगता नहीं है और "मामा" कहो तो लगता है।

सरस्वती ने श्लोक का अर्थ समझने का खूब प्रयत्न किया, परंतु वह अन्ततः न समझ सकी। उसे कहना पड़ा—मैं इसका आशय नहीं समझ सकी। आप कहिए।

धन्ना—यह एक प्रकार की प्रहेलिका (पहेली) है। होठ के विषय में कही गई है। 'नाग' और 'नारंगी' शब्द का उच्चारण किया जाय तो होठ आपस में नहीं लगते, किन्तु 'निम्ब' या 'तुम्ब' कहने पर लगते हैं। 'काका' कहो तो नहीं लगते, किन्तु 'मामा' कहने पर लगते हैं। तात्पर्य यह है कि पवर्ग और उ अक्षर होठों से बोले जाते हैं, अतएव उनका उच्चारण करते समय दोनों होठ आपस में लगते हैं।

सरस्वती की प्रतिज्ञा पूरी हुई। यह देखकर सुबुद्धि मंत्री को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मंत्री के समस्त कुटुम्बीजन भी आनन्दित हुए। इसी नगर में धन्ना एक बार संगीतनिपुणता का अपना जौहर दिखला चुके थे, इस बार उन्होंने अपनी काव्य कुशलता का श्रेष्ठ परिचय दिया।

सुबुद्धि मंत्री ने यथासमय अपनी कन्या धन्नाजी को ब्याह दी। धन्ना अब चारों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

धन्ना कुमार कभी-कभी राजसभा में भी चले जाते थे और जब कोई पेचीदा मामला सामने आता तो उसे बड़ी चतुराई से निपटाते थे। इस विषय में उनका चातुर्य अद्वितीय था। क्या राजा और क्या मंत्री, सभी उनकी बुद्धिमत्ता और सूक्ष्म विवेचन शक्ति का लोहा मानते थे। गंभीर से गंभीर मामले का आनन-फानन निर्णय कर देना उनके बायें हाथ का काम था। इस विषय में उन्हें कमाल हासिल था।

एक बार एक विचित्र मामला पेश हुआ। राम, काम, धाम और श्याम नामक चार सहोदर भाई थे। वे अपने बँटवारे

का फैसला कराने के लिए राजसभा में उपस्थित हुए। उनमें सब से बड़े भाई राम ने कहा—अन्नदाता, दुर्भाग्य से हमारे पिताजी का स्वर्गवास हो गया है। जब वह मत्युशय्या पर पड़े थे, तब उन्होंने हम चारों भाइयों से कहा—'देखो, इस कमरे के चारों कोनों में चार चरू हैं। तुम एक-एक ले लेना।'

पिताजी की मृत्यु के पश्चात् हमने चरु निकाले। चरु बराबर चार ही निकले, पर एक में मिट्टी, दूसरे में हड्डियाँ, तीसरे में वही खाते और चौथे में दीनार। इन चारों में इतनी विषमता है कि हमारा ठीक तरह बँटवारा नहीं होता। दीनारों का चरु तो सभी चाहते हैं, पर वही, मिट्टी और हड्डी का चरु दीनारों के बदले में कौन ले? यही हमारा विवाद है इसी का निर्णय कराने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हैं।

राजा और मन्त्री दोनों सोच-विचार में पड़ गये। वास्तव में यह बँटवारा समान नहीं हो सकता। अगर प्रत्येक चरु की चीजों के चार-चार भाग करवाए जाते हैं तो मृतात्मा के आदेश का उल्लंघन होता है। उसने एक-एक चरु बाँट लेने की अन्तिम इच्छा दरसाई थी।

राजा ने धन्नाजी की ओर देखा और कहा—कुंवरजी, कहिए इसका निर्णय किस प्रकार होना चाहिए।

धन्ना—महाराज, इन लोगों का पिता बहुत बुद्धिमान् मनुष्य था। उसने इन सब को समान धन दिया है। उसे समझने में यह लोग भूल कर रहे हैं। मिट्टी के चरु वाला मकानों और खेतों का स्वामी होगा, हड्डी के चरुवाला सब पशुओं का स्वामी होगा, बही के चरु वाला ब्याज उघाई आदि

का स्वामी होगा। और चौथा नकदी का स्वामी होगा। यही इस बँटवारे का अर्थ है। इनमें जो जिसमें प्रवीण है, वह उसी का चरु ले ले और जो कमाने में कुशल नहीं है, वह नकदी का चरु ले ले। ऐसा करने से वह अपने पिता की इच्छा पूर्ण कर सकेंगे।

इसके बाद धन्ना ने प्रश्न किया—अच्छा, दीनार कितनी हैं?

राम—आठ करोड़।

धन्ना—तो हिसाब जोड़कर देख लो, मकानों और जमीन का मूल्य भी यही होगा, पशुओं की कीमत भी इतनी ही बैठेगी और उधाई आदि व्यापार भी इतने का ही होगा।

चारों भाइयों ने हिसाब लगाया तो धन्नाकुमार की बात सच निकली। चारों भाई अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। उनका झगड़ा मिट गया।

चारों भाइयों ने विचार करके अपनी बहिन लक्ष्मीवती धन्ना कुमार को समर्पित करने का संकल्प किया। उनके अत्याग्रह को न टालते हुए धन्ना ने स्वीकृति दे दी। यथासमय लक्ष्मीवती के साथ भी धन्ना का विवाह हो गया।

एक बार फिर ऐसा ही विकट उलझन-भरा मामला पेश हुआ। इसी नगर में धनकर्मा नामक एक सेठ रहता था। वह बड़ा ही कंजूस था। उसके पास साठ करोड़ का धन था और वह खेती करता था। 'चाम (चमड़ी) जाय तो जाय, पर दाम न जाय' यही उसके जीवन का मुद्रालेख था। वह भूल-चूक कर भी कभी दान नहीं देता था और दूसरे को देते देख दारुण दुःख का अनुभव करता था।

एक विद्यावान् याचक प्रतिदिन उससे याचना किया करता था। कृपण सेठ ने उसे कई चक्कर लगवाये। वास्तव में सेठ उसे देना तो चाहता नहीं था, मगर रूखा उत्तर न देकर टालमटूल किया करता था। आज नहीं कल, सुबह नहीं शाम को दूँगा, इस प्रकार कह-कह कर उसे झांसा देता रहता था। व्यापारियों की, जो कंजूस होते हैं, नीति यही है कि:—

यस्य किञ्चिन्न दातव्यम्।
तस्य देयं किमुत्तरम् ?
अद्य सायं, पुनः प्रातः,
सायं प्रातः पुनः पुनः ॥

अर्थात्—जिसे कुछ भी देना नहीं है, उसे क्या उत्तर देना चाहिए ? उससे यही कहना चाहिए—आज सायंकाल दूँगा। सायंकाल माँगने आवे तो कह दे कि सुबह दूंगा। सुबह आवे तो कहे कि शाम को दूँगा। यों सुबह शाम कहते-कहते उसे बहलाना चाहिए। ऐसा करने से वह आप ही आप परेशान होकर बैठ जायगा और पिण्ड छोड़ देगा।

धनकर्मा सेठ ने यही नीति अख्तियार की। वह याचक चक्कर काटते-काटते थक गया, पर सेठ ने एक कौड़ी भी नहीं परखाई। आखिर एक दिन याचक ने विद्या-बल से सेठ का रूप बनाया और जब सेठ दूसरे ग्राम गया तो वह सेठ के घर में घुस गया। उसने घर में घुसते ही धर्म और पुण्य के कामों में धन खर्च करना आरंभ कर दिया। खूब दान दिया। लोगों को देख कर आश्चर्य हुआ। जिसने जिन्दगी में फूटी कौड़ी देना भी नहीं सीखा था, वह इतना बड़ा दाता कैसे बन गया! इसमें इतनी उदारता कहाँ से आ गई! इसे कैसे सद्‌बुद्धि सूझ गई! यही सोच-सोचकर लोग आश्चर्य करने लगे।

जब यह समाचार धनकर्मा के पास पहुँचे तो वह भागा-भागा घर आया। उसने अपने ही प्रतिरूप दूसरे को घर का मालिक बना देखकर आश्चर्य किया। उसने कहा—अरे ठग! घर का मालिक मैं हूं; तू यहाँ कहाँ से आ गया?

विद्यावान् याचक बोला—रहने दे, यह चालाकी यहाँ नहीं चलेगी। मैं स्वयं अपने घर का स्वामी हूँ।

इस प्रकार दोनों में झगड़ा होने लगा। भीड़ जमा हो गई। दोनों का रूप और स्वर आदि समान था। असली और नकली की पहचान नहीं हो सकती थी। अतएव लोग आश्चर्य में पड़ गए। उधर दोनों आपस में झगड़ने लगे। जब झगड़े का अन्त न आया और दोनों में से किसी ने भी अपना अधिकार न त्यागा तो अन्त में राज-दरबार में चलकर न्याय करा लेने का निश्चय हुआ। दोनों न्यायालय में पहुँचे।

इस अभियोग का न्याय करना कठिन जान राजा जितारि ने कुमार धन्ना को बुलाया। धन्ना को समझते देर न लगी कि दोनों में से एक कोई विद्या के बल से सेठ बना है और एक असली सेठ है। धन्ना ने राजा से कहा—इस मामले का फैसला करने के लिए एक नलीदार लोटा चाहिए। वह मँगवा लीजिए।

लोगों की समझ में न आया कि नलीदार लोटे का क्या होगा। परन्तु धन्ना की सूझ-बूझ निराली है, यह बात समझते थे। अतएव सब लोग बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। नलीदार लोटा आ गया।

धन्ना बोले—तुम दोनों में से जो इस लोटे की नली में से निकल जायगा, वही सच्चा सेठ समझा जायगा।

विद्यावान् याचक ने तत्काल विद्याबल से लोटे में प्रवेश किया और नली में से बाहर निकल आया।

धन्ना समझ गये कि यही नकली सेठ है। उसे पकड़ कर उन्होंने कहा—अरे भाई, क्यों बेचारे सेठ को ठगता है ?

विद्यावान् बोला—अन्नदाता, इस मक्खीचूस ने मुझे बहुत परेशान किया है। इसी से पूछ लीजिए कि मुझे कितने चक्कर खिलाये हैं। जब मैं चक्कर काटते-काटते थक गया तो मैंने यह उपाय किया ! मैंने अपने लिए कुछ भी नहीं लिया है। कंजूस का धन मैं लेना भी नहीं चाहता। मेरा अपराध क्षमा हो। इसे शिक्षा देने के लिए ही मैंने यह किया है।

सब लोग कुमार की बुद्धिमत्ता के लिए धन्य-धन्य करने लगे ! वास्तव में इस मामले में कुमार ने जो कुशलता प्रदर्शित की, वह बहुत सराहनीय थी। सेठ का पिण्ड छूट गया।

यद्यपि उस भिखारी ने धनकर्मा सेठ का बहुत-सा धन खर्च कर दिया था और इस कारण सेठ को दुःख भी था; मगर अपने घर और धन पर अपना कब्जा कायम हुआ देख उसे बहुत प्रसन्नता भी थी। घर जाकर सेठ सोचने लगा—आज कुंवर साहब अपनी अनुपम बुद्धिमत्ता से इस मामले को न सुलझा देते तो मेरी क्या दशा होती ? मैं दर-दर का भिखारी बन जाता और वह भिखारी सेठ बन जाता ! करोड़ों की सम्पत्ति हाथ से निकल जाती तो मेरी जान भी निकल जाती ! धन भी जाता, तन भी जाता ! पर धन्य है कुमार धन्ना, जिन्होंने मेरा महान् उपकार किया। उन्हीं की बदौलत मेरी इज्जत रह गई।

विचार करते-करते सेठ को ध्यान आया—मुझे अपनी कन्या गुणमालिनी का कहीं न कहीं सम्बन्ध करना है। अगर धन्नाकुमार सरीखे सुयोग्य पात्र उसे स्वीकार कर लें तो मैं निहाल हो जाऊँ। उनके उपकार का किंचित् प्रतिशोध भी हो जाय और कन्या ठिकाने भी लग जाय।

यह विचार कर सेठ धन्ना के पास पहुंचा। धन्ना ने कहा—सेठजी, आपकी कृपा के लिए आभारी हूं; परन्तु यह भार मेरे ऊपर न रखिए। कोई अन्य वर खोज कर अपनी कन्या का विवाह कर दीजिए।

सेठ धनकर्मा बोले—मैं मन ही मन संकल्प कर चुका हूँ। अपनी कन्या दूसरे को नहीं दे सकता। आप जैसे समर्थ पुरुष के लिए यह भार नहीं बनेगी। मुझ पर कृपा कीजिए।

धन्नाकुमार को धनकर्मा का आग्रह स्वीकार करना पड़ा। गुणमालिनी का धन्ना के साथ धूमधाम से विवाह हो गया। सेठ ने दिल खोल कर दहेज दिया। पूर्वोक्त घटना से धनकर्मा की कृपणता में कुछ कमी आ गई थी। वह समझ गया था कि यह धन सदैव किसी के पास नहीं रह सकता। आया है सो जायगा और जरूर जायगा।

इस प्रकार समझ आ जाने के कारण उसमें उदारता आ गई थी। इसी से उसने दहेज भी बहुत दिया और दान-पुण्य भी करना आरम्भ कर दिया।

अब तक धन्ना के आठ विवाह हो चुके थे। उनकी दो पत्नियाँ राजगृह में थीं और छह उनके साथ थीं। इस विवाह के बाद उन्होंने विचार किया—धन्नापुर से मैं राजगृही के लिए

रवाना हुआ था, परन्तु बीच में ही अटक रहा। यहाँ रहते काफी दिन बीत गये हैं। अब राजगृही जाना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने राजा जितारि से अनुमति ली। अन्य संबंधियों को भी अपने विचार की सूचना दी। तत्पश्चात् छहों पत्नियों के साथ वह रवाना हो गये।

लक्ष्मीपुर में कुमार धन्ना राजा की भाँति रहे थे। जब वहाँ से रवाना हुए तो राजसी ऐश्वर्य के साथ चले। चतुरंगिणी सेना उनके साथ थी। विशाल पदातिसमूह, हाथी, घोड़े और रथ उनके वैभव की सूचना दे रहे थे। छहों पत्नियाँ भी साथ चल रही थीं।

मार्ग में आनन्दपूर्वक चलते हुए और जगह-जगह विश्राम लेते हुए कुमार एक दिन राजगृही की सीमा में जा पहुंचे। तब कुमार ने अपने साथ के अत्यन्त वेगवान् कुछ घुड़सवारों को आगे भेज दिया और कह दिया—'जाकर महाराजा श्रेणिक को मेरे आगमन की सूचना शीघ्र पहुचाओ।'

घुड़सवार वायुवेग से राजगृही की ओर दौड़ गये। कुमार धीरे-धीरे चल रहे थे। अपने चिरकाल से बिछुड़े जामाता के आगमन की सूचना पाकर श्रेणिक को अपार प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसी समय कुमार की आगवानी के लिए जाने की तैयारी की। लवाजमा तैयार करने के लिए सम्बद्ध व्यक्तियों को आदेश देकर वे अन्तःपुर में गये। वहाँ यह सुसंवाद सुनाकर स्वयं जाने की तैयारी करने लगे।

तदनन्तर सम्राट् अपने सामन्तों और सेनापतियों के साथ, चार प्रकार की सेना लेकर कुमार के स्वागत के लिए

रवाना हुए। राजगृही के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित साहूकार भी साथ हो गए। नगरी के बाहर जाकर सबने हार्दिक स्वागत किया। कुमार आकर अपने पहले वाले महल में ठहर गए। कुसुमश्री और सोमश्री भी आ गई। आठों बहिनें परस्पर प्रगाढ़ प्रीतिपूर्वक मिलीं। आठों पत्नियाँ ऐसी जान पड़ती थी, मानों अष्ट सिद्धियाँ हों। धन्ना सहित नवों पुण्यशाली प्राणी नवनिधान के समान थे। यह नव पुण्यात्मा जीव इस पृथ्वी पर उसी प्रकार शोभायमान थे, जैसे आकाश में नवग्रह शोभायमान होते हैं।

कुमार धन्ना राजगृही में मनुष्यभव के सर्वोत्कृष्ट सुखों का भोग करते हुए काल व्यतीत करने लगे। जो व्यक्ति समस्त कलाओं में अद्भुत कौशल धारण करता हो, तीव्रतर और जीता-जागता पुण्य लेकर अवतरित हुआ हो और सभी सद्गुणों का निधान हो, वह सुख का भागी क्यों न हो ? श्रेणिक सरीखे प्रख्यात सम्राट और अभयकुमार जैसे महाबुद्धिशाली मंत्री भी उसका असाधारण सम्मान करें, इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? इधर धन्नाकुमार के यह सब ठाठ थे और उधर उनके भाइयों आदि की क्या स्थिति हुई, जरा उधर भी ध्यान दीजिए।

२१

जागीर-नदारद

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, धन्नाकुमार अपने भाइयों को अपनी पाँच सौ ग्रामों की जागीर देकर आये थे। जागीर देने में उनका विचार यह था कि सोना चांदी आदि तो शीघ्र ही चला जाता है, मगर स्थावर सम्पत्ति कहाँ भाग कर जा सकेगी ? इस सम्पत्ति से यह लोग सुख शान्तिपूर्वक अपना निर्वाह कर सकेंगे। परन्तु—

हरिणापि हरेणापि ब्रह्मणा त्रिदशैरपि।
ललाटलिखिता रेखा न शक्या परिमार्जितुम्।

अर्थात्—जिसके ललाट पर जो रेखा लिखी जा चुकी है, उसे विष्णु, महादेव, ब्रह्मा और देवता भी नहीं मिटा सकते। औरों की तो बात ही क्या है ?

इस कथन के अनुसार धन्ना के भाई जो पाप-कर्म करके आये थे, उसका फल भोगे बिना कैसे बच सकते थे ? धन्ना द्वारा उदारतापूर्वक दी हुई जागीर क्या उनके भाग्य को पलट सकती थी ? नहीं।

जब धन्ना उनके साथ रहे तो वे उनसे ईर्ष्या द्वेष करते रहे, उनके प्रभाव को देखकर जलते रहे, सन्ताप और दुःख अनुभव करते रहे। जब धन्ना उनके पास न रहे तो वे आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगे। आपस के कलह में वृद्धि हुई तो वृद्ध धनसार को बड़ी चिन्ता हुई। इन लड़कों की बदौलत अनेक बार वे बड़ी से बड़ी मुसीबतें झेल चुके थे। कुछ तो इन मुसीबतों के कारण और कुछ वृद्धावस्था के कारण उनकी काया जर्जरित हो गई थी। अब किसी भारी मुसीबत को सहन करने की उनमें शक्ति नहीं रह गई थी। इस कारण और अपने कपूत बेटों को संकट से बचाने के लिए धनसार ने उन्हें बहुत समझाया। उन्होंने कहा—बुद्धिमान् मनुष्य एक बार ठोकर खाकर सावधान हो जाता है। वह अपनी भूल को भी उपयोगी बना लेता है उससे लाभ उठाता है। फिर तुम लोग तो अनेक बार ठोकरें खा चुके हो। फिर भी आश्चर्य है कि तुम कुछ भी शिक्षा ग्रहण न कर सके। मैंने प्रतिष्ठानपुर में तुम्हें कहा था कि बन्धु-विरोध का परिणाम कभी मंगलमय नहीं होता। उस समय तुमने मेरी बात नहीं मानी। उसका जो कुपरिणाम भुगतना पड़ा, उसे तुम स्वयं जानते हो। फिर भी उसी अमंगल के मार्ग पर क्यों चलने की तैयारी कर रहे हो? धन्यवाद दो धन्ना को, जो अब की बार स्थायी रूप से फल देने वाला वृक्ष लगा कर तुम्हें सौंप गया है। कुछ मत करो, पर शान्ति से बैठे तो रहो। आपस में कलह और क्लेश करोगे तो फिर उसी प्रकार की दुर्गति भोगोगे, जैसी पहले भोग चुके हो। जरा विचार तो करो कि हम लोग किस स्थिति पर जा पहुँचे। कितनी व्यथाएँ, कितनी पीड़ाएँ, कितनी लांछनाएँ भोग चुके हैं। अब जरा शान्ति मिली है सो तुम अपने ही प्रयत्नों से उसे फिर नष्ट करना चाहते हो। भला चाहो तो मेरा कहना मान जाओ। परस्पर प्रेमपूर्वक रहो। धन्ना ने यहाँ जो

प्रतिष्ठा उपार्जित की है, उसे नष्ट मत करो। इसमें तुम्हारा ही हित है।

इस प्रकार बहुत-बहुत समझाने पर भी धनदत्त आदि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। असल में वह भी बेचारे क्या करते?

'बुद्धिः कर्मानुसारिणी।'

अर्थात्—जैसे कर्मों का उदय होता है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है।

कौन चाहता है कि मेरा सुख नष्ट हो जाय? कौन दुःखों को आमंत्रित करना चाहता है? फिर भी लोग दुखी होते हैं। इसे दैव का दुर्विपाक ही कहना चाहिए। इसी दुर्विपाक के कारण उन लोगों को उलटी ही सूझती थी। वे अपने दुर्भाग्य के खिलौना बने हुए थे।

धनसार का उपदेश हवा में उड़ गया। तीनों भाइयों ने एक जागीर के तीन टुकड़े करके बँटवारा कर लिया। आपसी प्रतिस्पर्द्धा और ईर्षा ने जोर पकड़ा। उनकी शान्ति धूल में मिलने लगी।

जहाँ मानवीय दुर्भावनाएँ प्रबल हो उठती हैं, वहाँ प्रकृति भी रुठ जाती है। इस कथन की सत्यता सिद्ध करने के लिए प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। जैसे-जैसे मनुष्यों का पाप बढ़ता जाता है, पृथ्वी का उर्वरापन कम होता जाता है। यहाँ भी यही बात हुई। धनदत्त आदि का हृदय ईर्षाद्वेष से परिपूर्ण हुआ तो प्रकृति रुठ गई। उस वर्ष वर्षा नहीं हुई। सूखा पड़ जाने के कारण वहाँ की जनता इधर-उधर भाग…

के गाँव सूने हो गए। सबने अपने-अपने पेट को पालने के लिए दूसरे गाँवों की शरण ली। सेना भी बर्बाद हो गई। अन्न पानी के अभाव में सेना को सुरक्षित रखना असम्भव हो गया। अपने भाइयों के हित के लिए की हुई धन्ना की योजना विफल हो गई।

तीनों भाइयों ने अपनी-अपनी जागीरों से आकर धनसार के सामने रोना रोया। दयावान् पिता ने प्राकृतिक प्रकोप जान कर पुत्रों को समुचित पूंजी दी और व्यापार करने को कहा। तीनों भाई व्यापार करने चले। उन्होंने बैलों पर धान्य लादा और बेचने के लिए निकल पड़े। परन्तु दुर्भाग्य से व्यापार में नफा नहीं हुआ। माल की जो कीमत आई, वह सब खर्च में गँवा बैठे। पास में कुछ भी नहीं रह गया। घूमते-फिरते आखिर एक दिन वे फिर राजगृही नगरी में आ पहुंचे।

२२

अन्त भला सो भला

मगध की राजधानी राजगृही की छटा अनूठी थी। वहाँ तीसों दिन खूब चहलपहल रहती थी। दूर-दूर के व्यापारियों के लिए राजगृही एक विशेष आकर्षण-केन्द्र थी। सैकड़ों प्रतिदिन आते और जाते थे। वहाँ के मुख्य बाजार में तो विशेष रूप से चहल-पहल रहा करती थी।

परन्तु आज की चहलपहल में कुछ नूतनता का आभास मिल रहा था। सिपाही अकड़ कर खड़े थे और बड़ी सावधानी से अपना काम कर रहे थे। राजपथ विशेष रूप से स्वच्छ दिखाई देता था। पानी का छिड़काव किया गया था। आज दुकानें भी अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित और सजी हुई थीं।

बाहर के व्यापारियों ने यह नूतनता देख स्थानीयजनों से इसका कारण पूछा। उन्हें पता चला-आज राजजामाता महामहिम धन्ना कुमार की सवारी इधर से प्रयाण करेगी।

कुछ ही समय बीता था कि सवारी आ गई। धन्नाकुमार सुन्दर घोड़ों के रथ में स्थित थे। उनके आगे घुड़सवार

चल रहे थे। राजकर्मचारी आगे से आगे सतर्क होकर भीड़ को हटा रहे थे। धन्ना कुमार बाजार के सौन्दर्य का निरीक्षण करते जा रहे थे। जिस दुकान के सामने होकर वह निकलते, व्यापारी खड़े होकर उनका अभिवादन करते थे। कुमार अत्यन्त शालीनता और शिष्टता के साथ उनके अभिवादन को अङ्गीकार करते और अपने सौजन्य से उन्हें प्रभावित करते थे। वह अपने पीछे अपनी प्रशंसापूर्ण चर्चा छोड़ जाते थे। कुमार के दिव्य प्रभाव को देखकर लोग विस्मित हो जाते। अनुपम सौन्दर्य, अनुपम गुण और अनूठा व्यक्तित्व! यही सब उनकी प्रशंसा का विषय था।

कुमार ने एक जगह देखा, तीन व्यक्ति राजपथ पर खड़े हैं। मालूम होता था, वे निराश्रय हैं। उन्हें ठहरने को कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है। वे अजनबी से प्रतीत होते थे। राजकर्मचारियों ने उन्हें एक ओर हट जाने का आदेश दिया। वह धीरे-धीरे हट ही रहे थे कि उन्हें धक्का देकर हटा दिया गया। करुणाशील धन्ना को कर्मचारियों का यह व्यवहार अप्रिय लगा। उन्होंने उन हटाये हुए व्यक्तियों की ओर गौर से देखा। पहचानते देर न लगी। उनका कलेजा बैठ गया। वह सोचने लगे—आह, कर्मों की गति कैसी अद्भुत है। मैं कहीं असफल नहीं हुआ, परन्तु अपने परिवार को सुखी बनाने में सफल न हो सका। इस विषय में मेरी कोई चेष्टा कारगर नहीं हुई!

मैं अपने भाइयों के लिए इस बार स्थायी व्यवस्था कर आया था, परन्तु देखता हूँ, वह भी धूल में मिल गई। यह भिखारियों के समान धक्के खाते फिर रहे हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि राजकर्मचारियों ने जिन्हें

धक्के मार कर हटा दिया था, वे और कोई नहीं धन्नाकुमार के भाई ही थे।

अपने भाइयों की दशा देखकर धन्ना के कोमल दिल को गहरी चोट पहुँची। कोई साधारण मनुष्य होता तो वह उपेक्षा कर जाता। सोच लेता—मैंने अनेकों वार करोड़ों की सम्पत्ति देकर भाइयों के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन किया, किन्तु उनके भाग्य में भिखारी होना ही लिखा है तो मैं क्या करूँ? यही नहीं, मैं उन्हें अपने पास रखता हूँ तो वे ईर्षा करते हैं, द्वेष करते हैं और मुझे मार डालने का विचार करते हैं। मैं कहाँ तक और कितनी वार इनकी सहायता करूँ? मैं इनके पापोदय को कैसे पलट्टूँ। पर नहीं, महान् पुरुषों के विचार भी महान् होते है। बड़े आदमियों का हृदय बड़ा होता है। धन्ना ने ऐसा विचार नहीं किया। उनका हृदय बन्धुप्रेम से विह्वल हो उठा। धन्ना विचार करने लगे—मुझे दूसरों के कर्त्तव्य के विषय में विचार करने के बदले अपने ही कर्त्तव्य पर विचार करना चाहिए। दूसरे क्या करते हैं, इसका विचार करने से मुझे क्या? यदि मैं दूसरों की देखादेखी अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करूँ अथवा कर्त्तव्य से विपरीत कार्य करूँ तो मेरा अपना व्यक्तित्व ही कहाँ रहा? अतएव दूसरे के अवगुणों को न देख कर मुझे अपना ही कर्त्तव्य बजाना चाहिए। भाइयों के प्रति भाई का जो कर्त्तव्य है, वह मुझे पालना चाहिए। मैं उनका अनुकरण करूँगा तो उनमें और मुझमें अन्तर ही क्या रह जायगा? मेरे ज्येष्ठ भ्राताओं की फजीहत हो रही है, वे दुखी और दरिद्र हैं, कष्ट पा रहे हैं, धक्के खाते फिरते हैं और मैं शाही जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उनकी सहायता करूँ।

इस विचार से प्रेरित होकर कुमार धन्ना ने एक सिपाही

को संकेत किया कि इन्हें मेरे निवास स्थान पर आने को कह दे।

यथा समय तीनों भाई धन्ना के आवास पर पहुँचे धन्ना ने पहले की ही तरह उन्हें प्रेम से अपनाया। उनका स्वागत किया। जागीर कैसे नष्ट हो गई, आदि समाचार पूछे। उन्हें अपने ही समान वस्त्राभूषण पहनाए और अपने समान बना लिया।

इस बार धन्ना ने उन्हें अपने पास ही रहने का आग्रह किया। कहा—आप लोग प्रेम के साथ मेरे ही पास रहिए। मेरा वैभव आपका ही है। भाई-भाई में भेद क्या? मन में कोई दूसरा विचार मत लाइए। सुखपूर्वक यहाँ रहेंगे तो मुझे आपका बल रहेगा और शान्ति से जीवन व्यतीत होगा। परन्तु धनदत्त आदि ने कहा—बन्धु, निस्सन्देह तुम्हारा स्नेह सराहनीय है। तुम आदर्श पुरुष हो और सौभाग्यशाली हो। अपने अभागे भाइयों के लिए तुमने जो किया, शायद ही कोई करे। कितनी बार तुम हमें सुखी बनाने के लिए सर्वस्व त्याग कर चुके हो! अपने भाइयों के कल्याण के लिए जो उत्सर्ग तुमने किया है, वह चिरकाल तक कोटि-कोटि जनता की प्रशंसा का पात्र बना रहेगा। परन्तु छोटे भाई के आश्रित होकर रहने में हमें लज्जा का अनुभव होता है, ग्लानि होती है। आत्मग्लानि के कारण हम चैन से रह नहीं सकते। अतएव हमें अपने पर छोड़ दो। पूर्वभव में जो अशुभ आचरण किया है, यह सब उसी का परिपाक है। उसे तुम क्या, इन्द्र भी नहीं बदल सकता।

इस कथन में सच्चाई थी। पर इससे धन्ना को मार्मिक आघात लगा। वह सोचने लगा—किस प्रकार इस स्थिति का सामना किया जाय?

आखिर धन्ना ने निश्चय किया कि इन्हें पर्याप्त सम्पत्ति देकर इनकी इच्छा पर छोड़ देना ही उचित है। चाहें तो यहाँ रहें या अन्यत्र चले जाएँ। मैं इनकी इच्छा का विरोध नहीं करूँगा।

धन्ना कुमार ने तीनों भाइयों को चौदह-चौदह कोटि धन दिया। जब वह धन्ना के पास रहने को तैयार न हुए तो उन्हें विदा कर दिया।

तीनों भाई राजगृही नगरी से बाहर कुछ ही दूर पहुँचे थे कि एक देव ने उन्हें रोक दिया। उसने कहा—यह सम्पत्ति धन्ना कुमार के पुण्य का फल है। इसे तुम साथ नहीं ले जा सकते।

तीनों भाइयों ने यह विचित्र दृश्य देखा तो वे पशोपेश में पड़ गए। क्या करना चाहिए, यह प्रश्न उनके सामने खड़ा हो गया आखिर उन्होंने विचार किया—धन्ना के साथ रहने में ही अपना कल्याण है। उससे अलग होकर रहने में कुशल नहीं है। हम लोग इतनी-इतनी व्यथाएँ भोगकर भी अपने अभिमान को नहीं त्याग सके, यही एक दुःखों का कारण है। अब हमें अहंकार का त्याग कर देना चाहिए और पिछली घटनाओं को भूलकर एकदम नये सिरे से अपना जीवन आरम्भ करना चाहिए। ऐसा करके ही हम सुखी रह सकते हैं।

वास्तव में जब किसी का शुभ या अशुभ होने वाला होता है तो छोटी से छोटी घटना भी उसे उसी प्रकार की प्रेरणा देती है। अब तक धनदत्त आदि का तीव्र अशुभोदय था, अतः उनकी मति और गति विपरीत ही हो रही थी; परन्तु जब अशुभोदय की तीव्रता समाप्त हो गई तो उन्हें सुमति उपजी।

तीनों भाइयों ने तुच्छ अभिमान का बोझ उतार कर फैंक दिया। उनका चित्त निराकुल हो गया। वे एक प्रकार का हल्कापन अनुभव करने लगे।

तीनों धन्ना कुमार के पास लौट आए। उन्होंने धन्ना से अपने अपराधों के लिए क्षमायाचना की। धन्ना का हृदय गद्‌गद हो गया। उसने अपने भाइयों की मनोवृत्ति में स्पष्ट ही परिवर्तन देखा। इससे धन्ना को कितना हर्ष हुआ, कहना कठिन है। वास्तव में धन्ना अपने परिवार को लेकर बहुत चिन्तित रहता था। जब-तब उसे यही विचार आया करता कि मेरे रहते मेरा कुटुम्ब सुखी नहीं है! मेरे माता-पिता और भाई-भौजाई को शान्ति नहीं है तो मेरा ऐश्वर्य किस काम का? इसका मूल्य ही क्या है? और इसी विचार से प्रेरित होकर उसने अनेक बार उन्हें सुखी बनाने का उद्योग किया था। परन्तु वह सफल नहीं हो पाता था। इस बार अपने भाइयों का विचार बदला हुआ देखकर उसे संतोष हुआ। विश्वास हो गया कि अब इनके दिल बदल गये हैं तो दिन भी बदल जाएँगे।

तीनों भाइयों के चेहरे भी आज प्रफुल्ल थे। उन्होंने धन्ना से कहा—भैया, तू ने हमारे लिए जो किया है, वह कभी किसी ने नहीं किया होगा। और हमने तेरे लिए जो किया, वह भी शायद ही किसी ने किया हो। इस प्रकार हम दोनों ही अपनी-अपनी जगह अद्वितीय हैं। पर तू एक किनारे है और हम लोग दूसरे किनारे खड़े हैं। किन्तु मनुष्य क्या करे? वह अपने अदृष्ट का खिलौना है। तथापि आज हमारे मन का मैल धुल गया है। दुर्भाग्य की तमोमयी रजनी का अन्त आ गया जान पड़ता है। हम आज अपनी करतूतों के लिए लज्जित हैं और धन्ना सरीखे असाधारण स्नेहमूर्ति, उदारता के पुंज एवं भाग्यवान्

भाई को पाने के कारण अपने आपको भी भाग्यशाली समझते हैं। हमारे दोषों को भूल जाना। यही समझना कि हम लोग आज से अपना नया जीवन आरंभ कर रहे हैं।

धन्ना ने कहा—मैं आज ही पूरा भाग्यवान् बना। अब तक मेरा सौभाग्य पंगु था। मेरी भी त्रुटि थी कि मैं आपका विश्वास सम्पादन न कर सका। खैर, उन सब बातों को भूलना ही उचित है।

धन्नाकुमार के तीनों भाई प्रेम के साथ रहने लगे। अब तक उनका जो विरोध था, वह वास्तव में धन्ना और उनके भाइयों के रूप में दो प्रकार की परस्पर विरोधी प्रकृतियों का विरोध था। उन प्रकृतियों का नाम कुछ भी रख लिया जाय, चाहे पुण्यप्रकृति और पापप्रकृति कह लीजिए, चाहे दैवी और आसुरी प्रकृति कह लीजिए या सत्वगुण और तमोगुण कह लीजिए; पर यही दो प्रकृतियाँ आपस में संघर्ष कर रही थीं। धन्ना और उनके भाई तो निमित्त मात्र थे।

इस दृष्टिकोण से इस संघर्ष को देखा जाय तो इसमें से एक अपूर्व तत्त्व का बोध प्राप्त होगा। दैवी और आसुरी प्रकृति के इस लम्बे संघर्ष में दैवी प्रकृति को विजय प्राप्त हुई। दैवी-प्रकृति त्याग, उदारता, करुणा, दया, सहानुभूति, क्षमा और प्रेम के उच्च आदर्शों का प्रतिनिधित्व कर रही थी और आसुरी प्रकृति ईर्षा, द्वेष, स्वार्थलोलुपता, मत्सरता, संकीर्णता और हिंसा का प्रतिनिधित्व कर रही थी। पहली प्रकृति ने धन्ना-कुमार को अपना निमित्त बनाया था और दूसरी प्रकृति ने उनके भाइयों को।

दैवी प्रकृति आत्मा का स्वभाव है और आसुरी प्रकृति विभाव है। विभाव और स्वभाव का संघर्ष अनादिकाल से चला आ रहा है और अन्त में स्वभाव की ही विजय होती है। स्वभाव परमार्थ भूत तत्त्व है और विभाव औपाधिक सत्ता है। यही कारण है कि स्वभाव, सदैव विभाव पर विजय प्राप्त करता है।

धन्ना कुमार ने इस संघर्ष को इसी दृष्टिकोण से देखा। उन्होंने विष को अमृत से जीता, आग को जल से शान्त किया इस संघर्ष के फलस्वरूप उन्हें अपनी दैवी प्रकृति की अजेय शक्ति पर और भी अधिक-अटल विश्वास हो गया। वह सोचने लगे कि जब छोटे-छोटे संघर्षों में यह प्रकृति विजयिनी होती है तो बड़े संघर्षों में भी इसी के द्वारा विजय प्राप्त हो सकती है।

उधर अपनी प्रकृति की असफलता के कारण धनदत्त आदि ने अपनी प्रकृति का परित्याग कर दिया। वे उसी मार्ग पर आ गये, जिस पर आने से ही मनुष्य शान्ति और सन्तोष पा सकता है। अतएव अब संघर्ष का कोई कारण नहीं रहा। चारों भाई हिल-मिल कर रहने लगे। थोड़े ही दिनों में कौशाम्बी से शेष परिवार भी बुला लिया गया। धन्ना ने उन सबका अतिशय प्रेम के साथ स्वागत किया।

धन्ना कुमार की भौजाइयों को ज्ञात नहीं था कि उनके पतियों के मनोभाव में अब परिवर्तन हो गया है। वह समझ रही थीं कि जैसे कई बार पहले देवर के पास हम गई थीं, उसी प्रकार इस बार भी आई हैं। अतएव उन्हें राजगृही आने में, प्रारम्भ में, कोई प्रसन्नता नहीं थी।

जब वह राजगृही में धन्नाजी के निवास स्थान पर पहुंची तो धन्ना ने उन्हें प्रणाम किया। अपने उदारशील और स्नेही देवर को सामने देखकर उनसे रहा नहीं गया। बहुत दिनों से व्यथित हृदय उमड़ पड़ा। वह फूट-फूट कर रोने लगी। उनका रोना देख धन्ना का हृदय भी गद्गद होगया। थोड़ी देर रोलेने के पश्चात् बड़ी भौजाई ने कहा—लालाजी, ऊँचे चढ़ा कर नीचे गिरी देखने में ही क्या आपको प्रसन्नता होती है? हम तो अपनी फूटी तकदीर में दुःख और दरिद्रता लिखाकर आई हैं। बीच-बीच में आप हमें इस वैभवपूर्ण स्थिति में क्यों ले आते हैं? क्या इसीलिए कि हमें बाद में अधिक सन्ताप हो? आदि से अन्त तक एक-सी स्थिति में रहने वाले संतोष अनुभव कर सकते हैं; परन्तु यह स्थिति तो असह्य है। बालक को खिलौना मिले तो वह संतोष मान सकता है, परंतु खिलौना छिन जाने पर उसे बहुत दुःख होता है। क्या आप हमें अधिक दुखी बनाने के लिए ही यह खिलवाड़ कर रहे हैं? इससे तो जिंदगी भर की मजदूरी ही भली थी।

धन्ना—भौजाई के साथ देवर खिलवाड़ न करे तो गृहस्थी नीरस हो जाय!

भौजाई—तुम्हारी खिलवाड़ से हमारी क्या गति होती है, जानते हो?

धन्ना—मगर अब की खिलवाड़ मजेदार रहेगी भाभी।

भौजाई—सो कैसे?

धन्ना—पक्का प्रबन्ध कर दिया है।

भौजाई—प्रबन्ध तो एक बार पहले भी पक्का कर चुके हो।

धन्ना – नहीं, पहले जागीर का इंतजाम किया था, अब की बार जिगर का किया है। अब चिन्ता न करो।

भौजाई—तुम्हारी बात ही कुछ समझ में नहीं आती!

धन्ना—अभी तक भौजाइयों पर ही हाथ फेर रक्खा था, अब भाइयों पर भी हाथ फेर दिया है।

भौजाई – क्या तुम्हारे भाइयों की बुद्धि ठिकाने आ गई ?

धन्ना – बस, सब ठीकठाक है। चिंता न करो। मेरे पुण्य में जो कमी थी, वह पूरी हो गई है। मैंने उनका विश्वास सम्पादन कर लिया है। अब आपका आशीर्वाद और चाहिए।

भौजाई – जुग-जुग जीओ लाला, तुम्हारे जैसे देवर शायद ही संसार की किसी भौजाई को मिले होंगे।

धन्ना – बेशक, भगवान् करें किसी को ऐसा देवर न मिले जो अपनी भौजाइयों को अनेकों बार दुःखों में डालने वाला हो!

भौजाई—नहीं, दुःखों से उबारने वाला!

धन्ना – देखो भाभी, मेरी प्रशंसा करोगी तो.... अच्छा, जाओ, भीतर देखो कितनी नई चिड़ियाँ फँसा लाया हूँ!

तीनों भौजाइयाँ हँसती हुई भीतर गईं। धन्ना की नवविवाहिता पत्नियाँ इनसे अपरिचित थीं। सुभद्रा आदि ने सब का परिचय कराया। सब प्रेम से गले लग कर मिलीं।

धन्नाकुमार ने माता-पिता आदि की बड़ी सुन्दर व्यवस्था कर दी। सब परिवार प्रसन्न भाव से रहने लगा।

इस सम्मिलन में अपूर्व आनंद था, अनूठा माधुर्य था। ऐसा जान पड़ता था, मानों नये सिरे से इस परिवार की सृष्टि की गई हो। धन्नाजी के गृह में अमृत बरस रहा था। सब लोग बड़े प्रेम से रहने लगे।

सबसे अधिक संतोष और आनंद अगर किसी को था तो वृद्ध सेठ धनसार और धन्नाजी की माता को। बुढ़ापे में उन्हें बड़े-बड़े कष्ट झेलने पड़े थे। वे सुख और दुःख के हिंडोले पर झूलते रहे थे। उन्हें अपने लिए तो कष्ट था ही, अपने तीनों पुत्रों की पुण्यहीनता का विचार और उनकी बार-बार होने वाली दुर्दशा उन्हें अतिशय पीड़ित करती रहती थी। संतान कैसी ही क्यों न हो, आखिर माता-पिता का कलेजा ही है। परंतु अब अपने लड़कों को सन्मति आई देख कर उनकी चिंता दूर हुई। वे आनंद में अपनी जिन्दगी के शेष दिन व्यतीत करने लगे। उन्होंने सोचा—

अन्त भला सो भला।

२३

पूर्वभव

जिस काल का यह वृत्तान्त लिखा जा रहा है, वह भारतवर्ष में धर्म का महान् युग था। विशेषतः मगध जनपद उस समय धर्म का बड़ा भारी केन्द्र था। बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि महात्मा मगध मही को पावन कर रहे थे। चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर का वह युग था। तब देश धर्मप्रधान न होता तो क्या होता? सैंकड़ों भिक्षुगण विचरण कर रहे थे और अपने दिव्य चारित्र से तथा धर्ममय वाणी से जनता का आध्यात्मिक जीवन ऊंचा उठाने का प्रयास कर रहे थे। उनकी लोकोत्तर आभा से महीमण्डल मण्डित था। मानवता ने इस भूतल को स्वर्ग से भी अधिक महिमामय बना दिया था। इसी कारण तो धर्म की अपूर्व ज्योति पाने के लिए स्वर्ग के देवगण भी यहाँ आया करते थे।

जरा कल्पना कीजिए, कितना सुहावना रहा होगा वह दृश्य जब एक-एक आचार्य के नेतृत्व में पांच-पांच सौ शिष्य एक साथ ग्रामानुग्राम विचरण करते थे! उनके दर्शन मात्र से भव्य जीवों के मन में धर्म का कैसा ज्वार आता होगा!

ऐसा ही पावन प्रसंग राजगृही में आया। अपने युग के सुप्रसिद्ध मुनीन्द्र 'धर्मघोष' धर्म का अलख जगाते हुए इस नगरी

में पधारे और नगरी के बहिर्भाग में एक उद्यान में ठहर गये। राजगृही में आचार्य महाराज के पदार्पण की सूचना हुई। उसी समय सम्राट् श्रेणिक अपने राजसी ठाठ के साथ गुरुदेव को वन्दना करने के लिए, अन्तःपुर के साथ रवाना हुए। नगर-निवासी नर-नारी भी इस अवसर पर कब पीछे रह सकते थे? बूढ़े, बालक, युवा सभी मुनिराज की उपासना करने चले। इधर कुमार धन्ना भी अपने समग्र परिवार को साथ लेकर उसी उद्यान के रास्ते रवाना हुए।

देखते-देखते विशाल श्रावक-समूह एकत्र हो गया। उधर श्राविकाओं की संख्या भी कम नहीं, कुछ अधिक ही थी। फिर भी आश्चर्य जनक शान्ति थी। जरा भी हल्ला-गुल्ला नहीं, तनिक भी कोलाहल नहीं। नगर के अशान्त और कोलाहलमय वातावरण से बचकर शान्तिमय प्रदेश में अवस्थित होकर साधना करने में सुविधा होती है, यही सोच कर मुनिगण बाहर उतरते थे, अगर वहीं कोलाहल होने लगता तो फिर वे साधना कहाँ करते? सब लोग शान्तिपूर्वक यथास्थान बैठ गये। श्रेणिक महाराज ने धर्मोपदेश फरमाने की अभ्यर्थना की।

मुनिराज धर्मघोष ने अपनी गंभीर और मधुर वाणी की इस प्रकार वर्षा की—

भव्य जीवो! आप सब आत्मा के वास्तविक कल्याण की कामना से प्रेरित होकर यहाँ आये हैं। आप यह आशा करते हैं कि मैं आपको आत्महित का सन्मार्ग प्रदर्शित करूँ। परन्तु मैं स्वयं अल्पज्ञ हूँ, छद्मस्थ हूँ। अतएव अपनी बुद्धि से आपको कल्याण का पथ प्रदर्शित नहीं करूँगा। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जीवन्मुक्त, परम-वीतराग तीर्थंकर देव ने कल्याण का जो मार्ग

अन्नाणी किं काही ?
किं वा नाही छेयपावगं ?

बेचारा अज्ञानी प्राणी क्या कर सकता है ? वह पुण्य-पाप को कैसे समझ सकता है ?

वास्तव में ज्ञान ही मनुष्य का वास्तविक नेत्र है। उसके अभाव में अंधकार ही अंधकार समझना चाहिए।

ज्ञान कहिए या श्रुतधर्म कहिए, जब उसका विकास होता है, तभी चारित्रधर्म पनप सकता है। चारित्र का बहुत विस्तृत वर्णन किया गया है। उस सब का थोड़े समय में कथन करना शक्य नहीं है। मगर चारित्र का सार अहिंसा है। अहिंसा में ही समस्त चारित्र का अन्तर्भाव हो जाता है। यों कहना चाहिए कि अहिंसा भगवती की आराधना के लिए ही चारित्र है। शास्त्र में भी कहा है—

'सव्वजगजीवरक्खणदयट्टयाए पावयणं भगवया सुकहियं।'

अर्थात्—तीर्थंकर देव ने समस्त जगत् के जीवों की रक्षा रूप दया के लिए ही प्रवचन का उपदेश दिया है।

इस प्रकार अहिंसा ही प्रधान चारित्रधर्म है। अहिंसा के विशाल सागर में ही सब कर्त्तव्य कर्मों का समावेश हो जाता है। अतएव मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ अहिंसा की आराधना करने का ही प्रयत्न करना चाहिए। मन से किसी का अनिष्ट चिन्तन न करना, वचन से अनिष्ट शब्द प्रयोग न करना, पीड़ाजनक वाणी न बोलना, असत्य का व्यवहार न करना और काया से किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। जीवन

में अहिंसावृत्ति का ज्यों-ज्यों विकास होता है, त्यों-त्यों जीवन का अभ्युत्थान होता है।

भद्र जीवो ! मनुष्य भव की सफलता इस धर्म की साधना में ही निहित है। इसी से जीवन धन्य बनता है। धर्म के प्रभाव से ही सब संकटों का अन्त होता है। यह जान कर आप धर्म रूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया में आएँगे तो आपका जीवन सार्थक होगा; आप इह-परलोक में सुखी होंगे और मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे।

इस आशय का मुनिराज का धर्मोपदेश हुआ। उसे सुन कर श्रतागण अत्यन्त हर्षित हुए। तत्पश्चात् धनसार सेठ ने खड़े होकर और मुनिराज को वन्दना करके प्रश्न किया—भगवान् ! धन्नाकुमार अतिशय पुण्यशाली है और उसके तीनों भाई सर्वथा पुण्यहीन हैं। इसका कारण क्या है ? इन्होंने पूर्व-भव में क्या कार्य करके कैसे कर्म बाँधे हैं ? भगवान् आप दिव्य ज्ञान के धारक हैं। अनुग्रह करके मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए। इससे हम लोगों को भी सन्मार्ग का बोध होगा।

धनसार का प्रश्न सुनकर मुनिराज ने विचार किया। उन्हें प्रतीत हुआ कि धन्नाकुमार के पूर्व वृतान्त को प्रकाशित करने से श्रोताओं को सचमुच ही लाभ हो सकता है। मुनिराज अवधिज्ञान के धारक थे। उन्होंने धन्ना का समस्त वृत्तान्त जान कर कहा—

बन्धुओ ! प्रतिष्ठानपुर की घटना है। उस नगर में एक निर्धन वृद्धा रहती थी। उसके परिवार में एक छोटे बालक के अतिरिक्त और कोई नहीं था। वृद्धा के पास संचित पूंजी के

नाम पर एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी। नित्य मजदूरी करना और जैसे-तैसे अपना और अपने बेटे का पेट पालना पड़ता था। फिर भी बुढ़िया नीयत की सच्ची थी। ईमानदार थी। जिसका जो काम करती, बड़ी प्रामाणिकता के साथ करती थी। अनीति का विचार पल भर लिए भी उसके मन में नहीं आता था। यद्यपि वह जरा-जीर्ण हो गई थी, उसके हाथ-पैर शिथिल पड़ गये थे, फिर भी वह नित्य मजदूरी करती थी। उसकी समस्त आशाएँ उसके बच्चे पर अवलम्बित थीं। उसी के सहारे वह जी रही थी। वह सोचती थी कि मेरा यह कष्ट स्थायी नहीं है। थोड़े दिनों में बच्चा समर्थ हो जायगा तो सब कष्ट दूर हो जाएँगे।

वृद्धा यद्यपि दरिद्र थी, फिर भी उसमें कुलीनता के संस्कार प्रबल थे। गौरव के साथ रहती थी कभी किसी वस्तु के लिए किसी के सामने हाथ पसारना उसने सीखा नहीं था। वह आवश्यक वस्तुओं के अभाव को सहन कर सकती थी-उनके बिना काम चला लेती थी। अपने मन को भी मना लेती थी और बच्चे को भी समझा लेती थी, परन्तु, किसी से याचना करने का विचार भी नहीं करती थी। यही नहीं, बिना याचना किये, कोई अनुग्रह के भाव से, उसे कुछ देता तो वह विनयपूर्वक उसे अस्वीकार कर देती थी। वह कहती थी-मैं अपनी कमाई पर ही सन्तुष्ट रहना चाहती हूं। आपसे आज कुछ ले लूँगी तो मेरी आदत बिगड़ जाएगी और दूसरों से लेने की भी इच्छा होने लगेगी। अतः आपकी उदारता और कृपा के लिए मैं आभारी हूँ, परन्तु इसे स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। मुझे क्षमा कर दें।

वृद्धा के इस व्यवहार से और उसकी प्रामाणिकता से

सभी उस पर प्रसन्न थे। पास पड़ौस की महिलाएँ उसे बहुत चाहती थीं और उसका आदर भी करती थीं। जब कभी उनके यहाँ काम होता तो पहले इसी को बुलाती थीं। अतएव उसका गुजर मजे में हो रहा था।

वृद्धा के उच्च संस्कारों का बालक पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अपनी माता की देखादेखी वह भी अच्छा वर्त्ताव करना सीख गया था। किसी की वस्तु को लालच-भरी आँखों से न देखना उसका स्वभाव हो गया था। वह अपनी हालत में मस्त था।

बालक अपने पड़ोसी बालकों के साथ खेला करता था। तथापि उसकी माता उस पर बारीक नजर रखती थी। अपनी सन्तान को किस प्रकार के बालकों के साथ खेलने देना चाहिए और कैसे बालकों के साथ नहीं इस बात का वह बड़ा ध्यान रखती थी। वह स्वयं उसकी शिक्षिका थी। अपने बालक के जीवन को उत्तम बनाने की उसकी बड़ी अभिलाषा थी।

एक दिन कोई बड़ा-सा त्यौहार आया। बालक अपने साथियों के साथ खेल रहा था। बातचीत के सिलसिले में त्यौहार की चर्चा चल पड़ी। सब ने अपने-अपने घर का हाल बतलाया। कइयों ने कहा—आज हमारे घर खीर बनी है।

जीभ को वश में कर लेना साधारण कार्य नहीं है। बड़े-बड़े त्यागी पुरुष भी जिह्वा को पूरी तरह वशीभूत करने में असमर्थ हो जाते हैं संसार में आज जो सैंकड़ों और हजारों रोगी दृष्टिगोचर होते हैं, उनके रोग का मूल खोजा जाय तो प्रतीत होगा कि अधिकांश जिह्वालोलुपता का ही रोग के रूप में प्रसाद पा

रहे हैं। अगर मनुष्य अपनी जिह्वा पर पूरी तरह अंकुश रख सके तो बहुत से रोगों से अनायास ही बच सकता है। परन्तु अमुक वस्तु मेरी प्रकृति के प्रतिकूल है, ऐसा जानते हुए भी लोग अपनी जीभ पर काबू नहीं रख पाते और रोगों के पात्र बनते हैं। जीभ का आकर्षण इतना प्रबल है।

जब बड़ों-बड़ों का यह हाल है तो बालकों के विषय में क्या कहा जा सकता है ? कैसे आशा की जा सकती है कि कोई बालक उत्तम से उत्तम संस्कारों में पला होने पर भी, अपनी जीभ को पूरी तरह वश में कर सकता है ?

वृद्धा के बालक ने खीर की बात सुनी तो उसे भी खीर खाने की इच्छा हो आई। खेलना छोड़ कर वह घर आया और माँ से बोला—माँ, आज त्यौहार का दिन है ?

वृद्धा—हाँ, बेटा !

बालक—कौनसा त्यौहार ? खीर का ?

वृद्धा के हृदय को गहरा आघात लगा। वह बालक के प्रश्न के मर्म को समझ गई। अपनी असमर्थता का विचार करके उसका हृदय गद्‌गद् हो उठा। उसने स्नेहपूर्ण और विवशतापूर्ण नेत्रों से अपने प्राणप्रिय बालक को देखकर कहा—बेटा, खीर का नहीं दाल रोटी का त्यौहार है !

बालक—दाल-रोटी का भी कोई त्यौहार होता है ? वह तो रोज ही खाते हैं। आज तो खीर का त्यौहार है।

वृद्धा—नहीं लाल, अपने घर खीर का त्यौहार नहीं आता।

बालक—क्यों ?

वृद्धा—इसलिए कि अपने यहाँ गाय-भैंस नहीं है। दूध कहाँ से आवे। खीर के लिए शक्कर और चावल चाहिए। वह भी तो नहीं हैं।

बालक—नहीं, आज तो खीर ही खाऊँगा।

वृद्धा की आँखें सजल हो गई। उसने कहा - तुम बड़े हो जाओ तब गाय खरीद लेंगे और फिर खीर खाना।

बालक—मैं तो आज ही खाऊँगा।

बालक हठ पकड़ गया। मचल गया और रोने लगा। उसके रुदन को वृद्धा सहन न कर सकी। अपने बीते दिनों की स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में जाग उठीं। किसी दिन वह संपन्न थी। दूध, दही की उसके घर में कमी नहीं थी। आज पाव भर दूध भी उसे मयस्सर नहीं है। रोते बच्चे का दिल बहलाने के लिए कोई साधन नहीं है !

वृद्धा धीरज और हिम्मत वाली महिला थी, प्रत्येक परिस्थिति का डट कर मुकाबिला करना उसका स्वभाव था। वह जानती थी कि हिम्मत हारने से संकट चौगुना बढ़ जाता है और हिम्मत रखने से चौथाई रह जाता है। यह जानती हुई भी आज वह अपनी हिम्मत कायम न रख सकी। उसका हृदय विह्वल हो उठा। वह भी अपने बालक के साथ रोने लगी।

बालक का रोना सुनकर उसकी एक पड़ौसिन आई। उसने बालक के साथ वृद्धा की आँखों में भी आँसू देखे तो विस्मित हो गई। उसने पूछा—आज क्यों इतनी उदास हो रही हो ?

वृद्धा ने कहा—कुछ नहीं बहिन, यों ही रुलाई आ गई

पड़ौसिन—रुलाई यों नहीं आया करती। फिर यह बच्चा भी तो रो रहा है !

वृद्धा के कुछ कहने से पहले ही पड़ौसिन ने बालक से पूछा-तुम क्यों रो रहे हो बच्चे ?

भोले बालक ने कह दिया-आज त्योहार के दिन खीर खाऊँगा।

तब वृद्धा ने कहा-बहिन, आज यह कहीं से खीर की बात सुन आया है और खाने की हठ पकड़ गया है इसे कैसे समझाऊँ कि जहाँ दाल-रोटी के सांसे पड़ते हों, वहाँ खीर कहाँ से आ सकती है ?

पड़ौसिन—तो खीर ऐसा कौन-सा अमृत है कि उसकी व्यवस्था नहीं हो सकती ?

वृद्धा—मेरे लिए तो यही बात है।

पड़ौसिन—अच्छा, मैं अभी सब सामान जुटाए देती हूँ।

वृद्धा—नहीं बहिन, आपकी इतनी सहानुभूति ही बहुत है। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं चाहिए।

पड़ौसिन—तुम्हें नहीं चाहिए सो तो मैं जानती हूँ; पर बालक को चाहिए। बालक क्या मेरा नहीं है ?

यह बातचीत हो रही थी कि कुछ पड़ौसिनें और भी आ गईं। उन्होंने भी वृद्धा पर दबाव डाला। कहा-इतना गैर हमें

क्यों समझती हो माँजी ! यह तो पड़ौसिनों में होता ही रहता है।

तत्पश्चात् पड़ौसिनों ने मिलकर यह निश्चय कर लिया कि हममें से कोई एक नहीं, वरन् सभी आठों जनी खीर की सामग्री लाएँ और माँजी को भेंट करें। तदनुसार ही किया गया। चुटकियों में दूध, चावल, शक्कर, मेवा आदि आ गया। वृद्धा अपनी स्नेहमयी पड़ौसिनों की इस भेंट को अस्वीकार करने का साहस न कर सकी। ऐसा करना उसने अशिष्टता समझा। वृद्धा ने सिर्फ यही कहा-आप लोगों की इस कृपा का ऋण कब चुका सकूँगी, कह नहीं सकती।

एक पड़ौसिन बोली—बेटे के विवाह में हम सब को निमंत्रित कर लेना और भरपेट मिठाई खिला देना, सब ऋण ब्याज समेत चुक जायगा।

वृद्धा के होठों पर मुस्किराहट चमक उठी।

पड़ौसिनें अपने-अपने घर चली गई। वृद्धा ने चूल्हा जलाया और बड़े प्रेम से खीर पकाई, खीर पक गई तो उसने बालक को बुलाकर थाली में परोस दी। खीर ठंडी हो रही थी कि वृद्धा ने कहा—बेटे, ठंडी हो जाय तो खाना। मैं अभी जल लेकर आती हूँ।

इतना कह कर वृद्धा ने मटकी उठाई। वह जल भरने चली गई। बालक खीर ठण्डी करने लगा।

अपने छोटे-से घर के सामने बैठे बालक ने गली की ओर देखा तो उसे एक मुनिराज दृष्टिगोचर हुए। मुनिराज को

देखकर उसे कितनी प्रसन्नता हुई, कहना कठिन है। उसने खीर पर थाली ढँकी और घर के बाहर आया। मुनिराज को वंदना करके बोला—'पधारिए, कृपा कीजिए। गरीब के घर को पावन बनाइए।'

यह मुनिराज कोई साधारण मुनि नहीं थे। मासखमण की तपस्या करते थे। एक मास में सिर्फ एक बार आहार ग्रहण करते थे। उन्होंने तपस्या की भट्टी में अपनी काया को झोंक दिया था। वे उन्हीं महापुरुषों में से एक थे जो शरीर में रहते हुए भी शरीर के अध्यास से सर्वथा मुक्त होते हैं। जो मानव भव को अपनी आत्मा के श्रेयस् के लिए ही समझते हैं और जिनकी साधना एक मात्र आत्मशुद्धि के लिए ही होती है।

मुनिराज गम्भीर और धीमी गति से चलते आ रहे थे। उनकी चाल में न तीव्रता थी, न स्खलना थी। दृष्टि गन्तव्य मार्ग में ही गड़ी हुई थी। उसमें किसी भी प्रकार का कुतूहल नहीं था। शरीर कृश था, मगर चेहरा अपूर्व दीप्ति से चमक रहा था। तपस्तेज से मंडित उनके आनन पर गहरा सौम्य भाव झलक रहा था।

मुनिराज के दर्शन करके बालक को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसने उन्हें आहार ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। बालक की ऊँची भावना देख कर मुनिराज ने उसे निराश करना योग्य नहीं समझा। वे उसके पीछे-पीछे उसके घर में प्रविष्ट हुए। अपनी प्रार्थना मुनिराज के द्वारा स्वीकृत हुई जान कर बालक अतीव प्रसन्न था। हर्ष से उसका हृदय उछल रहा था।

घर में खीर के सिवाय देने को और कुछ था नहीं। बालक की इच्छा भी ऐसी नहीं हुई कि खीर न दूं कुछ और दे दूं।

उसकी भावना ऐसी तुच्छ नहीं थी। तुच्छ भावना होती तो वह उन्हें आग्रह करके लाता ही क्यों ? वास्तव में उसका आशय बहुत उदार था। उसका भक्तिभाव उच्च श्रेणी का था।

बालक को भलीभाँति विदित था कि आज कितनी कठिनाई से यह खीर बन पाई है। इस खीर के लिए उसे रोना पड़ा था। उसकी माता को भी रोना पड़ा था। माता को दूसरों का ऐहसान अपने ऊपर लेना पड़ा था। बड़ी झंझटों के बाद खीर बन पाई थी। बालक के लिए वह महामूल्यवान् वस्तु थी। मगर सुन्दर संस्कारों में पले बालक ने इन सब बातों का तनिक भी विचार नहीं किया। खीर खाने की अपेक्षा देने में ही उसे अधिक आनन्द का अनुभव होने लगा।

एक बालक के लिए इस प्रलोभन का इस प्रकार परित्याग कर देना कोई साधारण बात नहीं थी। मगर जिसका भवितव्य अच्छा होता है, उसकी बुद्धि भी उदार और शुद्ध हो जाती है। मन में दान की उमंग होना महान् सौभाग्य का द्योतक है। बालक सौभाग्यशाली था और इसी कारण उसके हृदय के किसी भी कोने में अनुदारता या कृपणता की भावना उत्पन्न नहीं हुई। उसके परिणाम ऊँचे ही रहे।

मुनिराज बालक के घर में पधारे। बालक ने थाली से ढँकी खीर ली और उन्हें दान कर दी। उसने नहीं सोचा कि थोड़ी दूँ और थोड़ी बचा लूँ। सम्पूर्ण उदार भाव से उसने पात्र की समस्त खीर मुनिराज को वहरा दी। उस समय उसे अपूर्व आनन्द की प्रतीति हुई। बालक अपने आपको धन्य समझने लगा। उसने अपने जीवन को कृतार्थ समझा। अपनी जिन्दगी में पहली बार ही उसे इतना हर्ष अनुभव हुआ था।

दान की महिमा अपरम्पार है। दान से उत्पन्न होने वाले महान् फल की कल्पना करना भी कठिन है। दानं दारिद्र्यनाशाय अर्थात्-दान से दरिद्रता का नाश होता है। लोग सोचते हैं-मैं दरिद्र हूँ, क्या दान दे सकता हूं! जब बहुत होगा तो दूंगा। मगर उन्हें सोचना चाहिए कि बहुत होगा किस प्रकार? बहुत पाने का उपाय तो यही है कि जो थोड़ा तेरे पास है, दान कर दे। इस थोड़े को भी यदि उदार भाव से दान कर देगा तो बहुत मिलेगा। एक आम की गुठली बोई जाती है तो वह वृक्ष का रूप धारण करके सहस्रों फल प्रदान करती है। बार-बार उससे फलों की प्राप्ति होती है। गुठली वाला अगर सोचने लगे कि मेरे पास तो एक ही गुठली है, इसे पृथ्वी में गाड़ दूंगा तो क्या बच रहेगा? अतएव इसी को सँभाल रखना उचित है। तो क्या वह भविष्य में मधुर आम्रफल प्राप्त कर सकेगा? कदापि नहीं। इसी प्रकार जिनके पास अल्प सामग्री है, उन्हें उसे सँभालकर नहीं रखना चाहिए, वरन् उदारतापूर्वक दान करना चाहिए। यही बहुत पाने का सरल उपाय है। दान के प्रभाव से ही सुख की प्रभूत सामग्री प्राप्त होती है।

दान अनेक प्रकार के हैं। दाता, देय और पात्र की भिन्नता से दान के असंख्य भेद हो सकते हैं। उन सब दानों का अपने-अपने स्थान पर महत्त्व है। सभी प्रकार के दान उत्तम हैं, परन्तु अन्नदान का महत्त्व कुछ निराला ही है। किसी ने ठीक कहा है:—

तुरगशतसहस्रं गो-गजानां च लक्षं,
कनकरजतपात्रं मेदिनी सागरान्ता।

सुरयुवतिसमानं कोटिकन्या प्रदानं,
न हि भवति समान चान्नदानात्प्रधानम ।।

अर्थात्—लाखों घोड़ों का, लाखों गायों और हाथियों का, सोने-चाँदी के पात्रों का समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का और अप्सराओं के समान करोड़ों कन्याओं का दान अन्नदान के समान नहीं हो सकता।

अन्नदान की प्रशंसा में यहाँ जो कुछ कहा गया है, वास्तव में उसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। हाथियों और घोड़ों के बिना जीवन चल सकता है और करोड़ों का चल रहा है, जिंदगी के लिए सोने-चाँदी के पात्र भी अनिवार्य नहीं हैं; परन्तु अन्न के बिना प्राण स्थिर नहीं रह सकते। इसीलिए कहा गया है:—

अन्नं वै प्राणाः ।

अर्थात्—अन्न निश्चय ही प्राण हैं।

किसी भूखे मनुष्य को, जो भूख से तड़फ रहा है, छटपटा रहा है, और अन्न के अभाव में जिसके प्राण परलोक की तरफ प्रस्थान करने की तैयारी कर रहे हैं, उसे हाथी-घोड़े दिये जाएँ, तो क्या उसे सन्तोष होगा ? क्या उन्हें लेकर वह अपने प्राणों की रक्षा कर सकेगा ? नहीं। उसे मुट्ठी भर अन्न चाहिए। करोड़ों की सम्पत्ति उसके लिए बेकार है और मुट्ठी भर अन्न के दाने ही सब कुछ हैं।

यह अन्न की महत्ता है और इसी कारण अन्नदान की भी महत्ता है। यह महान् अन्नदान जब निस्वार्थ भाव से दिया जाता है, ऊँची भावना से, प्रमोद भाव से अर्पित किया जाता

है, तब उसकी महिमा अधिक बढ़ जाती है। दाता की पवित्रता उस दान में अपूर्व रसायन उत्पन्न कर देती है।

देय वस्तु उत्तम हो, दाता की भावना पवित्र हो और पात्र भी उत्तम हो, तब तो सोने में सुगन्ध की कहावत चरितार्थ हो जाती है। समस्त पापों के त्यागी, आरंभ समारंभ से दूर, संयम और तप की आराधना के लिए ही अपने शरीर की रक्षा करने वाले, संयमी जन दान के सर्वोत्कृष्ट पात्र माने जाते हैं।

इन सब की उत्तमता का सुयोग मिलना बड़ा कठिन है। जिसे मिलता है, वह महान् पुण्यवान् है, धन्य है, वह देवों के द्वारा भी सराहनीय और वन्दनीय बन जाता है। शास्त्र में कहा है:—

दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छंति सुग्गइं॥

—दशवैकालिक

अर्थात्—निष्काम भावना से दान देने वाला दुर्लभ है और निष्काम अनासक्त भाव से लेने वाला भी दुर्लभ है। निष्काम दाता और निष्काम-जीवी दोनों ही सद्गति प्राप्त करते हैं।

दाता के हृदय में सुपात्र को देखकर दान देने से पहले प्रमोद हो, दान देते समय भी प्रमोद हो और दान देने के पश्चात् भी प्रमोद हो, संयम में उपकारक वस्तु का दान दिया गया हो, दाता ने भी संयम की साधना के लिए दिया हो तो समझना चाहिए कि यह दान महान् है और महान् फल का जनक है।

बालक के दान में यह सभी संयोग मिल गये। दान से पहले मुनि को देखकर उसे हर्ष हुआ और इसी कारण वह उन्हें आमंत्रित करने के लिए दरवाजे से बाहर आया। दान देते समय भी उसे असीम हर्ष हुआ।

दान दे चुकने पर भी उसकी प्रसन्नता अपार थी। क्षण भर भी उसने नहीं सोचा कि यह खीर बड़ी मुश्किल से बन पाई है, इसे कैसे दे दूं ? खीर खाकर बालक ने जितनी तृप्ति का अनुभव किया होता उससे सौ गुनी तृप्ति का आनन्द उसे दान देकर हुआ।

दान लेकर मुनिराज चले। बालक अपना सौजन्य और भक्तिभाव प्रदर्शित करता हुआ द्वार तक उन्हें पहुँचाने गया। मुनिराज मन्द गति से आगे चले गये और बालक घर में लौट आया। उसका संसार परीत हो गया। संसार का अन्त निश्चित हो गया।

कुछ ही देर हुई थी कि वृद्धा जल भर कर घर आ पहुँची। उसने खीर का पात्र पूरा खाली देखा तो आश्चर्य करने लगी। उसके मन में आया कि "अरे, मेरा प्यारा बालक इतनी सारी खीर खा गया। हाय, मेरा बालक कितना भूखा था ! बेचारे को कभी खीर नहीं मिली थी ! इसी कारण यह सारी खीर खा गया। जान पड़ता है, यह मनोज्ञ भोजन न मिलने के कारण प्रतिदिन भूखा रहता है। अब मैं अधिक मजदूरी करने का प्रयत्न करूँगी और बालक को इच्छानुसार खिलाऊँगी।

हा दुर्दैव ! तू जगत् के जीवों को कैसे-कैसे दारुण दृश्य दिखलाता है ! मनुष्य क्या सोचता है और क्या होता है !

वृद्धा अपने बालक के सहारे जी रही थी। सोचती थी-अब इसके बड़े होने में देर नहीं है। सँभल जायगा तो मुझे सुखी करेगा। मैं अपने घर की रानी बन जाऊँगी। परन्तु काल की करामात देखिए कि इसी समय बालक के असातावेदनीय का उदय आने से वह बीमार हो गया। बुढ़िया ने बालक की प्राण-रक्षा के लिए सब सम्भव उपाय किये, परन्तु कोई भी उपाय कार्यकारी सिद्ध न हुआ। अन्त में बालक देह त्याग कर चल बसा।

वास्तव में संसार अनित्य है और जीवन क्षणभंगुर है। यथार्थ कहा है:—

> अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
> अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्॥

जो मनुष्य आज ही हँसे थे, अभी-अभी गा रहे थे और पढ़ रहे थे, वे आज ही अदृश्य हो गये! आह, काल की चेष्टा बड़ी कष्टकर है!

मोह की लीला का तो विचार कीजिए कि इस अनित्यता को, इस चलाचली को दुनिया प्रत्यक्ष देख रही है, फिर भी उसे सद्बोध प्राप्त नहीं होता प्रत्येक मनुष्य यही सोचता प्रतीत होता है कि मरने के लिए दूसरे हैं। मैं तो अजर-अमर होकर आया हूँ! किसी को अपने मरने की चिन्ता नहीं है! इसी कारण किसी इष्टजन की मृत्यु होने पर वे रोते-पीटते हैं, मगर अपने विषय में कुछ विचार ही नहीं करते।

> म्रियमाणं मृतं बन्धुं, शोचन्ति परिदेविनः।
> आत्मानं नानुशोचन्ति कालेन कवलीकृतम्॥

अरे मूढ़ ! तू अपने मरणासन्न और मृत आत्मीय जन के लिए शोक करता है; परन्तु अपनी तरफ तो देख ! तू स्वयं काल रूपी विकराल दैत्य की दाढ़ों में फँसा हुआ है। किस क्षण तेरे जीवन का अन्त हो जायगा, यह कोई नहीं जानता। अतएव दूसरों के लिए रोना छोड़, अपने लिए कुछ कर ले। मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं है; अतएव तू ऐसा कोई उद्योग कर कि जिससे मृत्यु के पश्चात् तू सुखी हो सके ! समय रहते तू सावधान न हुआ और धर्म-पुण्य का आचरण करके परलोक के लिए सामान न जुटाया तो अन्त में घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। फिर कहेगाः—

जन्मैव व्यर्थतां नीतं, भवभोगप्रलोभिना ।
काचमूल्येन विक्रीता, हन्त चिन्तामणिर्मया ।।

अर्थात्-अफसोस है कि मैंने जन्म ही अकारथ गँवा दिया। मैं सांसारिक भोगोपभोगों के प्रलोभन में पड़ा रहा। खेद है कि मैंने मूढ़ता के वश होकर चिन्तामणि को कांच की कीमत पर गँवा दिया।

जो महाभाग संसार और जीवन को हृदयंगम करके धर्माचरण करते हैं, सत्कर्म करते हैं और अधर्म से दूर रहते हैं, वे अपने भविष्य को मंगलमय बना लेते हैं।

इस अपूर्व दान-दाता बालक ने जो प्रभूत पुण्य उपार्जन किया था, उसके फलस्वरूप ही वह धन्नाकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ। दान के ही प्रभाव से उसे सर्वत्र सम्पत्ति सुयश और सुख की प्राप्ति हुई है।

जिन आठ पड़ोसिनों ने खीर सामग्री लाकर दी थी, वे

आठों धन्नाकुमार की भार्याएँ हुई हैं और
के सर्वोत्कृष्ट सुखों को भोग रही हैं।

यह धन्ना और उनकी पत्नियाँ
वास्तव में यह सब पुण्य का ही प्रताप है
पुण्योपार्जन करेगा वह उसी के समान फ

यह वृत्तान्त सुनकर धनसार ने
महात्मन ! धन्नाकुमार के तीनों भाइयों व
जिससे हम लोगों को विशेष बोध की प्रा

मुनिराज धर्मघोष बोले-वही मु
किसी छोटे ग्राम में पहुँचे। चातुर्मास का
गया जान उसी ग्राम में विराज गये। वे म
कर ही रहे थे। पारणा के दिन वे भिक्षा के

धन्नाकुमार के तीनों भाई पूर्वभव में
उनके इस भव की पत्नियाँ पूर्वभव में भी
थीं। तीनों भाइयों ने मुनिराज को आया दे
दान तो किया, परन्तु मन में पश्चात्ताप भी
पश्चात् उनकी भावना उदार नहीं रह सकी
मुनि की निन्दा भी की। वह आपस में कह
की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है ! यह पर
व्यतीत करते हैं। किसी ने दे दिया तो खा
भूखे ही भटकते रहे ! भीख माँग कर पेट
आजीविका है। याचना करके जीवन नि
बड़ी विडम्बना है ! वास्तव में याचक के लि
कहा है:-

तृणादपि लघु स्तूलस्तूलादपि च याचकः ।
वायुना किं न नीतोऽसौ, मामयं प्रार्थयेदिति ।।

अर्थात्-तिनका हल्का होता है और रुई उससे भी हल्की होती है। परन्तु याचना करने वाला तो रुई से भी हल्का-तुच्छ है। प्रश्न हो सकता है कि यदि याचक रुई से भी हल्का होता है तो हवा उसे उड़ा क्यों नहीं ले जाती ? कवि इस प्रश्न का उत्तर देता है—उसे हवा उड़ा कर नहीं ले जाती, इसका कारण यह है कि हवा को भय लगता है कि मैं इसे उड़ा कर ले गई तो यह याचक मुझसे भी कुछ माँग बैठेगा। इसी डर से वह नहीं उड़ा ले जाती।

तीनों भाई कहने लगे—आज श्रेष्ठ आहार पाकर वह साधु कितना प्रसन्न हुआ होगा ? हमने उसे बहुत सुख पहुँचाया है।

इस प्रकार का विचार करने के कारण तीनों भाइयों ने अशुभ कर्मों का बन्ध किया। एक बार नहीं, चार बार इसी प्रकार की घटना घटी। वे आहार देकर पुण्य का बन्ध करते थे और बाद में पश्चात्ताप करने तथा साधु की निन्दा करके पाप कर्म बाँध लेते थे। इसके फल-स्वरूप उन्हें इस भव में यह स्थिति भोगनी पड़ी।

तीनों भाई दान के प्रभाव से सेठ के सम्पन्न घर में उत्पन्न हुए। इन्होंने धन-सम्पत्ति पाई, किन्तु दान देकर पश्चात्ताप करने के कारण और मुनि-निन्दा करने के कारण बीच में उनके पाप का उदय हुआ। चार बार निन्दा और पश्चात्ताप करने के कारण इन्हें चार बार धन-नाश का कष्ट सहन करना पड़ा।

वास्तव में ओं का जीवन धन्य और महान् है।

उनकी निस्पृहता और त्याग वृत्ति की तुलना नहीं हो सकती। चक्रवर्त्ती जैसे राजा, बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली सेठ साहूकार भीख माँग कर खाने के लिए साधु नहीं बनते। उनके साधु-जीवन का उद्देश्य बहुत ऊँचा होता है। जगत् को महान् से महान् त्याग करने की उनके जीवन से शिक्षा मिलती है। वे आवश्यक भोजन आदि का लाभ होने पर अथवा न होने पर एक-सी भावना रखते हैं। लेश मात्र भी विषाद को पास नहीं फटकने देते। देने वाले पर प्रसन्न और मना कर देने वाले पर अप्रसन्न नहीं होते। कहा भी है:—

> बहुं परघरे अत्थि, विविहं खाइमसाइमं।
> न तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो न वा॥
> सयणासणवत्थं वा, भत्तं पाणं च संजए।
> अदितस्स न कुप्पिज्जा, पच्चक्खे वि अ दीसओ॥
>
> —दशवैकालिक, अ० ५

दूसरे के घर में बहुत-सी वस्तुएँ हैं। विविध प्रकार के खाद्य और स्वाद्य भोजन तैयार रक्खे हैं। किन्तु उन्हें देना अथवा न देना, उसकी इच्छा पर निर्भर है। चाहे तो दे, न चाहे तो न दे। न दे तो ज्ञानी पुरुष को उस पर कोप नहीं करना चाहिए। शय्या, आसन, वस्त्र, आहार, पानी आदि सामग्री सामने रक्खी है। फिर भी यदि कोई गृहस्थ नहीं देना चाहता तो साधु को क्रोध नहीं करना चाहिए।

अहा! कितनी उदार और उच्च भावना है! ऐसे अवसर पर मन में लेश मात्र क्षोभ न होने देना कोई साधारण साधना नहीं है! मगर मुनिजन ऐसे ही समभावी होते हैं। उनके लिए भगवान् ने आदेश दिया है कि-हे साधो! आहार का लाभ

न होने पर विषाद मत करो, यह तो तुम्हारे लिए लाभ दायक ही है—

अलाभो त्ति न सोइज्जा, तवो त्ति अहियासए।

अर्थात्—आज आहर नहीं मिला, यह सोचकर शोक न करो; बल्कि यह विचार करो कि आज मेरा अहोभाग्य है कि अनायास ही तपस्या करने का अवसर आ गया।

भला, इस प्रकार की उच्च भावनाओं में विचरण करने वाले महापुरुष क्या भीख मांग कर निर्वाह करने के लिए साधु बनते हैं? यह बात मन में और जीभ पर लाना भी अनुचित है। भगवान् ने मुनियों के लिए असावद्य आजीविका का आदेश दिया है और यही आजीविका मुनियों के लिए योग्य भी है।

मुनियों को दान देना, वस्तुतः उन पर उपकार करना नहीं है; परन्तु अपने लिए ही महामंगल के द्वार खोल लेना है। धन्नाकुमार का उदाहरण हमारे सामने है। उसने प्रशस्त भाव से दान देकर कितना पुण्य संचय कर लिया? अतएव दान देते समय यही भावना रखनी चाहिए कि मुनिराज हमारा उद्धार करने के लिए ही हमारे आंगन में आए हैं। आज मेरा परम सौभाग्य है कि मेरा घर इन महात्मा के पद-पद्मों से पावन बना! मैं तिर गया। आज मेरे घर सोने का सूरज उगा कि महात्मा के चरण पड़े!

इस प्रकार की भावना के साथ जो दान दिया जाता है, वह सहस्र-गुणा फलदायक होता है।

धन्ना के जीव ने एक बार दान दिया था और उनके

भाइयों के जीवों ने चार चार दान दिया था। धन्ना ने खीर दी थी तो उन्होंने भी श्रेष्ठ आहार दिया था। फिर दान के फल में इतना अधिक अन्तर कैसे पड़ गया? दान लेने वाले महात्मा भी वही के वही थे। केवल भावना की भिन्नता ने दोनों दानों में जमीन–आसमान का भेद उत्पन्न कर दिया।

हे दाता! जब तू दान देता ही है तो भावना भी पवित्र और उदार क्यों नहीं रखता? तेरी पवित्र भावना तेरे दान को अमित कल्याणकारी बना देने में समर्थ है। क्षण भर भावना को मलिन करके अपने दान का मूल्य मत घटा। अपने सोने सरीखे दान को मिट्टी का मत बना।

धन्नाकुमार आदि का पूर्व वृत्तान्त जान कर श्रोतृमंडल को आनन्द हुआ। मुनिराज का भाषण समाप्त हो गया।

२५

परिवार की दीक्षा

संसार में भाँति-भाँति के जीव हैं। कोई अभव्य है, जो अनन्त-अनन्त भविष्य काल में भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते, उनमें मुक्ति पाने की योग्यता ही नहीं है। कुछ ऐसे भी जीव हैं जो भव्य तो हैं, किन्तु उनकी भव्यता का कभी परिपाक ही नहीं होता और वे भी सदा काल संसार में परिभ्रमण करने वाले हैं। कोई दूर-भव्य हैं जो लम्बे काल तक भ्रमण करने के पश्चात् कभी मोक्ष प्राप्त करेंगे। कोई आसन्न भव्य होते हैं जिन्हें मोक्ष प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लगने वाला है।

धन्ना कुमार के तीनों भाई यद्यपि भावना त्रुटि के कारण कर्मों के चक्कर में पड़ गये थे, परन्तु थे आसन्न भव्य। उनकी आत्मा पाप-कर्मों से अत्यधिक मलिन नहीं थी। अतः धर्मोपदेश रूप निमित्त पाकर वह जागृत हो उठी।

महान् पुरुषों के वचनों को श्रवण करने से आत्मा को अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है। जिनकी आत्मा पूर्ण रूप से जागृत है, जिन्होंने तत्त्वों का मर्म पा लिया, जो विशेष ज्ञानवान् हैं और अपने ज्ञान के अनुसार ही पवित्र आचरण करते हैं, उनकी वाणी में अलौकिक प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे महान् पुरुषों

का वचन आत्मोत्थान का निमित्त बनता है। इसी उद्देश्य से शास्त्र में कहा गया है—'सवणे, णाणे य विण्णाणे' अर्थात् सर्वप्रथम आर्य पुरुषों के वचन को श्रवण करने का अवसर मिलता है तो उससे ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान से विज्ञान अर्थात् जड़-चेतन का भेदज्ञान प्राप्त होता है। भेदविज्ञान प्राप्त होने पर पापों का प्रत्याख्यान करने की स्वतः अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। तत्पश्चात् आत्मा प्रवृत्ति मार्ग से हटता और निवृत्ति मार्ग को ग्रहण करता है। क्रमशः उच्च से उच्चतर स्थिति को पाता हुआ अन्त में सिद्ध बुद्ध और परिनिर्वृत्त हो जाता है—

> माणुस्सं विग्गहं लद्धं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
> जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं॥

अर्थात् प्रथम तो नाना योनियों में परिभ्रमण करने वाले जीव को मनुष्य की योनि मिलना ही कठिन है; कदाचित् पुण्य के योग्य से मिल जाय तो धर्म के सुनने का सुअवसर मिलना कठिन होता है। मनुष्य तो बहुत हैं, परन्तु कितने ऐसे पुण्यशाली हैं, जिन्हें सर्वज्ञ और वीतराग महाप्रभु के उपदेश को सुनने का अवसर मिलता हो! जब तीव्रतर पुण्य का योग होता है, तभी जिनदेव की वाणी सुनने को मिलती है। इस वाणी की विशेषता यह है कि इसे सुन कर मनुष्य तप, क्षमा और अहिंसा के मार्ग को अंगीकार करते हैं।

यद्यपि यहाँ तप के साथ क्षमा और अहिंसा का ही उल्लेख किया गया है, तथापि यह शब्द उपलक्षण मात्र हैं। क्षमा यहाँ मार्दव, आर्जव आदि दस धर्मों का सूचक है और अहिंसा पाँचों व्रतों का सूचक है। तप शब्द से समस्त उत्तर गुणों का ग्रहण किया जा सकता है। उसका आशय यह निकला कि जिनेन्द्र देव की वाणी के श्रवण करने से ही चारित्रधर्म की प्राप्ति होती है।

जिनकी आत्मा सकल कल्मषों से अतीत हो चुकी है, जिन्होंने विश्व के समस्त भावों को हस्तामलकवत् जान लिया है, जो अपने विशुद्ध आत्मस्वरूप को पूर्ण रूप से प्राप्त कर चुके हैं, उन महापुरुषों की वाणी की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ?

धर्मघोष मुनि ने अपने धर्मोपदेश में जो कुछ प्ररूपण किया, वह तीर्थंकर देव की ही वाणी थी। उस वाणी का उन्होंने स्वयं अपने जीवन में व्यवहार किया था। अतएव उसके प्रभावशाली होने में सन्देह ही क्या था ?

मुनिराज के शान्त, गंभीर, वैराग्यमय वचन सुन कर धनदत्त, धनदेव और धनचन्द्र के नेत्र खुल गये। उनके अन्तस्थल में विरक्ति की लहरें उमड़ने लगीं। सेठ धनसार को भी वैराग्य हो आया। धन्नाकुमार की माता और तीनों भोजाइयों ने भी संयम की आराधना करने की ठान ली। उसी समय आठों ने धन्ना कुमार से दीक्षा की अनुमति प्राप्त की और भागवती दीक्षा धारण कर ली।

आठों प्राणियों ने दीक्षा धारण करके मनुष्यभव के सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य का पालन किया। वे संयम और तप की साधना में निमग्न हो गये।

इधर धन्ना कुमार गृहस्थधर्म का पालन करते हुए सुख से रहने लगे। यद्यपि वह साधु नहीं बने थे, गृहस्थावस्था में ही थे, फिर भी उत्कृष्ट धर्मक्रिया करते थे। साथ ही संसार के उत्तम से उत्तम सुख भी भोग रहे थे। उन्हें मान-सन्मान आदि सभी कुछ प्राप्त था।

२६

शालिभद्र की विरक्ति

नैपाल देश उस समय भारत का अभिन्न अंग था। यहाँ की कला का बड़ा ही सुन्दर विकास हुआ था। पहाड़ों की निसर्ग-सुन्दर गोद में बसा हुआ नैपाल संसार के सामने कला के सुन्दर से सुन्दर नमूने पेश किया करता था। इस कारण यहाँ सम्पत्ति की प्रचुरता थी।

एक बार यहाँ के चार सेठों ने देशाटन करने का विचार किया। वह सोचने लगे—

> यो न सञ्चरते देशान्, यो न सेवेत पण्डितान्।
> तस्य सकुचिता बुद्धिर्घृतबिन्दुरिवाम्भसि ॥
> यस्तु सञ्चरते देशान्, यस्तु सेवेत पण्डितान्।
> तस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥

अर्थात्—जो देश-देशान्तर में भ्रमण नहीं करता है, और जो पण्डितों की सेवा नहीं करता है, उसकी बुद्धि उसी प्रकार संकीर्ण रहती है, जैसे पानी में पड़ी हुई घी की बूंद संकुचित रहती है।

जो देश-विदेश में परिभ्रमण करता है और जो पण्डितों की उपासना करता है, उसकी बुद्धि का उसी प्रकार विस्तार होता है, जैसे पानी में पड़ी हुई तेल की बूंद का।

देशाटन करने से नवीन-नवीन अनुभव होते हैं, सुन्दर दृश्यों को अवलोकन करने का अवसर मिलता है, मानव-स्वभाव को समझने और परखने का भी सुयोग मिलता है।

देशाटन का विचार करने वाले सेठ सम्पत्तिशाली थे। अतएव उन्होंने विचार किया कि यों ही निकल पड़ने की अपेक्षा बेचने के लिए कोई माल साथ ले लेना चाहिए। वह माल भी ऐसा बहुमूल्य हो कि जिसे दिखाने और बेचने के बहाने बड़े-बड़े लोगों से मिलने का अवसर मिले। क्योंकि बिना किसी निमित्त के राजाओं-महाराजाओं और बड़े सेठ साहूकारों से मिलना अच्छा नहीं लगता। इससे हमें व्यापारिक लाभ भी होगा और परिचय भी बढ़ेगा।

यह सोचकर नेपाल के इन चार व्यापारी सेठों ने बेचने के लिए रत्न-कम्बल साथ लेकर प्रस्थान किया। ये लोग कई देशों में भ्रमण करते-करते और वहाँ के रमणीय एवं सुन्दर दृश्यों को देखते हुए राजगृही नगरी में आये। उनका विश्वास था कि मगध की राजधानी में बड़े-बड़े धनाढ्य सेठ रहते हैं। फिर मगधनरेश सम्राट श्रेणिक भी यहीं हैं। अतएव राजगृही में हमारे कम्बल भी बिक जाएँगे और उन सब को देखने का अवसर भी मिल जाएगा। इस विचार से जब वे राजगृही में आये और यहाँ की समृद्धि देखी तो उनके हर्ष का पार न रहा। राजगृही की अनूठी शान देखकर वे अपने प्रवास को सफल मानने लगे।

व्यापारियों ने राजगृही के दलालों को साथ लिया। वे एक के बाद एक नामी सेठों से मिले। नैपाल की उत्कृष्ट कला के नमूने रूप रत्नकम्बल उनके सामने रक्खे। रत्नकम्बल अत्यन्त सुन्दर थे, परन्तु अत्यधिक मूल्यवान् होने के कारण कोई सेठ उन्हें खरीदने की हिम्मत न कर सका। सेठों की ओर से निराश होकर व्यापारी महाराजा श्रेणिक के पास पहुँचे। उन्होंने रत्नकम्बल दिखलाए। महाराजा उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए। नैपाली कला की श्रेष्ठता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उन्होंने एक कम्बल खरीदने का विचार किया। दिखलाने के लिए महारानी चेलना के पास वह सभी कंबल भेज दिये। महारानी को भी वह बहुत सुन्दर लगे। उन्होंने कहला भेजा— इनमें से एक अवश्य खरीद लें।

सम्राट् श्रेणिक भी एक कम्बल खरीदना चाहते थे। अतएव उन्होंने कम्बल की कीमत पूछते हुए कहा—कहिए, इनकी कीमत क्या है ?

व्यापारी—सम्राट्वर ! एक-एक कम्बल बीस-बीस लाख दीनारों का है ! बड़ी आशा लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। आप यह सभी कंबल खरीद कर हमारा भार हल्का करेंगे।

श्रेणिक महाराज कंबलों की कीमत सुन कर कहने लगे– यह सत्य है कि कला का मूल्य सोने-चांदी से आंकना ठीक नहीं, तथापि आप जानते हैं कि मैं व्यापारी नहीं हूँ, मजदूर नहीं हूँ और किसान भी नहीं हूँ। मैं स्वयं परिश्रम करके धनोपार्जन नहीं करता। मेरे कोष में प्रजा का धन आता है। मेरे पास जो कुछ भी है, वह प्रजा की गाढ़ी कमाई का फल है। मैं कमाता होता तो उसे उड़ा भी सकता था। मगर यह तो प्रजा की सम्पत्ति है।

अतएव प्रजा की सम्पत्ति का व्यय करते समय बहुत सोच विचार करना पड़ता है। मेरे और मेरे परिवार के निर्वाह के लिए जो आवश्यक और अनिवार्य है, उसे व्यय किये बिना तो काम चलता नहीं। उतना व्यय करना अनैतिकता नहीं है। किन्तु जो वस्तु जीवन के लिए अनिवार्य नहीं है, उसे खरीदना नैतिकता नहीं कही जा सकती।

राजा का कोष प्रजा की पवित्र धरोहर है। उसे मैं सार्वजनिक सम्पत्ति मानता हूँ। व्यक्तिगत सम्पत्ति की अपेक्षा सार्वजनिक सम्पत्ति का सहस्रगुणा मूल्य है। उसे अपने विलास में उड़ा देना जनता के प्रति विश्वासघात है। अतएव मैं आपके यह बहुमूल्य कम्बल खरीदने में असमर्थ हूँ।

सम्राट् श्रेणिक का उत्तर अत्यन्त औचित्यपूर्ण था। व्यापारी इस उत्तर को सुनकर मन ही मन श्रेणिक की प्रशंसा करने लगे। उनमें से एक ने कहा—सम्राट्! आप प्रजा के सच्चे स्वामी हैं। आपके विचार बहुत उच्च और पवित्र हैं। भगवान् महावीर का उपदेश सुनने वालों का आशय भी इतना पवित्र न हुआ तो भला किसका होगा? आपका प्रजाप्रेम सराहनीय है। मगध के अधीश्वर! वास्तव में आप अपने इस प्रजाप्रेम के कारण सारे संसार के सम्राट् होने योग्य हैं। परन्तु यह भी सोचिए कि आप जैसे सम्राट् अगर कला को उत्तेजना न देंगे तो इसका क्या होगा? यह कला तो संसार से उठ ही जायगी।

श्रेणिक—वणिग्वर! कला की महत्ता को मैं समझता हूँ; परन्तु मैं सार्वजनिक धन से उसे उत्तेजना नहीं दे सकता; विशेषतया उस स्थिति में जब कि कला की वस्तु सार्वजनिक हित की न होकर व्यक्तिगत उपभोग की हो।

व्यापारियों ने राजगृही के दलालों को साथ लिया। वे एक के बाद एक नामी सेठों से मिले। नेपाल की उत्कृष्ट कला के नमूने रूप रत्नकम्बल उनके सामने रक्खे। रत्नकम्बल अत्यन्त सुन्दर थे, परन्तु अत्यधिक मूल्यवान् होने के कारण कोई सेठ उन्हें खरीदने की हिम्मत न कर सका। सेठों की ओर से निराश होकर व्यापारी महाराजा श्रेणिक के पास पहुँचे। उन्होंने रत्नकम्बल दिखलाए। महाराजा उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए। नेपाली कला की श्रेष्ठता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उन्होंने एक कम्बल खरीदने का विचार किया। दिखलाने के लिए महारानी चेलना के पास वह सभी कंबल भेज दिये। महारानी को भी वह बहुत सुन्दर लगे। उन्होंने कहला भेजा—इनमें से एक अवश्य खरीद लें।

सम्राट् श्रेणिक भी एक कम्बल खरीदना चाहते थे। अतएव उन्होंने कम्बल की कीमत पूछते हुए कहा—कहिए, इनकी कीमत क्या है ?

व्यापारी—सम्राट्वर ! एक-एक कम्बल बीस-बीस लाख दीनारों का है ! बड़ी आशा लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। आप यह सभी कंबल खरीद कर हमारा भार हल्का करें।

श्रेणिक महाराज कंबलों की कीमत सुन कर कहने लगे—यह सत्य है कि कला का मूल्य सोने-चांदी से आंकना ठीक नहीं, तथापि आप जानते हैं कि मैं व्यापारी नहीं हूँ, मजदूर नहीं हूँ और किसान भी नहीं हूँ। मैं स्वयं परिश्रम करके धनोपार्जन नहीं करता। मेरे कोष में प्रजा का धन आता है। मेरे पास जो कुछ भी है, वह प्रजा की गाढ़ी कमाई का फल है। मैं कमाता होता तो उसे उड़ा भी सकता था। मगर यह तो प्रजा की सम्पत्ति है।

इसी समय उनकी दृष्टि एक नारी पर पड़ी। उसे देखकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। वह नारी साक्षात् लक्ष्मी जान पड़ती थी। अत्यन्त मूल्यवान् आभूषणों से उसका शरीर सुशोभित हो रहा था। रत्नजटित अलंकारधारिणी और अत्यन्त शाही वस्त्र पहनने वाली यह नारी कौन है? चारों व्यापारी कुतूहल से उसकी ओर देखने लगे। उनके कुतूहल का कारण स्पष्ट था। नारी की वेष-भूषा महारानियों की वेषभूषा को भी मात करती थी और वह पानी भरने के लिए पनघट आई थी। व्यापारी इस असमंजस में थे कि इसे क्या समझा जाय? महारानी पानी भरने नहीं आती और दासी को इतने बहुमूल्य और दिव्य आभरण कैसे प्राप्त हो सकते हैं?

अपनी ओर कुतूहलपूर्ण नेत्रों से देखते हुए परदेशी व्यापारियों को देखकर वह नारी सहज ही उनके पास जा पहुंची। उसे सन्निकट आई देख व्यापारी अकचका गये। नारी ने उनके चेहरे को चिन्तातुर देखकर कहा—वीरा! कहो, कहाँ रहते हो?

वणिक्—बाई, हम लोग दूर देश नैपाल के वासी व्यापारी हैं।

नारी—यहाँ किस निमित्त आगमन हुआ?

वणिक्—भाग्य ले आया बहिन, और क्या कहें!

नारी—कोई छिपाने की बात न हो तो कहने में क्या हानि है? आप लोगों को मैं चिन्तित देख रही हूं।

वणिक्—जो चिन्ता दूर कर सके उसे चिन्ता की बात कहना उचित है। अन्यथा वृथा रोने-धोने से क्या लाभ?

नारी—व्यापारी का यह कर्त्तव्य नहीं। उसे तो गली-गली में पुकार करनी पड़ती है। मगर आप तो अनोखे व्यापारी जान पड़ते हैं जो पूछने पर भी उत्तर नहीं देते !

वणिकों को नारी की बात में कुछ तथ्य दिखाई दिया। उन्होंने कहा—हमारे पास बीस-बीस लाख दीनारों के मूल्य के सोलह रत्नकंबल हैं। यही आशा लेकर राजगृही में आये थे। मगर दुर्भाग्य ने एक भी कंबल नहीं बिका। इसी चिन्ता में डूबे हैं।

नारी—बस, यही तुम्हारी चिन्ता का कारण है ? चलो मेरे साथ !

व्यापारी चकित और विस्मित थे। कीमत सुन कर भी जिस लापरवाही से उस नारी ने व्यापारियों को साथ चलने को कहा, उसे देखकर उनकी समझ में ही न आया कि बात क्या है !

तब एक व्यापारी ने पूछा—क्या हम लोग आपका परिचय पा सकते हैं ?

नारी—मेरे परिचय का कोई मूल्य नहीं। दासी दासी है, इससे अधिक उसका क्या परिचय ?

व्यापारी हैरान थे ! दासी का यह ठाठ ! उन्हें कुछ आशा बँधी। तब दूसरे ने पूछा—किस महाभाग्यवान् की दासी हैं आप ?

नारी—भद्रा माता की। पर आप संशय में क्यों पड़े हैं ? भद्रा माता आपकी चिन्ता दूर कर देंगी। आपके सब

कंबल खरीद लिये जाएँगे और मुँह माँगा मूल्य मिल जायगा। आपको और चाहिए ही क्या ?

वणिक—जी हाँ, बस यही चाहिए।

व्यापारी सोचने लगे—जिनकी दासी ऐसी है, वह भद्रा ा कैसी होगी ? वह सेठ कैसा होगा ? चल कर देखना तो हिए !

चारों व्यापारी कंबल लेकर दासी के पीछे-पीछे चल पड़े। शालिभद्र के द्वार पर पहुँचे तो पहरेदारों ने उन्हें रोक । दासी भीतर जाकर आज्ञा लाई तो उन्हें भीतर जाने की नति मिली।

भीतर जाकर व्यापारियों ने जो दृश्य देखा, उससे वे आत्मविस्मृत हो गए। उन्हें भ्रम होने लगा कि हम इस धरती पर हैं अथवा स्वर्गलोक में आ पहुँचे हैं ! जिधर देखो उधर ही विविध प्रकार के रत्न जगमगा रहे हैं ! कंकरों के समान रत्नों को देखकर व्यापारी कहने लगे—भाई, रत्नकंबल विकने का यही स्थान है। कदाचित् न विके तो भी हमारा देशाटन करना सफल हो गया ! आज इसी भूतल पर स्वर्ग के दर्शन हो गए ! हमारा जीवन धन्य हो गया।

शालिभद्र के महल की, स्वर्ग से भी उत्तम, अनूठी और अद्भुत शोभा देखते और चकित होते हुए व्यापारी भद्रा माता के पास पहुँचे। भद्रा माता के शरीर पर एक भी आभूषण नहीं था। उनके वस्त्र भी बहुत सादे थे। यह देखकर व्यापारियों को और अधिक आश्चर्य हुआ। दिव्य और असाधारण वैभव जिनके चरणों में लोट रहा है, जिसकी दासी सम्राज्ञियों को भी दुर्लभ

वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित हैं, वह भद्रा माता इतनी सादी पोशाक में रहती हैं ? वृद्ध शरीर, गौर वर्ण, चेहरे पर अनूठी आभा, संयम की प्रशस्तता, गंभीरता, सरलता, दयालुता आदि देखकर व्यापारियों का मस्तक स्वतः उनके सामने नम्र हो गया।

माता भद्रा ने व्यापारियों से पूछा—कहो भाई, कितने कंबल लाये हो ?

व्यापारी—माताजी, हमारे पास सोलह कंबल हैं।

इतना कहकर व्यापारी ने कम्बलों की गुणावली आरम्भ की। कहा—माताजी ! यह कम्बल बहुत उपयोगी और गुणकर हैं। सर्दी, गर्मी और वर्षा में-सभी ऋतुओं में, सुखदायक हैं। जिस ऋतु में जिस गुण की अपेक्षा होती है, वही गुण इनसे प्राप्त होता है। मौसिम बदलते ही इनका गुण भी बदल जाता है। इन्हें धारण करने से रोग, शोक, ज्वर आदि सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। अग्नि का स्पर्श होने पर भी जलते नहीं, प्रत्युत शुद्ध हो जाते हैं। नर और नारी की समान रूप से शोभा बढ़ाते हैं।

भद्रा—यह सब ठीक है, मगर संख्या में तो सोलह ही हैं ! हमें बत्तीस की आवश्यकता थी। बत्तीस होते तो एक-एक बहू को एक-एक दे सकती।

व्यापारी विस्मित रह गये ! भद्रा सेठानी को इनके मूल्य का विचार ही नहीं है ! सोलह भी कम हैं !

आखिर उनमें से एक ने कहा—माताजी ! यह कंबल बहुत लम्बे हैं। एक-एक के दो-दो टुकड़े हो सकते हैं।

भद्रा—ठीक है दो-दो टुकड़े कर डालो। कीमत क्या है ?

व्यापारी—बीस-बीस लाख दीनार।

भद्रा सेठानी ने उसी समय मुनीम को बुलाया। मुनीम ने लक्ष्मी का भण्डार खोला। उसे देखकर व्यापारी फिर आश्चर्य में डूब गये ! प्रतीत हुआ, जगत् की सर्वोत्तम सम्पत्ति सब यहीं आकर एकत्र हो गई है।

भद्रा ने मुनीम से कहा—इन्हें कंबलों का मूल्य चुका दो और ऊपर से इतना दे देना कि खर्च दलाली आदि चुका कर ये आनन्द-पूर्वक अपने घर पहुँच सकें।

मुनीम—ले लो भाई, जितना चाहिए, ले लो। यहाँ कुछ कमी नहीं है। व्यापारी निश्चित कीमत लेकर अपूर्व हर्ष और आश्चर्य के साथ वहाँ से रवाना हो गए। भद्रा सेठानी का घर उनके लिए संसार का अद्वितीय आश्चर्य बन गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल बत्तीसों बहुएँ सासू के पास पहुँचीं। प्रतिदिन के नियमानुसार उन्होंने अपनी सासू के चरणों का स्पर्श किया और आशीर्वाद ग्रहण किया। सेठानी ने उन्हें रत्न-कंबलों का एक-एक टुकड़ा भेंट में दिया। सबने उसे प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

स्वर्गलोक के अनुपम मृदुल वस्त्र पहनने वाली इन बहुओं को रत्न-कंबल टाट के टुकड़े के समान प्रतीत हुआ। उनमें से एक ने कहा—बहिनो, क्या काम आएगा यह कंबल ? यह तो चुभता है।

दूसरी—कैसा भी क्यों न हो, माताजी का दिया उपहार है, अतएव हमारे लिए शिरोधार्य है। गुरुजनों के दिये उपहार को सादर ग्रहण करना ही हमारे लिए उचित है। और किसी काम न आये तो पैर पौंछने के काम आ सकता है। इसे रगड़ने से पैर साफ हो जाएँगे।

यही किया गया। सब बहुओं ने स्नान करते समय अपने टुकड़े से पैर साफ किये और नित्य के आचार के अनुसार उन टुकड़ों को एक ओर डाल दिया, जिससे महतरानी आकर लेजा सके। पाठक जानते हैं कि प्रतिदिन वस्त्रों और आभूषणों की एक एक पेटी देवलोक से इनके लिए आया करती थी। वे कोई भी वस्त्र अथवा आभूषण दूसरे दिन नहीं पहनती थीं। तदनुसार पैर पौंछने के बाद वह रत्नकंबलों के खंड आंगन में डाल दिये गये।

मेहतरानी आंगना झाड़ने आई तो चमचमाते हुए रत्नकंबल देखकर विस्मित हो गई। उसने एक दासी को बुला कर कहा—बाई, यह वस्त्र उठा लो तो मैं आंगन झाड़ डालूँ।

दासी ने उन वस्त्रों का इतिहास बतलाया और कहा—यह तुम्हारे लिए डाल दिये गये हैं। इन्हें तुम ले जाना और काम में लाना। यह सुन कर मेहतरानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने सब की एक गाँठ बांधी। आंगन आदि की सफाई करके वह जल्दी-जल्दी हर्ष के साथ अपने घर पहुँची। बत्तीस में से एक कंबल ओढ़ कर वह अपने आपको अप्सरा के समान समझने लगी। उसे ओढ़े वह राजा श्रेणिक के यहाँ सफाई करने पहुँची और अपना काम करने लगी।

संयोगवश महारानी चेलना की दृष्टि अचानक महत्तरानी पर जा पड़ी। चेलना को वह कंबल पहचानते देर न लगी। महारानी को अत्यन्त विस्मय हुआ। वह सोचने लगी—क्या महत्तरानी ने यह कंबल खरीदा है? महाराज ने जिस वस्त्र को अत्यधिक मूल्यवान् समझ कर खरीदने का साहस न किया, उसे महत्तरानी ने खरीद लिया! कितना आश्चर्य है! मगर इसके पास इतना द्रव्य कहाँ से आया? बीस लाख दीनार किसे कहते हैं! महत्तरानी इसे खरीदने में असमर्थ है। अवश्य ही इसमें कोई रहस्य होना चाहिए।

चेलना अपनी उत्कंठा को दबा न सकीं। उन्होंने महत्तरानी को अपने पास बुलवा कर पूछा—अरी, कितने में खरीदा है यह शाल?

महत्तरानी-महारानीजी, मेरी क्या हैसियत कि इसे खरीद सकूं। आज मैं शालिभद्रकुमार का आंगन साफ करने गई थी। वहीं ऐसे बत्तीस टुकड़े पड़े देखे। पूछताछ करने पर एक दासी से पता चला कि कुमार की बहुओं ने पैर पोंछ कर फैंक दिये हैं और मेरे लिए ही पड़े हैं। मैं उन सब को घर ले गई और एक ओढ़ कर यहाँ आई हूँ।

सम्राट् की पटरानी महारानी चेलना को अतीव आश्चर्य हुआ। मन ही मन उन्हें कई विचार आये। वह महत्तरानी को वहीं खड़ी रहने का आदेश देकर महाराजा के पास पहुँची। जाकर उनसे शालिभद्र की बहुओं का हाल कहा। यह भी बतलाया-आप जिन कंवलों में से एक भी न खरीद सके, शालिभद्र ने सभी खरीद लिये! फिर उनकी बहुओं ने उन्हें इतना साधारण समझा कि पैर पोंछ कर फैंक दिये! श्रेणिक को

भी यह वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। हमारे नगर में ऐसे-ऐसे लक्ष्मीपति हैं, यह सोचकर उन्हें प्रसन्नता भी हुई।

आजकल के युग के शासक होते तो यह वृत्तान्त सुन कर जल-भुन जाते। ईर्षा से प्रेरित होकर सेठ को लूटने का विचार भी कर डालते। मगर सम्राट् श्रेणिक सागर के समान गंभीर और विचारशील थे। अपनी प्रजा की समृद्धि देखकर वह प्रसन्न होते थे और इसी में अपने शासन की सफलता मानते थे।

शालिभद्र के सम्बन्ध में उन्हें अभी तक कोई जानकारी नहीं थी। आज पहली बार उन्हें उसका परिचय हुआ। परिचय पाकर श्रेणिक को असीम हर्ष हुआ और शालिभद्र से मिलने की उत्कंठा भी हुई।

श्रेणिक महाराज ने उसी समय अभयकुमार को बुलाया। उनसे पूछा—यह शालिभद्र कौन है? मैं उससे मिलना चाहता हूं।

अभयकुमार स्वयं उससे परिचित नहीं थे। उन्होंने कहा—अन्नदाता, मैं भी उन्हें जानता नहीं। पता लगाकर आपकी सेवा में उपस्थित करूँगा।

अभयकुमार पूछताछ करके शालिभद्र की हवेली पहुंचे। हवेली का जो ठाठ देखा तो उन्हें भी अपार विस्मय हुआ। वह राजमहल के साथ हवेली की तुलना करने लगे तो उन्हें राजमहल तुच्छ प्रतीत होने लगा। फिर भी उनके मन में ईर्षा न होकर प्रसन्नता ही हुई।

अभयकुमार जब भद्रा माता के सामने पहुंचे तो भद्रा माता ने खड़ी होकर स्वागत किया। योग्य आसन पर बिठ-

लाया और पूछा कहिए, राजकुमार! आज इस गरीब जन पर कैसे कृपा की ?

अभयकुमार सेठानी की नम्रता का विचार करके और भी अधिक प्रसन्न हुए। बोले—महाराज ने शालिभद्र कुमार को स्मरण किया है।

भद्रा बड़ी असमंजस में पड़ गई। शालिभद्र कभी नीचे भी नहीं उतरता है तो राजसभा में कैसे जायगा ? मगर जाने से इन्कार करना भी उचित नहीं है। राजा का आदेश है। उसके उल्लंघन का कौन जाने क्या परिणाम आएगा ?

इस प्रकार थोड़ी देर विचार कर भद्रा माता ने कहा—कुँवर महोदय ! मेरा बालक बड़ा ही भोला है। वह अभी तक नीचे भी उतरा नहीं है। उसे राजद्वार में कैसे भेजूं ? आप स्वयं बुद्धिशाली हैं, विचार देखिए। मैं राजाज्ञा की अवज्ञा नहीं करना चाहती। महाराजा के समक्ष मेरी क्या हैसियत है कि अवज्ञा करनेका विचार भी कर सकूं। तथापि मेरीएक प्रार्थना है, वह यही कि अन्नदाता यदि मेरे झोंपड़े में पधारने का अनुग्रह करें तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगी। उनके चरणों से मेरा आंगन पवित्र हो जायगा। इससे सम्राट् का गौरव घटेगा नहीं, उनकी एक तुच्छ प्रजाजन को भले कुछ गौरव मिल जाय।

अभयकुमार को यह सम्मति पसंद आई। उन्होंने मन में विचार किया—इस ऋद्धि के सामने राजऋद्धि भी तुच्छ है। महाराज स्वयं पदार्पण करके एक बार इसे देख लेंगे तो अच्छा होगा।

यह सोचकर अभयकुमार ने उत्तर दिया—माताजी, आपका वैभव अद्वितीय है, फिर भी आप जो नम्रता प्रदर्शित कर रही हैं; उसमे आपकी महत्ता में वृद्धि ही होती है। वास्तव में लक्ष्मी का सच्चा स्वामी वही है, जिसे लक्ष्मी का मद नहीं होता। मैंने आपकी इच्छा समझ ली है। महाराज से मैं निवेदन करूंगा और अपनी ओर से आग्रह भी करूंगा। जो कुछ निश्चय होगा, उसकी सूचना आपको जल्दी ही मिल जाएगी।

यह कह कर अभयकुमार वहाँ से रवाना हुए और सम्राट् श्रेणिक के पास पहुँचे। अपनी आंखों देखा हाल सुनाकर कहा—शालिभद्र की हवेली इस पृथ्वी का स्वर्ग है और शालिभद्र उसका स्वामी इन्द्र है। वह बड़ा ही सुकुमार है। उसने कभी बाहर निकल कर धूप भी नहीं देखी है। उसका यहां तक आना कठिन है। शालिभद्र की माता ने विनयपूर्वक आपको वहीं आमन्त्रित किया है। मैं भी चाहता हूँ कि एक बार आप शालिभद्र की हवेली और शालिभद्र को देख आवें। आपकी स्वीकृति हो तो मैं उसके पास सूचना भिजवा दूं।

श्रेणिक के मन में भी उत्कंठा जागृत हुई। उन्होंने शालिभद्र के पास जाना स्वीकार कर लिया। सूचना भेज दी गई। और श्रेणिक महाराजा तैयारी करने लगे।

देवता ने अपने अवधिज्ञान का प्रयोग किया तो उसे प्रतीत हुआ कि आज सम्राट् श्रेणिक मेरे पूर्वभव के पुत्र शालिभद्र से मिलने जा रहे हैं। उसने राजभवन से लगा कर शालिभद्र की हवेली तक का समस्त मार्ग अपने दैवी सामर्थ्य से, अद्भुत रूप में सुसज्जित कर दिया। स्थान-स्थान पर एक से एक सुन्दर स्वागतद्वार और मणियों से मण्डित मण्डप बना दिये। उस समय राजगृही ने अपूर्व शोभा धारण की।

श्रेणिक अपने मंत्रियों और सामन्तों आदि के साथ शालिभद्र से मिलने चले। नगर के बड़े-बड़े सेठों को पता चला तो वे भी उत्सुकता और कुतूहल के वशीभूत होकर साथ हो लिए। रास्ते की सजावट देख कर सब लोग विस्मित हो रहे थे। पग-पग पर अद्भुत और अपूर्व सौन्दर्य झलक रहा था। मानवीय कौशल से अतीत कौशल उस सजावट में देख कर सब हैरान थे। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह था कि यह सब सजावट आनन-फानन कर दी गई थी।

आखिर अपने साथियों के साथ सम्राट् भद्रा माता के द्वार पर आये। भद्रा ने द्वार पर आकर हार्दिक सत्कार किया। जवाहरों की वर्षा इस प्रकार की गई जैसे कौड़ियों की की जाती है। सब लोग यह अचिन्तनीय दृश्य देख कर हर्षित और चकित हो गये। बहुमूल्य हीरों और मोतियों की सघन वर्षा देखकर ही लोग शालिभद्र की अपार सम्पत्ति का अनुमान लगाने लगे।

महाराज श्रेणिक अपने दल के साथ हवेली में प्रविष्ट हुए और जब पहली मंजिल में पहुँचे तो वहाँ की विलक्षण कारीगरी देखकर हर्षित हुए। कितनी बढ़िया कारीगरी थी! आंगन में, दीवालों में और दहलानों में बहुमूल्य और चमकदार मकराणे का पाषाण जड़ा था। उस पर अत्यन्त बारीक और सुन्दर मीनाकारी का काम अपनी अलग ही छटा दिखला रहा था। स्थान-स्थान पर सात्विक, भव्य और सुन्दर चित्र बने थे। सभी चित्रों में अनूठे-अनूठे भाव अंकित थे वे ऐसे सजीव प्रतीत होते थे, मानों अभी बोल उठेंगे।

सम्राट् वहीं एक स्थान पर बैठने को उद्यत हुए। तब भद्रा सेठानी ने कहा—अन्नदाता! यह नौकरों-चाकरों के लिए है। आप आगे पधारने की कृपा कीजिए।

सम्राट् आगे बढ़े और दूसरे मंजिल में पहुंचे। यहाँ की शोभा देखकर तो उनके हृदय में अपार हर्ष हुआ। यहाँ पाषाण के स्थान पर सर्वत्र ताम्र और पीतल जगमगा रहा था। श्रेणिक ने समझा यही शालिभद्र का निवास स्थान होगा। तब भद्रा ने कहा—नरनाथ, यह रसोइयों और दासियों के रहने की जगह है। आप थोड़ा कष्ट और कीजिये।

अब सम्राट् तीसरी मंजिल पर जा पहुंचे। इस पर सर्वत्र चाँदी और सोना ही दृष्टिगोचर होता था। फर्श चाँदी का, दीवालें चाँदी की और बीच-बीच में सोना था। जगह-जगह हीरों और मोतियों के झूमके लटक रहे थे। विशाल और सुन्दर कमरों में बहुमूल्य बिछात थी। तोषक एवं तकिया सजे हुए थे। सभी पर अत्यन्त कीमती जरी का काम था। उन कमरों में कितने ही व्यापारी सेठ बैठे लेन-देन की बातें कर रहे थे। भूपाल ने समझा इन्हीं में कोई शालिभद्र होगा। वह वहाँ बैठने को उद्यत होने लगे तब भद्रा ने सम्राट के मनोभाव समझ कर हाथ जोड़ कर कहा—मगधाधिपति! यह मुनीमों का स्थान है। दुकान है। थोड़ा कष्ट और कीजिए।

इसके बाद सम्राट् कुछ और आगे बढ़कर चौथी मंजिल पर पहुँचे। द्वार पर पहुँचे ही थे कि उन्हें सामने जल का प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। सम्राट् दुविधा में पड़ गये कि वास्तव में यह स्फटिक का फर्श है या जल है? मगर श्रेणिक भी चतुर थे अपने संशय का निवारण करने के लिए उन्होंने हाथ में पहनी अंगूठी निकाली और सामने डाल दी। ऐसा करने से संशय दूर हो गया। वह समझ गये कि यह जल नहीं, स्फटिक का फर्श है किन्तु संकोचवश वह अंगूठी न उठा सके। अंगूठी के चले जाने से उनके चेहरे पर किंचित् उदासी आ गई। उन्होंने देखा, वहीं

हुई अंगूठी के अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहे हैं। कौन-सी असली अंगूठी है और कौन-सा प्रतिबिम्ब है, यह निश्चय करना कठिन है ! निश्चय किये बिना उठाने के लिए हाथ फैलाने मे हँसी होगी। अंगूठी साधारण नहीं थी। सवा करोड़ किसे कहते हैं ! राजा सोचने लगा—यहां आकर सवा करोड़ की हानि उठाई !

भद्रा सेठानी राजा के अभिप्राय को समझ गई। वह उसी समय अपने भण्डार में जाकर पस भर अंगूठियां लाई और राजा को भेंट कर दीं। राजा उन अंगूठियों को देखकर चकित रह गया। एक-एक अंगूठी अनमोल थी। इनके मूल्य के सामने राजा की अंगूठी किसी गिनती में नहीं थी। राजा ने एक अंगूठी अपनी उंगली में पहन कर चारों ओर देखा तो दंग रह गया। अपूर्व उद्योत हो रहा था। दिव्य रत्नों की अंगूठियों की आभा चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाश को भी मात कर रही थी।

प्रत्येक अंगूठी से पाँचों वर्णों की अपूर्व सुन्दर आभा प्रकट हो रही थी। वह ऐसी जान पड़ती थीं जैसे देव विमान हों।

सम्राट् कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि इस पृथ्वी पर इतना विशाल वैभव भी हो सकता है ! उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानों सशरीर स्वर्गलोक में प्रविष्ट होकर वहाँ के दिव्य और अलौकिक वैभव का अवलोकन कर रहे हैं।

सम्राट् विस्मय में डूबे थे। उसी समय भद्रा ने कहा—महाराज, यह मेरा निवासस्थान है। अगले आवास में पदार्पण कीजिए। वहाँ कुमार शालिभद्र रहता है। मगर श्रेणिक थक कर यहीं बैठ गये। उन्होंने कहा—मैं यहाँ तक आया हूँ। आप

सम्राट् आगे बढ़े और दूसरे मंजिल में पहुँचे। यहाँ की शोभा देखकर तो उनके हृदय में अपार हर्ष हुआ। यहाँ पाषाण के स्थान पर सर्वत्र ताम्र और पीतल जगमगा रहा था। श्रेणिक ने समझा यही शालिभद्र का निवास स्थान होगा। तब भद्रा ने कहा—नरनाथ, यह रसोइयों और दासियों के रहने की जगह है। आप थोड़ा कष्ठ और कीजिये।

अब सम्राट् तीसरी मंजिल पर जा पहुँचे। इस पर सर्वत्र चाँदी और सोना ही दृष्टिगोचर होता था। फर्श चाँदी का, दीवालें चाँदी की और बीच-बीच में सोना था। जगह-जगह हीरों और मोतियों के झूमके लटक रहे थे। विशाल और सुन्दर कमरों में बहुमूल्य बिछात थीं। तोषक एवं तकिया सजे हुए थे। सभी पर अत्यन्त कीमती जरी का काम था। उन कमरों में कितने ही व्यापारी सेठ बैठे लेन-देन की बातें कर रहे थे। भूपाल ने समझा इन्हीं में कोई शालिभद्र होगा। वह वहाँ बैठने को उद्यत होने लगे तब भद्रा ने सम्राट् के मनोभाव समझ कर हाथ जोड़ कर कहा–मगधाधिपति! यह मुनीमों का स्थान है। दुकान है। थोड़ा कष्ट और कीजिए।

इसके बाद सम्राट् कुछ और आगे बढ़कर चौथी मंजिल पर पहुँचे। द्वार पर पहुँचे ही थे कि उन्हें सामने जल का प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। सम्राट् दुविधा में पड़ गये कि वास्तव में यह स्फटिक का फर्श है या जल है? मगर श्रेणिक भी चतुर थे अपने संशय का निवारण करने के लिए उन्होंने हाथ में पहनी अंगूठी निकाली और सामने डाल दी। ऐसा करने से संशय दूर हो गया। वह समझ गये कि यह जल नहीं, स्फटिक का फर्श है किन्तु संकोचवश वह अंगूठी न उठा सके। अंगूठी के चले जाने से उनके चेहरे पर किंचित् उदासी आ गई। उन्होंने देखा, पड़ी

हुई अंगूठी के अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहे हैं। कौन-सी असली अंगूठी है और कौन-सा प्रतिबिम्ब है, यह निश्चय करना कठिन है! निश्चय किये बिना उठाने के लिए हाथ फैलाने मे हँसी होगी। अंगूठी साधारण नहीं थी। सवा करोड़ किसे कहते हैं! राजा सोचने लगा—यहां आकर सवा करोड़ की हानि उठाई!

भद्रा सेठानी राजा के अभिप्राय को समझ गई। वह उसी समय अपने भण्डार में जाकर पस भर अंगूठियां लाई और राजा को भेंट कर दीं। राजा उन अंगूठियों को देखकर चकित रह गया। एक-एक अंगूठी अनमोल थी। इनके मूल्य के सामने राजा की अंगूठी किसी गिनती में नहीं थी। राजा ने एक अंगूठी अपनी उंगली में पहन कर चारों ओर देखा तो दंग रह गया। अपूर्व उद्योत हो रहा था। दिव्य रत्नों की अंगूठियों की आभा चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाश को भी मात कर रही थी।

प्रत्येक अंगूठी से पाँचों वर्णों की अपूर्व सुन्दर आभा प्रकट हो रही थी। वह ऐसी जान पड़ती थीं जैसे देव विमान हों।

सम्राट् कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि इस पृथ्वी पर इतना विशाल वैभव भी हो सकता है! उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानों सशरीर स्वर्गलोक में प्रविष्ट होकर वहाँ के दिव्य और अलौकिक वैभव का अवलोकन कर रहे हैं।

सम्राट् विस्मय में डूबे थे। उसी समय भद्रा ने कहा—महाराज, यह मेरा निवासस्थान है। अगले आवास में पदार्पण कीजिए। वहाँ कुमार शालिभद्र रहता है। मगर श्रेणिक थक कर वहीं बैठ गये। उन्होंने कहा—मैं यहाँ तक आया हूँ। आप

इतना तो कीजिए कि शालिभद्र को यहाँ ले आइए। हमारी और कुँवर की यहीं भेंट हो।

भद्रा ने कहा–ठीक है, अन्नदाता की आज्ञा उचित है।

यह कह कर सेठानी ने छठी मंजिल पर स्थित शालिभद्र को पुकारा। कहा–बेटा, शीघ्र आओ। नरनाथ श्रेणिक उत्सुकता से तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुझसे मिलने के लिए ही यहाँ तक पधारने का कष्ट किया है।

माता की अधूरी बात सुनकर शालिभद्र विचार करने लगे–माताजी ने पहले तो कभी कोई बात पूछी नहीं। आज क्यों पूछ रही हैं? श्रेणिक कोई बहुमूल्य किराना जान पड़ता है। इसी से मुझे बुला रही हैं। यह सोचकर उसने कहा—माँ, आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। आप जितना दाम देना चाहें, दे दीजिए। सारा का सारा श्रेणिक खरीद लीजिए। मुझ से पूछने की क्या आवश्यकता है?

यह उत्तर सुन कर सेठानी सुभद्रा लज्जित हो गई। उन्हें लगा कि कहीं राजा ने यह बात सुन ली तो वह अपना अपमान समझेंगे और शालिभद्र को मूर्ख समझ लेंगे।

निदान भद्रा ने आगे जाकर शालिभद्र को समझाया–बेटा, तू इतना बड़ा होकर भी इतना नादान है! श्रेणिक व्यापार की वस्तु नहीं, अपने नाथ हैं। अपने सुख-दुःख उन्हीं की मुट्ठी में हैं। जल्दी चल, भोले, वे तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

माता के वचन सुनकर शालिभद्र ने अपनी जिन्दगी में पहली बार दुःख का अनुभव किया। उन्हें हृदय में काँटा-सा चुभ गया। वह सोचने लगे—अफ़सोस! मेरे सिर पर भी कोई

नाथ है ! मैं ने पूर्वभव में पूरा पुण्य उपार्जन नहीं किया, इसी कारण मुझे अपने ऊपर नाथ सहन करना पड़ा ! और फिर मेरा सुख उनके हाथ में है ! मैं पराधीन होकर जीवन यापन कर रहा हूँ ! इन पराधीन सुखों में आसक्त हो रहा हूँ ! मेरी इस आसक्ति को धिक्कार है ! स्वतंत्र विचरण करने वाले पशु और पक्षी भी मुझसे अच्छे हैं ! शालिभद्र के सर्वथा निराकुल हृदय में आकुलता ने आज पहली बार प्रवेश किया। हृदय में डक चुभ गया।

शालिभद्र ने फिर सोचा—चलो, देखें तो सही, नरनाथ कैसे हैं !

वह राजा से मिलने के लिए उठे तो सत्कार करने के लिए उनकी बत्तीसों बहुएँ भी उठ खड़ी हुई। चौंसठ नूपुर एक साथ झनझना उठे। उनसे मधुर ध्वनि उठी कि हठात् श्रेणिक का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। वह कान लगा कर उस नूपुरनाद को सुनने लगे।

तब भद्रा ने कहा—पृथ्वीनाथ, कुमार अब आ रहा है। उसके आगमन के उपलक्ष में बहुओं ने उसका सत्कार किया है। इसी कारण यह नूपुरों की ध्वनि सुनाई दी है।

इतने में गम्भीर मुद्रा से शालिभद्र कुमार ही आ पहुँचे। उन्हें देखकर सम्राट् और उनके साथी अत्यन्त हर्षित हुए। अद्भुत रूप सौन्दर्य है अनोखी भव्यता है, अनूठी सौम्य छवि है ! चम-चमाता हुआ चेहरा चन्द्रमा को भी मात कर रहा है। असाधारण सात्विकता आनन से झर रही है। शालिभद्र मानों पुण्य की साक्षात् प्रतिमा है, जो मनुष्य का रूप धारण करके

सामने आई है। श्रेणिक ने प्रेमपरिपूरित होकर शालिभद्र को अपनी गोद में बिठला लिया।

एक सम्राट् किसी प्रजाजन को अपनी गोद में बिठलावे, यह उसका बड़े से बड़ा गौरव और सम्मान समझा जाता है। परन्तु शालिभद्र का मक्खन सरीखा मृदुल गात सम्राट् के शरीर की स्वाभाविक गर्मी को भी सहन न कर सका। उनके अंग-अंग पसीने से तर हो गये। यह अवस्था देख कर सम्राट् और दूसरे लोग दंग रह गये। तब श्रेणिक ने कहा—माँजी, कुंवर को अपने स्थान पर भेज दीजिए। यह अतिशय भाग्यवान पुण्य पुरुष हैं। इन्हें यहाँ बैठने में कष्ट अनुभव हो रहा है।

शालिभद्र उठ खड़े हुए। यथोचित शिष्टाचार पालन करके वह अपने आवास की ओर चले गये। परन्तु अब उनके विचारों में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। हृदय को जो आघात लग गया था, वह दूर न हो सका! बार-बार मन में यही बात चक्कर लगाने लगी कि मैं पूर्ण रूप से स्वाधीन नहीं हूं। मेरे सिर पर नाथ है! मेरे पुण्य में कमी रह गई है। अब मुझे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मैं पूर्ण रूप से स्वाधीन बनूँ। मेरे ऊपर कोई नाथ न हो। इस प्रकार की स्वाधीन दशा मुक्ति प्राप्त करने पर ही हो सकती है, अतएव मुक्ति की ही साधना में तत्पर होना चाहिए। पहले जो त्रुटि रह गई है, उसकी इसभव में पूर्ति करना ही योग्य है।

पुण्यशाली पुरुषों की आत्मा में धर्म के सत्संस्कार विद्यमान रहते हैं। कोई साधारण-सा निमित्त मिलते ही वे जागृत हो जाते हैं। शालिभद्र महान् पुण्यपुरुष थे उनकी आत्मा में उच्च संस्कार छिपे हुए थे। अतएव भद्रा माता के एक ही वाक्य ने

उन संस्कारों को जागृत कर दिया। उनके हृदय सागर में वैराग्य की ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। उन्हें मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा होने लगी।

सब जगह भावनाओं का ही खेल दिखाई देता है। भावना बदलने पर सारी सृष्टि का रूप बदल जाता है। अभी तक शालिभद्र कुमार आमोद-प्रमोद और भोगोपभोग में ही निमग्न थे। संसार के सर्वोत्कृष्ट सुख भोग रहे थे। मर्त्य-लोक में दिव्य सुखों को भोगने वाले थे। परन्तु आज भावना में परिवर्तन होते ही सब सुख उन्हें दुःख रूप प्रतीत होने लगे। सभी में निस्सारता का आभास होने लगा। उनके चित्त में उद्विग्नता व्याप गई। वह विचार करने लगे—

जीवितं मरणान्तं हि, जरान्ते रूपयौवने।
सम्पदा विपदान्ता वा, अत्र को रतिमाप्नुयात् ॥

अहा! इस संसार में सुख कहाँ है? जीवन का अन्त मृत्यु में है, सुन्दर रूप और यौवन का अन्तिम परिणाम जरा-बुढ़ापा है और सम्पत्ति का अन्त विपत्ति में है संसार की इन वस्तुओं में कौन विवेकवान् अनुराग धारण कर सकता है? अतः—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयं,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

अर्थात् समग्र संसार भयमय है। संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं, जिसका आश्रय पाकर मनुष्य निर्भय रह सकता हो।

यही नहीं, सभी वस्तुएँ उलटी भय को उत्पन्न करने वाली हैं भोग भोगने से रोग उत्पन्न होने का भय बना रहता है। उच्चकुल पा लिया हो तो उससे भी च्युत होने का भय रहता है। धन की प्रचुरता हो तो राजा का डर सताता रहता रहता है कि कहीं किसी बहाने वह लूट न ले। मौन रहने में दीनता का भय रहता है बल हो तो शत्रु की भीति बनी रहती है। सुन्दर रूप को ग्रस लेने के लिये बुढ़ापे का भय सताता रहता है। शास्त्रों का गंभीर ज्ञान प्राप्त हो जाय तो वाद-विवाद का भय बना रहता है। सद्‌गुणों को कलंकमय बना देने वाले दुर्जनों का भय है! इस प्रकार सारे संसार की समस्त वस्तुएँ भय परिपूर्ण हैं। इस धरातल पर कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो मनुष्य को सदा के लिए निर्भय बना दे। वास्तव में पर-पदार्थ का अवलम्बन ही दुःख और भय का कारण है। हाँ, संसार में यदि कोई भयहीन वस्तु है तो वह वैराग्य ही है। अन्तर में वैराग्यभाव की जागृति होने पर निर्भयता आने लगती है। ज्यों-ज्यों वैराग्य की वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों निर्भयता भी बढ़ती जाती है। जब किसी भी परवस्तु पर लेश मात्र भी आसक्ति अथवा अनुरक्ति नहीं रह जाती, तब पूर्ण रूप से निर्भयता का विकास होता है। उसी निर्भयता में सच्चा सुख है।

शालिभद्र के बाह्य जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उन्हें जो सुख पहले प्राप्त थे, वही सब आज भी सुलभ हैं। किसी वस्तु की कमी नहीं हो गई थी। फिर भी आज उनके लिए सारी सृष्टि ही जैसे बदली हुई जान पड़ती थी। विश्व का वरिष्ठ वैभव उन्हें निस्सार और तुच्छ दिखाई देने लगा।

श्रेणिक से विदा लेकर शालिभद्र कुमार जब अपने स्थान पर पहुँचे तो उनकी भावना एकदम परिवर्तित हो गई थी। और

जब भावना बदलती है तो चेहरा भी उसका अनुकरण करता है। व्यवहार में भी अन्तर पड़े विना नहीं रहता। मायावी जनों की बात न्यारी, सरलहृदय के पुरुषों की भावना और व्यवहार में एकरूपता होती है। वे दंभ नहीं करते। तदनुसार शालिभद्र के चेहरे पर भी नवीन भाव झलकने लगे और व्यवहार में भी परिवर्त्तन आने लगा।

उनकी बत्तीसों पत्नियाँ जब उनके समीप आईं तो उन्हें उदास देख दंग रह गईं। शालिभद्र अत्यन्त गंभीर विचार में डूबे हुए थे। सदा की भाँति प्रफुल्लता नहीं दिखाई देती थी। नेत्रों में स्नेह की लालिमा वह नहीं रह गई थी। व्यवहार में एकदम अन्तर पड़ गया था। यह स्थिति देख कर उनको बड़ी चिन्ता हुई। तब वह कहने लगीं—नाथ, आज उदासीन क्यों हैं? इस विरक्ति का अचानक क्या कारण हो गया? क्या शरीर में कोई वेदना है? कोई मानसिक चिन्ता सता रही है? कृपा कर हमारी जिज्ञासा शान्त कीजिए।

अपनी पत्नियों का यह कथन सुन कर भी शालिभद्र मौन ही रहे। वे जिस विचारप्रवाह में वह रहे थे, उसी में बहते रहे। उन्होंने अपनी पत्नियों की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

यह हाल देख कर पत्नियों की चिन्ता बढ़ गई। उनकी समझ में न आया कि अकस्मात् ही प्राणनाथ को क्या हो गया है!

निराश होकर वह कहने लगीं—प्राणधन! क्या हम लोगों से कोई अपराध हो गया है? आप उदारचेता और दयालु हैं। कोई अपराध हो गया हो तो उसके लिए उदारतापूर्वक

यही नहीं, सभी वस्तुएँ उलटी भय को उत्पन्न करने वाली हैं भोग भोगने से रोग उत्पन्न होने का भय बना रहता है। उच्चकुल पा लिया हो तो उससे भी च्युत होने का भय रहता है। धन की प्रचुरता हो तो राजा का डर सताता रहता रहता है कि कहीं किसी बहाने वह लूट न ले। मौन रहने में दीनता का भय रहता है बल हो तो शत्रु की भीति बनी रहती है। सुन्दर रूप को ग्रस लेने के लिये बुढ़ापे का भय सताता रहता है। शास्त्रों का गंभीर ज्ञान प्राप्त हो जाय तो वाद-विवाद का भय बना रहता है। सद्गुणों को कलंकमय बना देने वाले दुर्जनों का भय है! इस प्रकार सारे संसार की समस्त वस्तुएँ भय परिपूर्ण हैं। इस धरातल पर कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो मनुष्य को सदा के लिए निर्भय बना दे। वास्तव में पर-पदार्थ का अवलम्बन ही दुःख और भय का कारण है। हाँ, संसार में यदि कोई भयहीन वस्तु है तो वह वैराग्य ही है। अन्तर में वैराग्यभाव की जागृति होने पर निर्भयता आने लगती है। ज्यों-ज्यों वैराग्य की वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों निर्भयता भी बढ़ती जाती है। जब किसी भी परवस्तु पर लेश मात्र भी आसक्ति अथवा अनुरक्ति नहीं रह जाती, तब पूर्ण रूप से निर्भयता का विकास होता है। उसी निर्भयता में सच्चा सुख है।

शालिभद्र के बाह्य जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उन्हें जो सुख पहले प्राप्त थे, वही सब आज भी सुलभ हैं। किसी वस्तु की कमी नहीं हो गई थी। फिर भी आज उनके लिए सारी सृष्टि ही जैसे बदली हुई जान पड़ती थी। विश्व का वरिष्ठ वैभव उन्हें निस्सार और तुच्छ दिखाई देने लगा।

श्रेणिक से विदा लेकर शालिभद्र कुमार जब अपने स्थान पर पहुँचे तो उनकी भावना एकदम परिवर्तित हो गई थी। और

जरा ऊपर चल कर तो देखिए। आपके कुंवरजी को न जाने क्या हो गया है! वे चिन्तित और उद्विग्न से प्रतीत होते हैं। बहुत पूछने पर भी कुछ बतलाते नहीं, मौन धारण किये बैठे हैं!

श्रेणिक अपने दल के साथ रवाना हो चुके थे। भद्रा शालिभद्र के विषय में यह बात सुनकर चिन्तातुर हो गई। उन्होंने सोचा आज बेटे के जीवन में एक नवीन घटना घटित हुई है। वह किसी से मिलता-जुलता नहीं था। आज ही महाराज और उनके दल के सामने आया है। संभव है, इसी घटना के प्रति उसे अरुचि उत्पन्न हुई हो। मैं जाकर समझा दूंगी।

यह सोच कर माता भद्रा शालिभद्र के पास पहुँची। शालिभद्र ने अपने आसन पर खड़े होकर उनका सत्कार किया। माता ने देखा — सचमुच ही आज शालिभद्र उदास है। उनके हृदय में यह दृश्य देखकर अनेक प्रकार के तर्कवितर्क उत्पन्न होने लगे। वास्तव में माता का हृदय अत्यन्त ममतामय होता है और उस स्थिति में, जब माता विधवा हो और एक मात्र पुत्र ही उसके जीवन का अवलम्बन हो, माता अपने पुत्र को उदास नहीं देख सकती। भद्रा माता की ऐसी ही स्थिति थी। संसार के अपार ऐश्वर्य की सार्थकता शालिभद्र की सकुशलता पर ही निर्भर थी। वही उनकी समस्त आशाओं का एक मात्र केन्द्र था। वही उनका जीवन और प्राण था। अतएव शालिभद्र की उदासी उनकी माता के लिए असह्य थी।

भद्रा माता ने चिन्तित भाव से पूछा—वत्स, उदास यों हो? इस मर्त्यलोक में जो सुख किसी को प्राप्त नहीं, वह हें प्राप्त हैं। फिर उदास होने का क्या कारण है? फिर भी

जो कारण हो, निस्संकोच कह दो। तुम्हारी आकांक्षाओं को पूर्ण करने से बढ़ कर मुझे दूसरा सुख नहीं हो सकता। तुम्हें प्रसन्न देखकर मैं प्रसन्न रह सकती हूँ।

माता की वात्सल्य के पीयूष-रस से पूर्ण बात सुनकर शालिभद्र कुछ क्षणों के लिए दुविधा में पड़ गये। वह सोचने लगे—मैं अपनी इच्छा स्पष्ट रूप से प्रकट न करूँ तो माता को कष्ट होगा। स्पष्ट रूप से प्रकट किये बिना मेरा मनोरथ भी पूरा नहीं हो सकता। और अगर अपनी मनोभावना प्रकट करता हूँ तो और भी अधिक दुःख होगा। ऐसी विषम स्थिति में क्या करना चाहिए?

मानव-जीवन में अनेक बार ऐसे प्रसंग आते हैं, जब मनुष्य को गहरी दुविधा का सामना करना पड़ता है। एक ओर कर्त्तव्य की बलवती प्रेरणा उसे एक पथ की ओर आकर्षित करती है और दूसरी ओर मोहममता का चिर-अभ्यस्त आकर्षण दूसरी ओर खींच ले जाना चाहता है। इस द्वन्द्व में कई लोग मोह-ममता को जीत कर कर्त्तव्य के पथ पर अग्रसर हो जाते हैं और कई कचिया जाते हैं। वे कर्त्तव्य से विमुख होकर मोह के मार्ग के मुसाफिर बन जाते हैं।

शालिभद्र पुण्यशाली और दृढ़ मनोबल से सम्पन्न थे। मोह-ममता उन्हें पराजित नहीं कर सकी। तत्काल उनकी बुद्धि ने अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। उन्होंने सोचा-मेरे जीवन के ये क्षण बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। अगर मैं मानसिक दुर्बलता का शिकार हो गया तो सारा जीवन वृथा हो जायगा। अतएव इस समय दृढ़ मनोबल से ही काम लेना चाहिए।

इस प्रकार विचार कर शालिभद्र ने अपनी माता से कहा—माँ, आप कहती हैं कि आप मेरी प्रसन्नता में प्रसन्न हैं, परंतु क्या यह उचित है ? यह परावलम्बी प्रसन्नता क्या सदैव स्थिर रह सकती है ? असली सुख तो अपने ही ऊपर निर्भर रहने में है। जो सुख अपनी ही आत्मा से उत्पन्न होता है, किसी भी बाह्य पदार्थ पर अवलंबित नहीं होता, वह असली सुख है। मान लीजिए, मैं आज हूँ और कल न रहूं तो आपका सुख कैसे कायम रहेगा ?

भद्रा—बेटा, कैसी बहकी-बहकी बातें करता है !

शालिभद्र—यह बहक नहीं है माँ, तत्त्वज्ञानियों के अनुभव का सार है।

भद्रा—ठीक है, मगर माता का हृदय ऐसी अमंगलमयी बात सुनना भी नहीं चाहता।

शालिभद्र—हमारे और आपके चाहने न चाहने से क्या होता है ? जो सत्य है, उसकी उपेक्षा करने से क्या होगा ? अटल सत्य तो सामने आएगा ही। प्रकृति का अनिवार्य विधान हमारी इच्छा की परवाह नहीं करता। संयोग के पश्चात् होने वाले वियोग को टालना किसी के सामर्थ्य में नहीं है।

भद्रा—मगर इस समय ऐसी बातें करने से क्या लाभ है ?

शालिभद्र—बाढ़ आने से पहले पाल बाँधने से जो लाभ होता है, वही इस समय इन बातों का लाभ है। मनुष्य अपने मन को जागृत रक्खे और ममता के संस्कारों पर विवेक से विजय प्राप्त करे। अधिक से अधिक समभाव को मन में जगाये

ऐसा करने से ही अवसर आने पर वह अपने चित्त को स्थिर रख सकेगा। ऐन मौके पर क्या हो सकता है!

भद्रा—तू तो पहेली बुझाता है। साफ बात नहीं कहता।

शालिभद्र—साफ साफ ही कहता हूं माताजी! आज मैंने समझ लिया है कि पराधीनता में सुख नहीं है। संसार के वैभव को सुख का साधन मान बैठना बाल-जीवों का काम है। असली सुख आत्मनिर्भर होने में है। मैं पराधीनता के पाश से मुक्त होना चाहता हूँ।

भद्रा—तुम तो स्वाधीन ही हो वत्स, कौन तुम्हारे ऊपर हुक्म चलाता है?

शालिभद्र—माताजी, तनिक गंभीरता से विचार करो। मेरा समस्त सुख पर के ऊपर ही निर्भर है। दुनिया की वस्तुओं मे मैं सुख पाने पाने का प्रयास कर रहा हूँ। परन्तु यही वास्तव में दुःख है।

'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।'

मैं सब प्रकार की पराधीनता त्याग कर आत्मनिष्ठ बनना चाहता हूं। संयम ग्रहण करने की मेरी अभिलाषा है।

भद्रा—वत्स, अभी ऐसा मत सोचो। तुम्हारी पत्नियाँ अभी नवयुवती हैं। वे किसके सहारे जीवित रहेंगी? मैं वृद्धा हो चुकी हूं। नदी किनारे का वृक्ष हूँ। कभी भी चल दूंगी। तुम सब को अनाथ मत करो।

शालिभद्र—मैं स्वयं अनाथ हूं। मेरे भी तो दूसरे नाथ हैं ! जो स्वयं ही अनाथ है वह दूसरे को सनाथ कैसे बनाएगा ?

भद्रा—वत्स, जरा और सोचो। शीघ्रता न करो !

शालिभद्र—माताजी, यह जीवन चंचल है-जल के बुलबुले के समान। इसका क्या भरोसा है ? अभी है, अभी नहीं। भगवान् का आदेश है कि धर्म के साधन में क्षण भर भी प्रमाद करना योग्य नहीं।

इस प्रकार जब भद्रा माता ने देखा कि शालिभद्र किसी भी प्रकार गृहस्थी में नहीं रहेगा तो उन्होंने कहा—अच्छा तेरी इच्छा यही है तो यही सही। परन्तु एकदम सबका परित्याग कर देना उचित नहीं है। धीरे-धीरे त्याग कर संयम पालना।

शालिभद्र ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया। निश्चित हो गया कि वे प्रतिदिन एक-एक पत्नी का परित्याग करेंगे और बत्तीस दिनों में बत्तीसों का त्याग करके तेतीसवें दिन संयम ग्रहण कर लेंगे। यही क्रम चालू हो गया। इस बीच उनके परिवार ने उन्हें दीक्षा से रोकने के लिए भरसक प्रयत्न किये, परन्तु शालिभद्र के अन्तःकरण पर वैराग्य का इतना प्रबल प्रभाव हो चुका था कि वे अपने संकल्प से विमुख न हो सके।

२७

अभिनिष्क्रमण
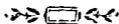
उधर धन्नाकुमार, राजगृही में सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे। उनकी आठों पत्नियाँ पतिसेवापरायण थीं, प्रेम की प्रतिमा थीं और धन्नाकुमार के साहचर्य से आनन्द के साथ धर्मध्यान करती हुई रहती थीं। पाठकों को विदित ही है कि धन्नाकुमार के पास चिन्तामणि रत्न था। उससे अनायास ही उनकी सब आवश्यकताएँ और अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती थीं। लक्ष्मी तो उनकी दासी बन कर रहती थी। किसी भी वस्तु की उन्हें कमी नहीं थी। दास-दासियों का झुण्ड का झुण्ड उनकी आज्ञा उठाने में तत्पर रहता था। फिर भी धन्नाकुमार की पत्नियाँ अपने ही हाथ से उनका कार्य करती थीं और ऐसा करने में ही उन्हें आनन्द और सन्तोष मिलता था। कहा है:—

छायेवानुगता स्वच्छा, सखीव हितकर्मसु ।
दासीवदिष्टकार्येषु, भार्या भर्त्तुः सदा भवेत् ॥

अर्थात्—सुयोग्य पत्नी वही समझी जाती है जो छाया की भाँति अपने पति का अनुसरण करने वाली हो, जिसके अन्तःकरण में मलिनता न हो, जो पति के हितकर कार्यों में

मित्र की भाँति उद्यत रहती हो और पति के इष्ट कार्यों में दासी के समान व्यवहार करती हो।

पतिव्रता स्त्री जब तक अपने पति का कार्य अपने हाथों से नहीं करती तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। वह पति की स्वयं ही सेवा करने में सुख का अनुभव करती है। ऐसा करने से पति-पत्नी में अपूर्व अनुराग बढ़ता जाता है और जीवन परम सुखमय बन जाता है।

धन्नाकुमार की सभी पत्नियाँ ऊँचे-ऊँचे कुलों की, सुशिक्षिता, संस्कारवती और विवेकशील थीं। दाम्पत्यजीवन को मधुर बनाने में पति-सेवा किस प्रकार उपयोगी होती है, यह उन्हें भलीभांति ज्ञात था। अतः वे कुमार का कार्य प्रायः अपने हाथ से ही किया करती थीं।

एक दिन कुमार स्नान कर रहे थे। आठों पत्नियाँ बड़े चाव से उन्हें स्नान करा रही थीं। विनोद का वातावरण था। मगर सुभद्रा का हृदय उस समय बेचैन था। अपने भाई—शालिभद्र की दीक्षा का संवाद जब से उसने सुना था तभी से वह व्याकुल थी। उसके एक ही भाई था वह भी साधु बनने की तैयारी कर रहा था! मायका सूना हो रहा था। इस मनोवेदना से उसे बड़ी व्याकुलता थी। आज इस समय, पति-पत्नियों में यहाँ जो विनोद हो रहा था, उससे उसे अपनी भौजाइयों का स्मरण हो आया। वह सोचने लगी—हम सब यहाँ आनन्द में मग्न हैं, पर भाई के वैराग्य के कारण मेरी भौजाइयों की क्या स्थिति हो रही होगी? वह बेचारी कितनी निराश होंगी? थोड़े ही दिनों में उनके जीवन का नन्दन कानन सूखकर मरुस्थल बन जायगा।

इस प्रकार विचार करते-करते सुभद्रा का हृदय उमड़ पड़ा। उसके नेत्रों से गर्म-गर्म आँसुओं की कुछ बूँदें टपक पड़ीं।

धन्ना के शरीर पर आँसुओं की बूँदें पड़ीं तो उन्होंने सुभद्रा के मुख की ओर देखा। उसकी आँखें गीलीं थीं। अपनी प्राणप्रिया पत्नी की यह स्थिति देखकर कुमार को अत्यन्त विस्मय हुआ। वह सोचने लगे—सुभद्रा साधारण नारी नहीं है। उसने अपने जीवन में उतार और चढ़ाव देखा है। एक दिन वह भी संकट में पड़ी थी और मिट्टी के टोकरे माथे पर रख कर ढोती थी। उस समय भी वह व्याकुल नहीं दिखाई दी थी। तब आज किस प्रबल वेदना ने उसे व्याकुल बना दिया है? मेरी उपस्थिति में मेरी पत्नी को ऐसी क्या पीड़ा हो सकती है कि उसे अश्रु प्रवाहित करने पड़ें।

धन्नाकुमार ने अत्यन्त स्नेह के साथ सुभद्रा से पूछा—प्रिये! हर्ष के इस प्रसंग पर शोक का क्या कारण है?

सुभद्रा का गला भर आया। उसके मुख से एक भी शब्द न निकला। वह हिचकियाँ लेकर अधिक रुदन करने लगी। धन्ना कुमार को अत्यन्त विस्मय हुआ। विषम प्रसंग पर भी चट्टान की भाँति अडिग रहने वाली सुभद्रा आज इतनी अधीर क्यों हो रही है, यह बात किसी की समझ में नहीं आई। उसकी सपत्नियाँ भी चकित हो रहीं थोड़ी देर के लिए चहल-पहल बंद हो गई। वातावरण में स्तब्धता छा गई।

धन्नाजी सुभद्रा की इस स्थिति को सहन न कर सके। तब उन्होंने पुनः प्रश्न किया—सुभद्रे! तुम्हारी यह विह्वलता पहली ही बार देख रहा हूँ। मालूम होता है, तुम्हारे हृदय को

कोई गहरी चोट लगी। परन्तु विचार करने पर भी उस चोट का कारण समझ में नहीं आता। क्या मेरे किसी व्यवहार से तुम्हें कष्ट पहुँचा है?

सुभद्रा—नाथ! आप जैसे विवेकशील और कर्त्तव्य-परायण पति की ओर से कदापि दुर्व्यवहार नहीं होता।

धन्ना—तो क्या किसी सपत्नी के व्यवहार से तुम्हें कष्ट हुआ?

सुभद्रा—हम आठों सगी बहिनों की तरह रहती हैं। हमारे मन में कभी सपत्नी भाव उत्पन्न नहीं हुआ। इनसे मुझे क्या कष्ट हो सकता है। हम सब आपस में सहेलियाँ हैं।

धन्ना—तो फिर यह रुदन क्यों?

सुभद्रा—आपको विदित ही है कि मेरा एक ही भाई है। उसी की बदौलत मेरा पीहर आबाद है। और वही संयम लेकर साधु बनने की तैयारी कर रहा है। मेरा पीहर उजड़ रहा है। आपके साथ आनन्दविनोद करते-करते मुझे अपनी भौजाइयों का भी स्मरण हो आया। वे दुनियादारी से अनभिज्ञ भोली युवतियां भाई के साधु बन जाने पर किसके आधार पर जीएँगी? बड़ी विषम परिस्थिति है।

धन्ना—क्या शालिभद्र दीक्षा ले रहे हैं?

सुभद्रा—जी हाँ?

धन्ना—कब? सुना ही नहीं!

सुभद्रा—वह तो एक दम तैयार हो गये थे, परन्तु माँ के बहुत समझाने पर कुछ दिन रुक गये हैं। प्रतिदिन एक-एक

इस प्रकार विचार करते-करते सुभद्रा का हृदय उमड़ पड़ा। उसके नेत्रों से गर्म-गर्म आँसुओं की कुछ बूंदें टपक पड़ीं।

धन्ना के शरीर पर आँसुओं की बूंदें पड़ीं तो उन्होंने सुभद्रा के मुख की ओर देखा। उसकी आँखें गीली थीं। अपनी प्राणप्रिया पत्नी की यह स्थिति देखकर कुमार को अत्यन्त विस्मय हुआ। वह सोचने लगे—सुभद्रा साधारण नारी नहीं है। उसने अपने जीवन में उतार और चढ़ाव देखा है। एक दिन वह भी संकट में पड़ी थी और मिट्टी के टोकरे माथे पर रख कर ढोती थी। उस समय भी वह व्याकुल नहीं दिखाई दी थी। तब आज किस प्रबल वेदना ने उसे व्याकुल बना दिया है? मेरी उपस्थिति में मेरी पत्नी को ऐसी क्या पीड़ा हो सकती है कि उसे अश्रु प्रवाहित करने पड़ें।

धन्नाकुमार ने अत्यन्त स्नेह के साथ सुभद्रा से पूछा—प्रिये! हर्ष के इस प्रसंग पर शोक का क्या कारण है?

सुभद्रा का गला भर आया। उसके मुख से एक भी शब्द न निकला। वह हिचकियाँ लेकर अधिक रुदन करने लगी। धन्ना कुमार को अत्यन्त विस्मय हुआ। विषम प्रसंग पर भी चट्टान की भाँति अडिग रहने वाली सुभद्रा आज इतनी अधीर क्यों हो रही है, यह बात किसी की समझ में नहीं आई। उसकी सपत्नियाँ भी चकित हो रहीं थोड़ी देर के लिए चहल-पहल बंद हो गई। वातावरण में स्तब्धता छा गई।

धन्नाजी सुभद्रा की इस स्थिति को सहन न कर सके। तब उन्होंने पुनः प्रश्न किया—सुभद्रे! तुम्हारी यह विह्वलता पहली ही बार देख रहा हूँ। मालूम होता है, तुम्हारे हृदय को

कोई गहरी चोट लगी। परन्तु विचार करने पर भी उस चोट का कारण समझ में नहीं आता। क्या मेरे किसी व्यवहार से तुम्हें कष्ट पहुँचा है?

सुभद्रा—नाथ! आप जैसे विवेकशील और कर्त्तव्य-परायण पति की ओर से कदापि दुर्व्यवहार नहीं होता।

धन्ना—तो क्या किसी सपत्नी के व्यवहार से तुम्हें कष्ट हुआ?

सुभद्रा—हम आठों सगी बहिनों की तरह रहती हैं। हमारे मन में कभी सपत्नी भाव उत्पन्न नहीं हुआ। हम सब आपस में सहेलियाँ हैं। इनसे मुझे क्या कष्ट हो सकता है।

धन्ना—तो फिर यह रुदन क्यों?

सुभद्रा—आपको विदित ही है कि मेरा एक ही भाई है। उसी की बदौलत मेरा पीहर आबाद है। और वही संयम लेकर साधु बनने की तैयारी कर रहा है। मेरा पीहर उजड़ रहा है। आपके साथ आनन्दविनोद करते-करते मुझे अपनी भौजाइयों का भी स्मरण हो आया। वे दुनियादारी से अनभिज्ञ भोली युवतियां भाई के साधु बन जाने पर किसके आधार पर जीएँगी? बड़ी विषम परिस्थिति है।

धन्ना—क्या शालिभद्र दीक्षा ले रहे हैं?

सुभद्रा—जी हाँ?

धन्ना—कब? सुना ही नहीं!

सुभद्रा—वह तो एक दम तैयार हो गये थे, परन्तु माँ के बहुत समझाने पर कुछ दिन रुक गये हैं। प्रतिदिन एक-एक

पत्नी का परित्याग करते जाते हैं। बत्तीस दिनों बाद दीक्षा लेंगे। उनके वियोग की कल्पना मेरे हृदय में मार्मिक पीड़ा उत्पन्न कर रही है।

धन्ना—प्रिये ! जो आत्मकल्याण के लिए उद्यत होता है, उसके लिए शोक करना उचित नहीं है। वह अपने जीवन की सफलता के लिए प्रयास करता है। मानव-जीवन का सब से बड़ा लाभ यही है। अतएव तुम्हें चिन्ता और शोक न करके हर्षित होना चाहिए।

सुभद्रा—यह तो ठीक है प्रियतम, किन्तु इतनी शीघ्रता करने की क्या आवश्यकता थी ?

धन्ना—शीघ्रता कहाँ है ? धीरे-धीरे एक-एक पत्नी का परित्याग कर रहा है ! सच्चा और प्रबल वैरागी तो क्षण भर भी घर में नहीं ठहरता। जिसे संसार के भोग-उपभोग भुजंगम के समान प्रतीत होते हैं, वह क्या विलम्ब करता है ? सर्प सन्निकट होने पर मनुष्य दूर भागने में देर नहीं करता। इसी प्रकार वैराग्यवान् पुरुष भोगों का परित्याग करते देर नहीं करता।

सुभद्रा को धन्ना का यह कथन रुचिकर नहीं हुआ। उसे आशा थी कि पतिदेव शायद भाई को समझा कर घर में रहने को तैयार कर लेंगे, परन्तु उन्होंने उलटी आलोचना कर डाली। उसके वैराग्य की हँसी की। यह देख सुभद्रा को अत्यन्त निराशा हुई। उसकी पीड़ा बढ़ गई। उसने कहा—नाथ ! खेद है कि आपने मेरे भाई के वैराग्य की महत्ता का विचार नहीं किया संसार के अतुल एवं स्वर्गीय वैभव का परित्याग कर देना और

अप्सराओं के सदृश बत्तीस पत्नियों के आकर्षण को जीत लेना क्या साधारण बात है ? वृद्धावस्था में तो कोई भी वैरागी बन सकता है, परन्तु इस युवावस्था में भोगों को रोगों के समान समझ लेना असाधारण बात है। शालिभद्र स्वर्ग के समान धाम में रहते हैं। स्वयं इन्द्र के समान तेजस्वी हैं। लक्ष्मी उनके चरणों की दासी है। संसार के ऐसे सुख उन्हें प्राप्त हैं जैसे किसी भी दूसरे को प्राप्त नहीं। उनका वैराग्य आपको प्रबल नहीं जान पड़ता !

धन्ना–प्रिये ! अप्रसन्न होने की बात नहीं है। मैंने अपना विचार तुम्हारे सामने प्रकट कर दिया है। मेरे खयाल स शालिभद्र की यह कायरता है। मुझे यह ढङ्ग पसंद नहीं। जब छोड़ने को तैयार हुआ तो एक साथ ही क्यों नहीं छोड़ देता ?

सुभद्रा—नाथ, कहना सरल और करना कठिन होता है। शालिभद्र की ऋद्धि के सामने हमारी ऋद्धि क्या चीज है ? फिर भी हम इसे नहीं त्याग सकते, तो शालिभद्र के त्याग को तुच्छ समझने का हमें क्या अधिकार है ?

धन्ना· ठीक कहती हो सुभद्रे ! मेरा आशय शालिभद्र की अवहेलना करना नहीं था, त्याग की इस पद्धति के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित करना था। मगर आदर्श त्याग का आदर्श स्वयं उपस्थित किये बिना किसी के त्याग की आलोचना करना उचित नहीं है। तुम सदा मेरी सत्यपथ-प्रदर्शिका रही हो, आज भी तुमने सचमुच धर्मसहायिका के योग्य परामर्श दिया है। मुझे त्याग का आदर्श उपस्थित करना चाहिए; यह अहंकार भी मेरे मन से निकल गया है। मैं अभी संयम ग्रहण करूँगा। तुम सब को अब मुझसे दूर रहना चाहिए।

धन्नाजी स्नान करते-करते बीच में ही उठ खड़े हुए। उन्होंने सूखे वस्त्र पहने और चलने को तत्पर हो गए।

वातावरण में थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। आठों पत्नियों का हृदय धड़कने लगा। उसी समय सुभद्रा ने पैरों पर गिर कहा—नाथ, मेरा हृदय पहले से ही सन्तप्त और व्यथित है। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। शोक के आवेग में कुछ अयोग्य शब्द मुँह से निकल पड़े तो मेरा पहला अपराध जानकर क्षमा कीजिए। आपका हृदय उदार और गंभीर है और मेरी बुद्धि तुच्छ है। आपका गृहत्याग मेरे लिए जले पर नमक छिड़कने के समान दुःखदायी है। मरी को मारने में आपकी शोभा नहीं है। मेरी प्रार्थना है कि आप उतावल में कोई निश्चय न कीजिए।

धन्ना—सुभद्रे ! तुम्हारे किसी वाक्य से मुझे रोष उत्पन्न हुआ है, यह मत समझो। मैं कृतज्ञ हूं कि इस निमित्त से मेरी सुप्त अन्तरात्मा जागृत हो गई है। वास्तव में आज मुझे अपने कर्त्तव्य का वास्तविक भान हुआ है।

सुभद्रा किंकर्त्तव्यमूढ़ हो गई। इसी समय धन्नाजी की शेष सात पत्नियाँ उनके सामने खड़ी हो गईं। वे कहने लगीं—आपने बड़े-बड़े उलझे हुए मामलों का निर्णय किया है। आप न्यायशील हैं। एक बार हमारा भी न्याय कीजिए। आपके ही विरुद्ध हमारा अभियोग है। अगर कुछ अपराध हो सकता है तो सुभद्रा बहिन का ही। हम सर्वथा निरपराधिनी हैं। ऐसी स्थिति में एक के अपराध का दण्ड आठ को देना न्यायसंगत है? आप किस आधार पर हमें दंडित कर रहे हैं?

धन्ना—इसका उत्तर मैं सुभद्रा को दे चुका हूँ। मैं दण्ड का सर्वथा त्याग करने को उद्यत हुआ हूं; दण्ड देने के लिए

नहीं। मैं अहिंसा की आराधना करना चाहता हूँ सो क्या प्रति-हिंसा की भावना से प्रेरित होकर ? नहीं। तुम्हारा यह समझना मिथ्या है। मैं कर्त्तव्य की प्रेरणा से संयम ग्रहण करना चाहता हूँ। इस जीवन में जो भी सांसारिक सुख भोगे जा सकते हैं, मैं उन्हें भोग चुका हूं। पहले जो कमाई करके साथ में पूंजी लाया था, वह मैंने भोगी है। मगर इस प्रकार दीवालिया होना योग्य नहीं। सदैव यहीं रहना नहीं है। किसी भी समय जाने को विवश होना पड़ता है। अगर नये सिरे से पूंजी उपार्जित न की तो आगे क्या स्थिति होगी ? यही सोच कर मैं साधना के पथ पर अग्रसर होना चाहता हूं। अतएव अपने मन से यह बात निकाल दो कि मैं अप्रसन्न, असन्तुष्ट अथवा रुष्ट हूं। नहीं, मेरा अन्तकरण एकदम शान्त है। मुझे अनुमति दो कि मैं अपने जीवन का सर्वोत्तम कर्त्तव्य पालन करूँ और अपने जीवन को निरर्थक होने से बचा लूँ।

इस प्रकार कह कर धन्नाजी अपनी हवेली से चल पड़े। उनका चित्त एकदम शान्त था। वास्तव में महापुरुषों के कार्य अनोखे होते हैं। उनकी अन्तरात्मा में निरंतर एक अलौकिक ज्योति जलती रहती है भले ही ऊपर से वह आच्छादित-सी प्रतीत हो या प्रतीत हो न हो मगर साधारण जनों की भाँति उनका अन्तरतर अंधकार मय नहीं होता। यही कारण है कि छोटा-सा निमित्त भी उनके उत्थान का कारण बन जाता है।

धन्नाजी के विषय में यही सत्य चरितार्थ हुआ। उनकी आत्मा भीतर से जागरुक थी। वे महान् पुण्य के धनी थे। अतएव छोटा-सा निमित्त पाकर जाग उठे। संसार की वस्तुओं के प्रति उनके अन्तःकरण में तनिक भी आसक्ति नहीं थी; यह बात तो पहले के उनके व्यवहार से स्पष्ट ही हो चुकी है। आसक्ति न

होने पर भी केवल भोगावली कर्म के उदय से वे गृहस्थावस्था में रह रहे थे। आज उस पर भी वे विजयी हो गये।

धन्नाजी अपने निवासस्थान से निकल कर सीधे शालिभद्र की हवेली में पहुंचे। शालिभद्र ने अकस्मात् अपने बहिनेई को आया देख उठ कर सत्कार किया। योग्य आसन पर बैठने के लिए कहा। परन्तु धन्ना ने कहा—मैं बैठने के लिए नहीं आया, ऊपर उठने के लिए आया हूँ। शालिभद्र! सावधान हो जाओ। मैं एक साथ आठों को छोड़कर आया हूं, तुम भी अब संसार से मन मोड़ लो। साले-बहिनेई की जोड़ी जब एक साथ दीक्षित होगी तो बड़ी भली मालूम पड़ेगी।

शालिभद्र ने अपने बहनोई का समर्थन किया। उनके हृदय पर वैराग्य का रंग चढ़ा हुआ ही था, धन्नाजी के आने से वह और भी गहरा हो गया। उन्होंने कहा मैं तैयार हूँ। अत्यन्त प्रसन्नता है कि आप संयम में भी मेरे साथी बन रहे हैं।

धन्नाजी और शालिभद्र इस प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे कि उसी समय धन्नाजी की आठों पत्नियाँ वहाँ आ पहुँचीं। वे शालिभद्रजी की पत्नियों को साथ लेकर भद्रा माता से मिलीं। प्रयत्न करके दोनों को दीक्षा लेने से रोकने का आग्रह किया। भद्रा माता को दोहरी चिन्ता सताने लगी अब तक तो पुत्र ही गृहत्याग कर जा रहा था, अब जामाता भी तैयार हो गया। उन्हें चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिगोचर होने लगा। उन्होंने भर सक प्रयत्न किया, पर सफलता न मिली। दोनों में से एक भी अपने विचार को त्याग देने के लिए तैयार न हुआ।

वस्तुतः संसार नाना प्रकार के दुःखों का आगार है। अज्ञान जीव ही इनमें सुख मान कर आसक्त होते हैं। विवेकी

जनों को संसार के भोगोपभोग-समस्त सुखसामग्री दुःख रूप प्रतीत होती है। उनकी दृष्टि वर्त्तमान तक सीमित न रह कर भविष्य को भी देखती है। अतएव वे सोचते हैं—

वरं हालाहलं भुक्त, विषं तद्भवनाशम्।
न तु भोगविषं भुक्त-मनन्तभवदुःखदम्॥

अर्थात्—एक वर्त्तमान भव का नाश करने वाला हालाहल विष खा लेना अच्छा है, परन्तु अनन्त भवों में दुःख देने वाले भोग रूपी विष का सेवन करना उचित नहीं है।

जब वास्तविक ज्ञान रूपी सूर्य का उदय होता है, तब वस्तुतत्त्व की स्पष्ट रूप से उपलब्धि होने लगती है। और जब पदार्थों का समीचीन स्वरूप प्रतिभासित होने लगता है तब संसार निस्सार प्रतीत होने लगता है। अत्यन्त मनोहर जान पड़ने वाले विषयभोग नीरस, घृणाजनक और बीभत्स मालूम होते हैं। जो व्यक्ति इस भूमिका पर पहुंच जाता है, उसे विषयों की ओर आकर्षित करना कठिन होता है। उनकी अन्तरात्मा पुकारने लगती हैः—

जन्म दुःखं जरा दुःखं, मृत्युर्दुःखं पुनः पुनः।
संसारसागरे घोरे, तस्माज्जागृत जागृत॥
माता नास्ति पिता नास्ति, नास्ति भ्राता सहोदरः।
अर्थो नास्ति गृहो नास्ति, तस्माज्जागृत जागृत॥
कामः क्रोधस्ततो लोभो, देहे तिष्ठन्ति तस्कराः।
ज्ञानखड्गप्रहारेण, तस्माज्जागृत जागृत॥
आशा हि लोकान् बध्नाति, कर्मणा बहुचिंतया।
आयुक्षयं न जानाति, तस्माज्जागृत जागृत॥

इस संसार रूपी घोर सागर में पड़े हुए प्राणी को जन्म का दुःख, जरा का दुःख और मृत्यु का दुःख सहन करना पड़ता है। यह दुःख भी एक बार नहीं, बार बार सहना पड़ता है। अतः आत्मन्! तू जाग, जाग।

हे आत्मन्! इस जगत् में कोई किसी का स्वजन नहीं। माता नहीं है, पिता नहीं है, सहोदर भाई भी नहीं है। ध सम्पत्ति और घर द्वार भी अपना नहीं है। अतएव हे आत्मन तू जाग, जाग!

इस शरीर रूपी घर में काम, क्रोध और लोभ रूपी चे छिपकर बैठे हैं, वे अमूल्य आत्मिक सम्पत्ति का अपहरण क रहे हैं। हे आत्मन्! तू अपने ज्ञान रूपी तलवार को संभाल जाग, जाग!

मनुष्य आशा और तृष्णा के बन्धनों में बँधा हुआ है यह करूंगा, वह करूंगा, आदि-आदि संकल्पों विकल्पों में फँसा रहता है। आयु का किस प्रकार क्षय हो रहा है, इस उसे चिन्ता ही नहीं होती। हे आत्मन्! तू अपनी ओर देख और जल्दी ही जाग!

जिनकी अन्तरात्मा इस प्रकार की पुकार करने लगत है, जिन्हें ज्ञान का लोकोत्तर प्रकाश प्राप्त हो जाता है, व आत्मा के असली स्वरूप को समझ लेते हैं, उन्हें विषयों प्रति लेश मात्र भी आसक्ति नहीं होती। वे भोगों के लुभाव रूप की ओर आकर्षित नहीं हो सकते।

शालिभद्र और धन्ना सेठ अपने परिवार में अकेले-अके पुरुष थे। अक्षय सम्पत्ति थी स्त्रियाँ निराधार हो रही थीं। यह

से कठोर दिखाई देने वाला व्यवहार करना अनिवार्य हो जाता है। माता-पिता अपनी रोती हुई लड़की को सुसराल भेजते हैं। क्या इसे उनका निर्दयतापूर्ण व्यवहार कहा जायगा? डाक्टर रोगी के सड़े-गले अंग को काट कर फैंक देता है। क्या डाक्टर का यह कार्य दयाहीनता का द्योतक है? बीमार बालक अहितकर भोज्य पदार्थ के लिए हठ करता है, रोता है, परन्तु उसे माता दे नहीं सकती। क्या इसे करुणाहीनता कहा जा सकता है? नहीं, ऊपर से निर्दय प्रतीत होने वाले इस व्यवहार में असीम करुणा लहराती हुई जान पड़ती है! इसी प्रकार आत्मशुद्धि के प्रसंग पर प्रतीत होने वाली कठोरता भी करुणा का ही रूप समझना चाहिए। विरक्त पुरुष स्वयं पापों से निवृत्त होकर आत्मदया करता है और परदया भी करता है। अपने परिवार के लोगों को भी प्रकारान्तर से वह पापपाश से बचाने का प्रयत्न करता है। यह उसकी महान् करुणा है।

धन्ना और शालिभद्र इसी विचारधारा से प्रेरित थे। संवेग की उत्कट भावना का उनके अन्तःकरण में ज्वार आ रहा था। अतएव उनकी पत्नियों का अनुनय-विनय व्यर्थ सिद्ध हुआ। माता भद्रा का अनुरोध भी काम न आया। तब निराशा छा गई।

पाठक जानते ही हैं कि धन्ना सेठ सम्राट् श्रेणिक के भी जामाता थे। भद्रा माता जब निराश हो गई तो उन्होंने सम्राट् की शरण लेना चाही। भागी-भागी श्रेणिक के पास पहुँची। साले बहनोई के वैराग्य की कथा सुनाकर अत्यन्त दीन स्वर में बोली-पृथ्वीनाथ! मेरा, मेरी पुत्री साथ ही आपकी पुत्री का भी घर सूना हो रहा है। आप प्रभावशाली पुरुष हैं।

संभव है, आपके समझाने से वे समझ जाएँ। आप पधार कर एक बार प्रयत्न कर देखिए।

श्रेणिक—यद्यपि कर्मोदय की तीव्रता के कारण मैं स्वयं दीक्षा धारण करने में असमर्थ हूँ, तथापि दीक्षा धारण करके संयम पालने को उत्तम कार्य समझता हूँ। किसी के संयम-पालन में बाधक बनना मैं अच्छा नहीं समझता। तथापि मैं आपके साथ चलता हूँ। अगर धन्ना और शालिभद्र के वैराग्य का रंग पक्का न होगा तो उतर रुकेगा। उसका उतर जाना ही अच्छा है। यदि रंग पक्का हुआ तो आपको और मुझको सन्तोष धारण करना चाहिए। आखिर किसी न किसी दिन तो यह संयोग नष्ट होने को ही है। हम सब सदैव सम्मिलित नहीं रह सकते। ऐसी स्थिति में अगर कोई परमार्थ की साधना करके अपने जीवन को सफल करना चाहता है और विषयभोगों के कीचड़ में फँसा हुआ मौत का शिकार नहीं होना चाहता है, तो हमें हर्षित ही होना चाहिए। यह दोनों महान् पुण्य के धनी हैं। वे ऊपर ही उठने को है। उनको रोक रखना मुझे संभव नहीं प्रतीत होता। फिर भी मैं आपको निराश नहीं करता।

श्रेणिक का विचार जानकर भद्रा माता की निराशा बढ़ गई पर साथ ही उनको कुछ सान्त्वना भी मिली। उन्हें मानव-जीवन का सर्वोच्च ध्येय क्या है, इस बात की कल्पना आई।

सम्राट् श्रेणिक से उन्होंने कहा--आपका विचार धर्म के अनुकूल ही है, परन्तु अभी उनकी उम्र ही क्या है? थोड़े समय ठहर कर भी वे साधु बन सकते हैं। मैं सदा के लिए नहीं रोकना चाहती, कुछ दिन ही रुक जाएँ तो ठीक है। आप प्रयास करके देखिए, फिर जो भवितव्य होगा सो होगा।

आखिर मगधाधिपति श्रेणिक महाराज शालिभद्र की हवेली में आ पहुंचे। उन्होंने धन्ना और शालिभद्र को समझाते हुए कहा–आप लोग क्यों इतनी शीघ्रता कर रहे हैं ? गृहस्थावस्था में रहते हुए गृहस्थोचित धर्म की आराधना कीजिए और अन्तिम समय में अनगार धर्म को अंगीकार करके विशिष्ट साधना करना। उचित समय पर किया हुआ प्रत्येक कार्य फलदायक होता है। समय आने से पहले जो कार्य किया जाता है, उसमें यथेष्ट सफलता नहीं मिलती।

धन्ना—महाराज ! धर्माचरण करने का कोई समय नियत नहीं है। जीवन के अन्तिम समय में संयम की आराधना करने का विचार करना एक प्रकार से आत्मवंचना है—अपनी आत्मा को ही धोखा देना है। कौन जानता है कि जीवन का अन्तिम समय कब होगा ? मौत क्षण-क्षण में मस्तक पर मंडरा रही है। किसी भी समय जीवन का अन्त आ सकता है। ऐसी दशा में भविष्य पर निर्भर रहना क्या उचित है ? श्रमण भगवान् महावीर का कथन है:—

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥

अर्थात्—जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो, जो मृत्यु आने पर भाग कर बच जाने की आशा रखता हो अथवा जिसका यह विचार हो कि मैं मरूंगा ही नहीं, वही सोच सकता है कि मैं आज नहीं कल संयम धारण कर लूंगा।

न हमारी मौत से मित्रता है और न भाग कर बचने की

ही हम में शक्ति है। सदा अजर-अमर रहने की बात भी हम नहीं सोच सकते। फिर किस विश्वास पर ढील करें?

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ॥

जो रजनी व्यतीत होती जा रही है, वह लौट कर नहीं आती। अधर्म का सेवन करने वाले पुरुष की रात्रियाँ निष्फल बीत रही हैं।

जब प्रतिक्षण आयु क्षीण होती जा रही है, तब कौन विवेकशील मनुष्य भोग-उपभोग में अपने महत्त्वशाली जीवन को नष्ट करना पसन्द करेगा?

श्रेणिक—मेरा दृष्टिकोण दूसरा है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि सांसरिक सुख भोग कर तृप्ति प्राप्त कर लेने के बाद संयम का पालन अधिक दृढ़ता से हो सकता है। अतृप्ति की अवस्था में संयम से च्युत होने की सम्भावना है। अतएव मेरा परामर्श यह है कि कुछ दिन रुक कर फिर दीक्षा लेना।

धन्ना—महाराज! आपको भलीभाँति विदित है कि यह आत्मा इसी भव में नवीन उत्पन्न नहीं हुआ है। यह अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इसने अनंत-अनंत बार मर्त्यलोक और स्वर्गलोक के श्रेष्ठ सुखों का उपभोग किया है। फिर भी क्या इसे तृप्ति हुई। भोगों का भोगना तृप्ति का कारण हो ही नहीं सकता। ईंधन से आग अधिक प्रज्वलित होती है और भोगोपभोग से भोग की तृष्णा अधिकाधिक जागृत होती है। तृप्ति तो सच्चे त्याग से ही सम्भव है। ऐसी दशा में आप भोग-भोग कर तृप्ति प्राप्त कर लेने की बात कैसे कहते हैं?

जिस आत्मा को आज तक तृप्ति न हो सकी, वह अब तृप्त हो जायगा, यह आशा रखना व्यर्थ है। सत्य तो यह है:—

> नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति, नात्यक्त्वा विन्दते परम्।
> नात्यक्त्वा चाभयःशेते,त्यक्त्वा सर्वः सुखी भवेत्॥

अर्थात्—त्याग किये बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, त्याग किये बिना परमात्मपद की प्राप्ति नहीं हो सकती और त्याग किये बिना मनुष्य निर्भय होकर नींद नहीं ले सकता। संसार में जो भी सुखी होता है; त्याग करके ही होता है।

और:—

> यतो यतो निवर्त्तते, ततस्ततो विमुच्यते।
> निवर्त्तनाद्धि सर्वतो, न वेत्ति दुःखमण्वपि॥

संसार में जितने भी दुःख और शोक हैं, उन सब का मूल कारण परवस्तुओं का संयोग है। जो महाभाग जितने-जितने अंशों में परपदार्थों के संयोग से निवृत्त हो जाता है, वह उतना ही उतना हल्का बनता जाता है, मुक्ति प्राप्त करता जाता है। अन्त में जब पूर्ण रूप से निवृत्ति हो जाती है, यहाँ तक कि शरीर का भी संयोग नहीं रह जाता और राग-द्वेष आदि विभावों का संसर्ग भी छूट जाता है, तभी सुख की पूर्णता प्राप्त होती है। उस समय अणु मात्र भी दुःख नहीं रह जाता।

तत्त्वदर्शियों का यह कथन सर्वथा सत्य है और गंभीर अनुभव का फल है। दैनिक जीवन में प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जिसके साथ जितनी ज्यादा उपाधियाँ लगी हैं, वह उतना ही अधिक दुखी, अशान्त और व्याकुल है। इससे यही निष्कर्ष

निकलता है कि सच्चे सुख की प्राप्ति त्याग में, उपाधियों के परित्याग में है। अतएव संसार की सुख-सामग्री को अपना कर तृप्ति नहीं प्राप्त की जा सकती। तृप्ति तो सन्तोष में है उसकी साधना के लिए त्याग की आवश्यकता है। त्याग ही समस्त सुखों का मूल है।

श्रेणिक—इस समय आपके गृहत्याग से परिवार को घोर दुःख हो रहा है। इनकी ओर दृष्टि रख कर विचार करो। कुछ समय तक संसार के सुख और भोग लो। फिर संयम की साधना करने में क्या हानि है ?

शालिभद्र—पारिवारिक जनों को आज जो दुःख हो रहा है, वह केवल अनुराग के कारण ही। हम लोगों पर इनका अनुराग न होता तो इन्हें दुःख भी न होता। इससे स्पष्ट है कि अनुराग दुःख का कारण है अगर हम कुछ दिन ठहर जाएँ तो क्या इनका अनुराग समाप्त हो जायगा ? नहीं, वह समाप्त होने वाला नहीं है। अतएव जो अनुराग दुःख का कारण है, उसका पोषण करना, उसे बढ़ाना, कहाँ तक उचित है ? उसकी तो जड़ ही काट देना उचित है।

इसके अतिरिक्त, महाराज ! आप नरेश्वर हैं-सामर्थ्य-शाली हैं। अगर आप यह उत्तरदायित्व ले लें कि वृद्धावस्था आकर हमारे शरीर को क्षीण नहीं कर सकेगी, मृत्यु से हम बचे रहेंगे, किसी प्रकार का रोग आकर जीवन को निरर्थक नहीं कर देगा, तो हम विचार करें। क्या आप यह जिम्मा ले सकते हैं ?

श्रेणिक—यह तो असम्भव है। मैं स्वयं इनसे बचा नहीं हूं तो जिम्मा कैसे ले सकता हूं।

शालिभद्र—तो फिर मोह ममता के बंधन को जरा ढीला कीजिए और प्रसन्नता पूर्वक हमें संयम ग्रहण करने की आज्ञा दीजिए।

श्रेणिक—तथास्तु।

दोनों को संयम धारण करने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। धन्ना और शालिभद्र का चित्त निश्चिन्त हुआ। इधर उनकी माता और पत्नियों के चित्त में और अधिक व्याकुलता उत्पन्न हो गई। श्रेणिक अपने महल के लिए रवाना हो गए।

२८

दीक्षा

राजगृही नगरी में उस समय परमवीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, चरम तीर्थंकर महाप्रभु महावीर भगवान् ने पदार्पण किया था। जन्म जरा मरण से तथा विविध प्रकार की आधियों एवं व्याधियों से पीड़ित संसार के जीवों के उद्धार के लिए ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले और अपनी दिव्य ध्वनि से भव्य जीवों को अक्षय आनन्द का पथ प्रदर्शित करने वाले, नरेन्द्रों तथा देवेन्द्रों द्वारा वन्दनीय त्रिलोकीनाथ के चरण-कमलों से जो भूमि पवित्र होती थी, वहाँ के समस्त पाप, ताप एवं संताप दूर हो जाते थे। वहाँ धर्म का दिव्य प्रकाश फैल जाता था।

भगवान् सिद्धार्थनन्दन नगरी के बहिर्भाग में स्थित गुणशील नामक एक उद्यान में विराजमान थे।

उधर धन्ना और शालिभद्र के दीक्षामहोत्सव की तैयारियां आरम्भ हुईं। जिस दीक्षा में श्रेणिक जैसे समर्थ सम्राट् का हाथ हो, उसके आयोजन की विराटता का दिग्दर्शन कराना व्यर्थ है। धूमधाम के साथ दोनों पुण्यमूर्त्ति पुरुष-पुंगवों की दीक्षा का समारोह आरम्भ हो गया।

पालकियाँ सुसज्जित की गई। उनमें वैरागी सवार हुए। आगे-आगे समस्त चतुरंगी सेना थी। राजकीय लवा-जमा-ध्वजा पताकाएँ और निशान आदि सुशोभित हो रहे थे। जुलूस में सम्राट् स्वयं सम्मिलित थे। विविध वाद्यों की मनोहर ध्वनि आकाश को गुंजा रही थी। इस प्रकार बड़े ठाठ के साथ दीक्षार्थी भगवान् की सेवा में रवाना हुए।

उस समय का दृश्य बड़ा ही भावपूर्ण था। राजगृही की जनता उस दृश्य को देखकर चकित हो रही थी! सभी के हृदय वैराग्य एवं परम संवेग की तरङ्गों से व्याप्त हो रहे थे। वातावरण अतिशय गम्भीर और शान्त था। जुलूस धीमे-धीमे, बाजारों को पार करता हुआ गुणशील उद्यान की ओर बढ़ता जाता था।

धन्ना सेठ और शालिभद्रकुमार के मुखारविन्द पर अनुपम वैराग्य की छटा दिखाई दे रही थी। वह सोच रहे थे—कब वह पवित्र क्षण आवे कि हम परमप्रभु के मुख कमल से साधु-जीवन की प्रतिज्ञाओं को श्रवण करके अङ्गीकार करें और साधु-वृन्द की कोटि में पहुँचे। दर्शकवृन्द इन भाग्यशालियों की जोड़ी की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे थे। दिव्य भोगोपभोगों को ठुकरा कर भिक्षु जीवन अंगीकार करने वाले यह महाभाग धन्य हैं। इन्होंने जीवन का सच्चा लाभ लिया है। इनकी निस्पृहता और त्यागशीलता का वर्णन कर सकना असम्भव है!

जुलूस उद्यान में जा पहुँचा। दोनों भावी अनगारों ने तथा अन्य जनसमूह ने प्रभु के पावन पद पद्मों में नमस्कार किया। सब लोग यथा स्थान बैठ गये।

दोनों वैरागी ईशानकोण में जाकर लोच करके और साधु का वेष धारण करके भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। यथोचित वन्दना और नमस्कार करके, हाथ जोड़ कर खड़े हुए। भगवान् ने उन्हें अनगार धर्म में दीक्षित किया।

दोनों नवदीक्षित मुनि वहीं रह गये और उनका परिवार तथा अन्य जनसमूह वापिस लौट गया। आज राजगृही में चर्चा का यही विषय मुख्य था। सब धर्मप्रेमी धन्ना और शालिभद्र की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे थे। वास्तव में यह त्याग अनुपम था।

भद्रा माता और शालिभद्र तथा धन्नाजी की पत्नियों के चित्त में उद्वेग अवश्य था, परन्तु वे सभी धर्म मार्ग को भलीभाँति समझती थीं और धर्म पर दृढ़ आस्था भी रखती थीं। वह युग, आज के समान धर्महीनता का युग नहीं था। उस समय जीवन का सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य संयम का पालन करना ही समझा जाता था। जो संयम का पालन करते थे, वे धन्य समझे जाते थे। जो स्वयं पालन नहीं कर सकते थे, वे अपने आपको भाग्यहीन मानते थे। अतः भद्रा माता आदि ने संतोष धारण किया। वे सब भी धर्म की आराधना में विशेष रूप से तत्पर हो गईं।

धन्ना मुनि और शालिभद्र मुनि ज्ञान एवं चारित्र की आराधना करने में जुट पड़े। उन्होंने सर्व प्रथम ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। फिर तीव्र तपश्चरण में निरत हो गए। तपस्या उनकी साधारण नहीं थी। मास-खमण की तपस्या अंगीकार की। एक मास तक अनशन करना और सिर्फ एक दिन आहार करना क्या सामान्य बात थी ? जो सुखों में पले, सुखों में बढ़े, जिन्होंने संसार के सर्वोत्तम सुख भोगे, वे आज स्वेच्छा-

पूर्वक ऐसी कठिन तपस्या करने में निरत हो गये ! अपनी कमल सी कोमल काया को तीव्रतर तपश्चरण की आग में झोंक देने में ही उन्हें आनन्द की अनुभूति होने लगी। यह उचित ही था, क्योंकि तपस्या के बिना संचित कर्मों का क्षय नहीं होता। ज्ञानपूर्वक किया जाने वाला तप आत्मा को उसी प्रकार शुद्ध कर देता है, जैसे अग्नि सुवर्ण को निर्मल बना देती है।

२६

मुनि-जीवन

भगवान् के साथ-साथ अनेक ग्रामों, नगरों एवं जनपदों में विचरण करते हुए तथा ज्ञान और चारित्र की आराधना करते हुए धन्ना और शालिभद्र मुनि का एक बार फिर राजगृही में आगमन हुआ।

भगवान् के विशाल श्रमण-संघ में दोनों मुनि चन्द्र और सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन करके तत्त्व के स्वरूप को भलीभाँति विदित कर लिया था। तपस्या से उनकी अन्तरात्मा पावन हो रही थी। यद्यपि चेहरे पर वह लावण्य नहीं रह गया था, फिर भी तपस्तेज से वे देदीप्यमान थे। परम सौम्यभाव, सरलता, वीतरागता झलक रही थी। उनके दर्शन मात्र से हृदय में अनूठे प्रशस्त भाव उत्पन्न होते थे। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका था, मुनियुगल मासखमण की तपस्या कर रहा था।

पारणा का दिन आया। दोनों मुनि भगवान् की सेवा में पहुंचे। वन्दन नमस्कार करके कहा—'प्रभो! पारणा की आज्ञा प्रदान कीजिए।'

भगवान् ने फर्माया—'जहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।' अर्थात् हे देवों के वल्लभ ! जिसमें सुख उपजे, वही करो। विलम्ब न करो।

इसके साथ ही भगवान् ने कहा—'आज शालिभद्र की माता के हाथों से तुम पारणा करोगे।'

भगवान् के इस कथन से मुनियों को आश्चर्य नहीं हुआ। राजगृही नगरी में उनकी माता निवास करती थी और भगवान् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे। अतएव आश्चर्य का कोई कारण नहीं था।

दोनों मुनि अपनी संसारावस्था के घर की ओर रवाना हुए। परन्तु वहां जाकर देखा तो पहरेदार सजग भाव से खड़े थे। इतने दिनों तक घोर तपश्चरण करने से मुनियों की काया अत्यन्त कृश और म्लान हो गई थी। जिन्होंने पहले उनका दमकता हुआ चेहरा देखा था, वे भी सहसा उन्हें पहचान नहीं सकते थे।

जब दोनों मुनि भद्रा माता की हवेली पर पहुँचे, तब भीतर स्नान हो रहा था। स्नान के समय में किसी को अन्दर जाने की आज्ञा नहीं थी। पहरेदारों को आदेश था कि उस समय किसी को भी हवेली में प्रवेश न करने दें।

पहरेदार अपने विवेक पर नहीं, स्वामिनी के आदेश पर चलने वाले थे। उन्हें पता भी नहीं था कि यह मुनि कौन हैं? अतएव दोनों मुनि जब द्वार पर पहुँचे तो उन्होंने रोक दिया। मुनि अपने आचार के अनुसार आगे चले गये। उन्होंने न तो भीतर प्रवेश करने का अनुरोध ही किया और न अपना परिचय ही दिया।

मुनियुगल आगे जाकर जब वापिस लौटा तो पुनः हवेली में अन्दर जाने की इच्छा की, परन्तु अनजान पहरेदारों ने उन्हें फिर रोक दिया। मुनि फिर आगे बढ़ गए।

जो शालिभद्र किसी समय हवेली के स्वामी थे, समस्त नौकर-चाकर और पहरेदार जिनकी भृकुटि के इंगित पर नाचते थे, आज उन्हीं को हवेली में प्रवेश करने से रोक दिया गया! एक साधारण पहरेदार ने उन्हें दो बार इच्छा करने पर भी भीतर न घुसने दिया। यह एक विशेष घटना थी जो चित्त पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती थी। साधारण मनुष्य होता तो उसी समय आग बबूला होजाता। परन्तु महामुनि शालिभद्र के चित्त पर इसका दूसरा ही प्रभाव पड़ा। संसार की अनित्यता उनके सामने साक्षात् हो उठी। उन्होंने सोचा—मूढ़ मनुष्य सोचता है कि यह मेरा महल है, यह मेरी सम्पदा है, यह मेरा परिवार है, यह मेरे हैं, परन्तु यह सब कल्पना मात्र है। जब इसी भव में यह हाल है तो भवान्तर में क्या होगा? सचमुच ज्ञानियों ने जो कहा है, वही सोलह आना सच है कि—

> न बन्धुरस्ति ते कश्चिन्न त्वं बन्धुश्च कस्यचित्।
> पथि सङ्गतमेवैतद्दारबन्धुसुहृज्जनैः ॥

हे प्राणी न तू किसी का बन्धु-सगा-है और न कोई तेरा सगा है। कलत्र, मित्र, पुत्र, भ्राता आदि सब राह चलते के साथी के समान हैं। इनके साथ तेरा कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है।

इस प्रकार क्रोध उत्पन्न करने वाली घटना को मुनि ने अपने निर्वेद एवं संवेग का कारण बना लिया। सच है ज्ञान

ऐसा बहुमूल्य साधन है जो आस्रव के कारणों को भी संवर का कारण बना देता है। ऐसे ही महात्मा पुरुषों को लक्ष्य करके कहा गया है:—

जे आसवा ते परिस्सवा ।

अर्थात्—आस्रव के कारण भी निर्जरा के कारण बन जाते हैं। दोनों मुनि मार्ग में चले जा रहे थे। मासखमण की पारणा के लिए वे निकले थे, फिर भी उनकी चित्तवृत्ति में या गति में किसी भी प्रकार की चंचलता नहीं थी। आहार के लिए घबराहट नहीं थी। दोनों मुनि शान्तभाव से, वैराग्य में डूबे हुए अग्रसर हो रहे थे। वह निश्चिन्त थे। जानते थे कि यदि अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा तो आहार मिलकर ही रहेगा। उसके लिए व्यग्र होने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं।

इसी समय एक वृद्धा गुवालिन मिली। मुनियों को देखकर उसके चित्त में एकदम अपूर्व प्रीति उत्पन्न हुई। उसका हृदय खिल उठा। जैसे माता अपने बालक को देखकर वात्सल्य से परिपूर्ण हो जाती है, उसी प्रकार गुवालिन भी वात्सल्यरस में मग्न हो गई।

वृद्धा ने आग्रह और अनुरोध के साथ दोनों मुनियों को आहार के लिए आमन्त्रित किया। मुनि तो भावों के भूखे होते हैं। चाहे कोई सम्पत्तिशाली हो या निर्धन हो, जो भावपूर्वक निर्दोष आहार दे, उसी के यहाँ ग्रहण कर लेते हैं। वे नहीं सोचते कि निर्धन के यहाँ रूखा-सूखा आहार न लें। भगवान् ने स्वयं आदेश दिया है कि मुनि सधन कुल में भी प्रवेश करे और निर्धनकुल में भी। दोनों प्रकार के घरों में समानभाव से आहार ग्रहण करे।

वृद्धा के आमंत्रण में भावना का प्रबल बल था। अतएव दोनों मुनि आहार ग्रहण करने के लिए उसके घर में प्रविष्ट हुए। वृद्धा ने अतिशय हार्दिक प्रीति के साथ मुनियों को खीर का दान दिया। दान देकर बुढ़िया ने अपने आपको कृतार्थ समझा। आज उसे ऐसा हर्ष हुआ, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। वृद्धा स्वयं नहीं समझ पाती थी कि इतनी प्रसन्नता का क्या कारण है?

दोनों मुनि आहार लेकर भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। मगर उनके चित्त में एक बड़ी उलझन पैदा हो गई थी। आहार के अर्थ जाते समय भगवान् ने फर्माया था कि आज शालिभद्र की माता आहार देगी। माता के हाथ का आहार लेने के लिए वे अपने संसारावस्था के घर पर गये भी थे, पर माता के हाथ से उन्हें आहार नहीं मिला। उधर प्रभु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। उनकी वाणी कदापि मिथ्या नहीं हो सकती। सूर्य शीत की वर्षा करने लगे और चन्द्रमा से आग बरसने लगे, यह असम्भव है। किन्तु सर्वज्ञ की वाणी का मिथ्या हो जाना इससे भी अधिक असंभव है। तो फिर इस घटना में क्या मर्म है? दोनों मुनियों ने आपस में इस विषय की चर्चा की, परन्तु समाधान नहीं हो सका।

अन्तर्यामी भगवान् घट-घट की जानते थे। उन्होंने मुनियों के मन की शंका और उलझन को समझ लिया। उनके मन का समाधान करने के लिए भगवान् ने उन्हें अपने निकट बुलाया।

भगवान्—अंतेवासी शालिभद्र!

शालि०—'भन्ते! आज्ञा दीजिए।'

ऐसा बहुमूल्य साधन है जो आस्रव के कारणों को भी संवर का कारण बना देता है। ऐसे ही महात्मा पुरुषों को लक्ष्य करके कहा गया है:—

जे आसवा ते परिस्सवा।

अर्थात्—आस्रव के कारण भी निर्जरा के कारण बन जाते हैं। दोनों मुनि मार्ग में चले जा रहे थे। मासखमण की पारणा के लिए वे निकले थे, फिर भी उनकी चित्तवृत्ति में या गति में किसी भी प्रकार की चंचलता नहीं थी। आहार के लिए घबराहट नहीं थी। दोनों मुनि शान्तभाव से, वैराग्य में डूबे हुए अग्रसर हो रहे थे। वह निश्चिन्त थे। जानते थे कि यदि अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा तो आहार मिलकर ही रहेगा। उसके लिए व्यग्र होने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं।

इसी समय एक वृद्धा गुवालिन मिली। मुनियों को देखकर उसके चित्त में एकदम अपूर्व प्रीति उत्पन्न हुई। उसका हृदय खिल उठा। जैसे माता अपने बालक को देखकर वात्सल्य से परिपूर्ण हो जाती है, उसी प्रकार गुवालिन भी वात्सल्यरस में मग्न हो गई।

वृद्धा ने आग्रह और अनुरोध के साथ दोनों मुनियों को आहार के लिए आमन्त्रित किया। मुनि तो भावों के भूखे होते हैं। चाहे कोई सम्पत्तिशाली हो या निर्धन हो, जो भावपूर्वक निर्दोष आहार दे, उसी के यहाँ ग्रहण कर लेते हैं। वे नहीं सोचते कि निर्धन के यहाँ रूखा-सूखा आहार न लें। भगवान् ने स्वयं आदेश दिया है कि मुनि सधन कुल में भी प्रवेश करे और निर्धनकुल में भी। दोनों प्रकार के घरों में समानभाव से आहार ग्रहण करे।

देखो, विदित होगा कि बीसों चिन्ताएँ उसके सिर पर सवार हैं और उसे व्याकुल बनाये हुए हैं।

तथ्य यह है कि मोही जीवों ने जिन वस्तुओं में सुख की कल्पना कर रक्खी है, वास्तव में उन वस्तुओं में सुख है ही नहीं। सुख का मार्ग ही निराला है। उसे वे जानते नहीं। जानते हैं तो उस पर श्रद्धा नहीं करते। कदाचित् श्रद्धा भी कर लेते हैं तो तदनुसार प्रवृत्ति करने का साहस नहीं करते। इस कारण उन्हें सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती और एक के बाद दूसरी चिन्ता सताती रहती है।

असली सुख की कुंजी सन्तोष है और सन्तोष के लिए केवल अपने मन को मनाने की आवश्यकता है। सन्तोष न हुआ तो सुखकी समग्र सामग्री भी सुखद सिद्ध नहीं होती। सन्तोष हुआ तो किसी भी परिस्थिति में मनुष्य सुख का मधुर रसास्वादन कर सकता है। क्योंकि सुख आत्मा का गुण है—बाह्य पदार्थों का गुण नहीं है। वह बाहर से नहीं आता, अन्तरात्मा से उद्भूत होता है।

कमल सेठ और कमलिनी सेठानी पुत्र के अभाव में अत्यन्त दुखी रहते थे। इस दुख को दूर करने के लिए सेठ ने अष्टम भक्त तप करके अपने कुल-देव की आराधना की। अवधि-ज्ञान से अपनी आराधना की बात जान कर कुलदेव सामने आया। उसने सेठ से कहा—अपनी वर्त्तमान परिस्थिति में संतुष्ट रहना ही तुम्हारे लिए हितकर है। तृष्णा के अधीन मत होओ। अप्राप्त सुख की अभिलाषा करोगे तो प्राप्त सुख को गँवा बैठोगे।

सेठ बोले—मेरी पत्नी का संसार पुत्र के अभाव में सूना

भगवान्—मेरे कथन के विषय में तुम्हें विकल्प हो रहा है।

शालि०—सर्वज्ञ प्रभु अन्तर्यामी हैं।

भगवान्—मेरा कथन असत्य नहीं था।

शालि०—प्रभो ! यह तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। किन्तु उसका मर्म मेरी समझ में नहीं आया।

भगवान्—अतिशय ज्ञान के बिना परोक्ष वस्तु का ज्ञान नहीं होता।

शालि०—तथ्य है भंते ! इसी कारण आपश्री के चरणों का शरण लिया है।

भगवान्—मैं आज इस मर्म को प्रकाशित करता हूँ।

शालि०—असीम अनुकम्पा है देव ! आपकी।

भगवान्—तो सुनो। श्रावस्ती नगरी में एक बड़े धनाढ्य सेठ थे। उनका नाम था कमलशाह। उनकी पत्नी कमलिनी धर्मनिष्ठ, शान्तचित्त, पतिव्रता और सुशीला थी। उन्हें सब प्रकार की सुख सामग्री प्राप्त थी पर एक वस्तु की कमी थी। उनके घर में उजाला नहीं था। अर्थात् पुत्र का अभाव था। एक ही वस्तु के अभाव ने उनके सब सुखों को फीका कर दिया था। संसारी जीव तृष्णा के वशीभूत होते हैं। जिनके पास धन नहीं वे धन के लिए लालायित रहते हैं। जिनके पास धन है उन्हें पुत्र की चिन्ता व्याकुल बनाये रहती है। जो धनवान भी हैं और पुत्रवान् भी हैं, वे यशःकीर्ति की कामना के वशवर्ती होकर चिन्तित रहते हैं, जिन्हें यश प्राप्त होता है वे शारीरिक अस्वस्थता के कारण शान्ति का उपभोग नहीं कर सकते। संसार के किसी भी सुखी से सुखी प्रतीत होने वाले मनुष्य को पूरा

संसार के सुख का विचार करो तो विस्मय होगा कि अज्ञान लोग कैसे भ्रम में पड़े हुए हैं और सुख के विषय में कैसी भ्रान्तिपूर्ण कल्पनाएँ करते हैं। दीन और दुखित अवस्था में वे अपना समय व्यतीत करने लगे। एक दिन वह भी आया कि कमल सेठ शरीर त्याग कर परलोक के लिए प्रयाण कर गये। तब जो कुछ बचा खुचा था, वह सब भी समाप्त हो गया। कर्ज माँगने वालों ने मकान पर अधिकार कर लिया। अब माता और पुत्र सर्वथा निराधार हो गए। रहने को ठौर-ठिकाना नहीं खाने को दाल-रोटी भी न रही।

कर्मों का चक्र बड़ा भयानक होता है। कर्म तीर्थंकरों के साथ भी रियायत नहीं करते तो औरों की क्या बात है? कमल सेठ का पुत्र कुछ ऐसे ही कर्म उपार्जित करके आया था, जिनके प्रभाव से उसके माता-पिता को भी दरिद्रता का दुःख भुगतना पड़ा।

स्वकृतैर्जायते जन्तुः, स्वकृतैरेव वर्धते।
सुख-दुःखे तथा मृत्युं, स्वकृतैरेव विन्दति।

अर्थात्—अपने किये कर्मों के अनुसार ही जीव जन्म लेता है और अपने ही किये कर्मों के अनुसार वृद्धि को प्राप्त होता है। अपने कर्मों के अनुसार ही उसे सुख, दुःख और मृत्यु का भोग करना पड़ता है।

यह कर्म बड़े-बड़े ज्ञानियों और ध्यानियों को भी चक्कर में डाल देता है। कहा भी है:—

आरूढाः प्रशमश्रेणीं, श्रुतकेवलिनोऽपि च।
भ्राम्यन्तेऽनन्तसंसार-महो दुष्टेन कर्मणा॥

है। मैं किसी भी मूल्य पर उसे सुखी देखना चाहता हूँ। लोक में प्रसिद्ध है कि देव का दर्शन अमोघ होता है। आप इस प्रसिद्धि की रक्षा कीजिए और मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिए।

देव—तो फिर तुम जानो। तुम्हारे यहाँ पुत्र उत्पन्न होगा, परन्तु धन नहीं रहेगा।

यह कह कर तत्क्षण देव अदृश्य हो गया!

देवता का वरदान पाकर दम्पती को अपार आनन्द हुआ। उन्होंने विचार किया—धन क्या है, हाथ का मैल है! आता भी है, जाता भी है। पुत्र न होगा तो यह सोने का भंडार किस काम का? हमारे पश्चात् कौन इसका स्वामी होगा? पुत्र के अभाव में यह सारा धन राजा के भंडार की शोभा बढ़ाएगा। इस प्रकार जब इसका जाना निश्चित ही है तो पुत्र से वंचित रहने से क्या लाभ है? पुत्र होगा तो धन न रहने पर भी नाम तो रह जायगा। अतएव धन और पुत्र में से पुत्र का चुनाव करना ही योग्य था। दोनों रह जाते तो अच्छा था, परन्तु जब दोनों में से एक ही रहता है तो पुत्र का रहना ही श्रेष्ठ है। धन का आनन्द भोग लिया है, अब पुत्र का सुख भी भोगने को मिल जायगा। फिर क्या कमी रह जायगी? पुत्र के होने पर धन न रहा तो न सही। हम पुत्र को ही धन मान कर सन्तोष कर लेंगे।

इस प्रकार विचार कर इस दम्पती ने पुत्र की प्राप्ति में ही सुख समझा। यथा समय सेठानी गर्भवती हुई। ज्यों ही बालक गर्भ में आया, सेठ का धन क्षीण होने लगा और ज्यों-ज्यों गर्भ की वृद्धि होती गई, त्यों-त्यों धन की क्षीणता होती गई। बालक के जन्म के समय तो ऐसी स्थिति आ पहुँची कि वे सर्वथा निराधार और दुखिया हो गए।

माता ने दुखित स्वर में कहा—बेटा, अपने घर में खीर का सामान नहीं है। अतः खीर नहीं बन सकती। सामान जुटा लूंगी तो किसी दिन बना दूंगी।

इस उत्तर और आश्वासन से बालक को सन्तोष नहीं हुआ। वह माता की हार्दिक वेदना को और कठिनाई को नहीं समझ सका। भोला बालक माता की स्थिति को समझ पाता तो खीर के लिए आग्रह न करता। पर उसे क्या पता था कि मेरे आग्रह के कारण माता को कितनी मनोव्यथा हो रही है। अतएव बालक मचल गया। वह रोने लगा और उसे रोते देख उसकी माता भी रोने लगी।

माँ-बेटे के रुदन की आवाज सुनकर कुछ पड़ोसिनें आ पहुंची उन्होंने कहा-क्यों बाई, तुम तो बड़ी धीरज वाली हो। आज क्यों रो रही हो और क्यों बच्चे को रुला रही हो ?

संगम की माँ पहले तो चुप रही; क्योंकि कुलीन महिलाएँ अपनी दरिद्रता का ढिंढोरा पीटना उचित नहीं समझतीं। वे जानती हैं कि अपनी हीन अवस्था की बात सुनकर दूसरे उपहास भले करें, परन्तु कोई सहायता करने वाला नहीं। मगर वे पड़ौसिनें ऐसी नहीं थीं। उन्हें संगम और उसकी माता के प्रति स्नेह का भाव था। कमला सेठानी ने अपने स्नेहपूर्ण, उदार और गम्भीर व्यवहार से आसपास वालों की गहरी सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। किसी के यहाँ कोई भी दुख-दर्द आ पड़े तो वह तत्काल वहाँ पहुंचती और यथाशक्ति उनके काम आती थीं। आसपास के बच्चों पर उसकी बड़ी प्रीति थी। उन्हें वह संगम के समान ही चाहती थी। इस व्यवहार के कारण उसकी पड़ौसी स्त्रियाँ उसे चाहती थीं।

करता। बहुतों को तो यह मालूम नहीं होता कि पूर्वजन्म में मैं कौन था, कहाँ था, मेरा परिवार कहाँ है, आदि। फिर भी स्वार्थपरायण लोगों ने ऐसा चक्कर चलाया कि श्राद्ध का रिवाज आज तक भी चल रहा है।

हाँ, तो उस समय श्राद्ध पक्ष चल रहा था। घर-घर में खीर बनती थी। ब्राह्मणों को तो खिलाई ही जाती थी, पर घर वाले भी खाते थे। बच्चों का स्वभाव होता है कि वे अपने खाने-पीने की आपस में चर्चा किया करते हैं। बालक संगम ने कई लड़कों से सुना कि आज हमारे घर खीर बनी है, तो उसे भी खीर खाने की इच्छा हुई।

संगम अपनी माता के पास आया। उसने माता से कहा–माँ, सब के घर खीर बनती है। अपने घर क्यों नहीं बनती ? मुझे खीर खानी है। आज तुम भी बना दो।

माता का कोमल हृदय अपने बालक की बात सुनकर आहत हो गया। उसके घर में न चावल थे, न शक्कर थी और न दूध का ही योग था। खीर बने तो कैसे बने ! बच्चे ने पहले कभी खीर की माँग नहीं की थी। वह जो कुछ थाली में परोस कर उसके सामने रख देती, वही प्रेम के साथ वह खा लेता था। आज पहली बार ही उसने खाने के विषय में अपनी इच्छा प्रकट की और माता उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकती थी। यह सोचकर माता के दिल को गहरी चोट लगी। वह चुप हो रही। मगर संगम को आज खीर खाने की प्रबल अभिलाषा हो गई थी। वह हठ पकड़ गया। बोला–क्या माँ, खीर बनाओगी न ?

सामग्री लेकर आ गईं। एक चावल ले आई,एक दूध ले आई,एक शक्कर ले आई और एक मेवा ले आई।

आखिर खीर तैयार हो गई। संगम की माता ने उसे बुलाकर खीर परोसी। परोस कर वह जल भरने चली गई। खीर ठंडी हो रही थी और संगम का हृदय भी खीर सामने देखकर ठंडा हो रहा था। साथ ही संगम दान की भावना भा रहा था

उसी समय एक तपोधन अनगार भिक्षा के अर्थ आये। उन्हें देख कर संगम को अपार हर्ष हुआ! उसने उठकर मुनि का स्वागत किया। उन्हें वन्दना-नमस्कार किया। फिर कहा-महाराज मुझ बालक पर अनुग्रह कीजिए। आहार ग्रहण करके मेरा उद्धार कीजिए।

बालक की सद्भावना देखकर मुनि महाराज को सन्तोष हुआ। बालक आखिर बालक ही ठहरा। उसने कठौती में रक्खी हुई खीर के बीच में एक रेखा खींची। सोचा-आधी खीर मुनिराज को दान दूं और आधी अपने लिए बचा लूँ।

मगर खीर ने बालक की इच्छा की परवाह नहीं की। ज्यों ही मुनिराज के पात्र पर उसने थाली औंधी की कि चिकनाई के कारण सबकी सब पात्र में चली गई। ऐसे समय में दूसरा कोई होता तो उसके मन में दुःख हुए विना शायद ही रहता। पर संगम का भविष्य अच्छा था, अतएव लेश मात्र भी अफसोस नहीं हुआ। यही नहीं, उसे दुगुनी प्रसन्नता हुई। वह कहने लगा-मैं आधा लाभ लेना चाहता था, पर मेरा भाग्य अत्यन्त प्रबल है कि मुझे पूरा लाभ मिल गया।

मुनिराज के मन में दुविधा तो हुई, परन्तु वह भी क्या

उसी के लिए मचलने लगेगा। संसार में बहुत-सी चीजें हैं, मैं किस-किस की व्यवस्था करूँगी ? एक बार रो लेगा तो समझ जाएगा कि रोने से कोई वस्तु नहीं मिला करती। फिर आगे से रोना बंद कर देगा। आज इसकी फरमाइश पूरी कर दी जायगी तो फिर किसी चीज के लिए रोएगा। इसकी आदत बिगड़ जायगी।

पड़ौसिनों ने कहा- नहीं, ऐसी बात नहीं है। संगम बहुत समझदार बालक है। बहुत गम्भीर है। वह बिगड़ैल लड़कों की तरह तुम्हें कभी परेशान नहीं करता। कभी किसी के घर कोई चीज देने पर भी नहीं लेता। आज उसे खीर खाने की इच्छा हो गई है तो अवश्य उसकी पूर्ति करो।

एक बोली—तो चलो हमारे साथ, खीर की सब सामग्री ले आओ और पका कर संगम को खिलाओ।

दूसरी ने कहा—नहीं, इनके चलने की क्या आवश्यकता है ? हम स्वयं यहीं सब सामान ला देंगी।

संगम की माता अपनी पड़ौसिनों की बात का विरोध नहीं कर सकी। उन्होंने जिस प्रकार हार्दिक-स्नेह प्रदर्शित किया, उसमें न तो अहंकार था, न अपना बड़प्पन प्रकट करने का भाव था न उसे नीचा दिखाने की मनोवृत्ति थी। सहज सहानुभूति थी। वह पड़ौसिनों के स्नेह-दान को अस्वीकार करती तो शिष्टता का उल्लंघन होता। अतः उसे चुपचाप उनके निर्णय को स्वीकार करना पड़ा। उसने बस यही कहा- जैसी आपकी मर्जी।

चारों पड़ौसिनें अपने-अपने घर गईं और खीर की

सामग्री लेकर आ गईं। एक चावल ले आई, एक दूध ले आई, एक शक्कर ले आई और एक मेवा ले आई।

आखिर खीर तैयार हो गई। संगम की माता ने उसे बुलाकर खीर परोसी। परोस कर वह जल भरने चली गई। खीर ठंडी हो रही थी और सगम का हृदय भी खीर सामने देखकर ठंडा हो रहा था। साथ ही संगम दान की भावना भा रहा था

उसी समय एक तपोधन अनगार भिक्षा के अर्थ आये। उन्हें देख कर संगम को अपार हर्ष हुआ! उसने उठकर मुनि का स्वागत किया। उन्हें वन्दना-नमस्कार किया। फिर कहा-महाराज मुझ बालक पर अनुग्रह कीजिए। आहार ग्रहण करके मेरा उद्धार कीजिए।

बालक की सद्भावना देखकर मुनि महाराज को सन्तोष हुआ। बालक आखिर बालक ही ठहरा। उसने कठौती में रक्खी हुई खीर के बीच में एक रेखा खींची। सोचा-आधी खीर मुनिराज को दान दूं और आधी अपने लिए बचा लूँ।

मगर खीर ने बालक की इच्छा की परवाह नहीं की। ज्यों ही मुनिराज के पात्र पर उसने थाली औंधी की कि चिकनाई के कारण सबकी सब पात्र में चली गई। ऐसे समय में दूसरा कोई होता तो उसके मन में दुःख हुए विना शायद ही रहता। पर संगम का भविष्य अच्छा था, अतएव लेश मात्र भी अफसोस नहीं हुआ। यही नहीं, उसे दुगुनी प्रसन्नता हुई। वह कहने लगा-मैं आधा लाभ लेना चाहता था, पर मेरा भाग्य अत्यन्त प्रबल है कि मुझे पूरा लाभ मिल गया।

मुनिराज के मन में दुविधा तो हुई, परन्तु वह भी क्या

उसी के लिए मचलने लगेगा। संसार में बहुत-सी चीजें हैं, मैं किस-किस की व्यवस्था करूँगी ? एक बार रो लेगा तो समझ जाएगा कि रोने मे कोई वस्तु नहीं मिला करती। फिर आगे से रोना बंद कर देगा। आज इसकी फरमाइश पूरी कर दी जायगी तो फिर किसी चीज के लिए रोएगा। इसकी आदत बिगड़ जायगी।

पड़ौसिनों ने कहा- नहीं, ऐसी बात नहीं है। संगम बहुत समझदार बालक है। बहुत गम्भीर है। वह बिगड़ैल लड़कों की तरह तुम्हें कभी परेशान नहीं करता। कभी किसी के घर कोई चीज देने पर भी नहीं लेता। आज उसे खीर खाने की इच्छा हो गई है तो अवश्य उसकी पूर्ति करो।

एक बोली—लो चलो हमारे साथ. खीर की सब सामग्री ले आओ और पका कर संगम को खिलाओ।

दूसरी ने कहा—नहीं, इनके चलने की क्या आवश्यकता है ? हम स्वयं यहीं सब सामान ला देंगी।

संगम की माता अपनी पड़ौसिनों की बात का विरोध नहीं कर सकी। उन्होंने जिस प्रकार हार्दिक-स्नेह प्रदर्शित किया, उसमें न तो अहंकार था, न अपना बड़प्पन प्रकट करने का भाव था न उसे नीचा दिखाने की मनोवृत्ति थी। सहज सहानुभूति थी। वह पड़ौसिनों के स्नेह-दान को अस्वीकार करती तो शिष्टता का उल्लंघन होता। अतः उसे चुपचाप उनके निर्णय को स्वीकार करना पड़ा। उसने बस यही कहा– जैसी आपकी मर्जी।

चारों पड़ौसिनें अपने-अपने घर गईं और खीर की

संसार बड़ा ही विचित्र है। इसमें परिभ्रमण करने वाले जीव नाना अवस्थाओं को प्राप्त होते रहते हैं। संसार के सम्बन्ध अस्थिर हैं। यहाँ कोई किसी का सगा नहीं है और दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो सभी सबके सगे हैं। कौन ऐसा जीव है, जिसके साथ दूसरे जीव का कोई नाता-रिश्ता न रहा हो? अनादि काल से जन्म-मरण करता हुआ यह जीव सबके साथ नाता जोड़ चुका है। आज किसे अपना और किसे पराया समझा जाय? सभी अपने हैं— स्वजन हैं, किसी न किसी भव के रिश्तेदार हैं और वास्तव में देखा जाय तो कोई किसी का नहीं है। कमला माता ने कितने कष्ट सहन करके संगम का प्रेमपूर्वक पालन-पोषण किया। उसे प्राप्त करने के लिए उसने अपने विपुल वैभव के क्षय की भी परवाह नहीं की। देव ने बतला दिया था कि पुत्र होने पर तुम्हारा धन नष्ट हो जायगा; फिर भी उसने धन की इच्छा न रखते हुए पुत्र की ही इच्छा की। वही पुत्र मर कर शालिभद्र के रूप में अक्षय भंडार का स्वामी बना। फिर भी उसकी पूर्वभव की माता ज्यों की त्यों दरिद्र ही बनी रही। शालिभद्र के जीव को पता ही नहीं चला कि वह वृद्धा कौन है और किस दशा में है। संसार कैसा विचित्र है!

कई लोग आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते। उन्हें पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं होता। वे समझते हैं कि जैसे शरीर परभव में नहीं जाता यहीं का यहीं रह जाता है, उसी प्रकार शरीर से उत्पन्न होने वाली चेतना यहीं की यहीं समाप्त हो जाती है। शाश्वत स्थित रहने वाला कोई आत्मतत्त्व है ही नहीं। परन्तु दिव्य ज्ञानियों के ऐसे कथनों पर ध्यान दिया जाय तो यह भ्रमपूर्ण धारणा सहज ही दूर हो जायगी।

ज्ञानी महापुरुषों के वचनों पर श्रद्धा न भी की जाय

कर सकते थे ? बालक की प्रसन्नता देखकर उनको सन्तोष हो गया। बालक ने उच्च भावना से, उत्तम पात्र को, निर्दोष आहार विधि-पूर्वक प्रदान किया था। अतएव उसने संसार को परीत किया और मनुष्य की आयु का बन्ध किया। मुनिराज आहार लेकर चले गये।

थोड़ी-सी देर में माता जल लेकर लौटी। उसने देखा—खीर सफाचट हो गई है। नजर लग जाने के कारण संगम की मृत्यु हो गई। वह देह त्याग कर गोभद्र सेठ के घर बालक के रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम शालिभद्र रक्खा गया। वही शालिभद्र तुम हो।

इस प्रकार शालिभद्र के पूर्वभव का वृत्तान्त बतला कर भगवान् ने कहा—शालिभद्र ! उत्कृष्ट और चढ़ते हुए परिणामों से दान देने के कारण तुम्हें गृहस्थावस्था में महान् ऋद्धि की प्राप्ति हुई। जैसे उत्तम भूमि में एक बीज बोने से हजारों-लाखों फलों की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार उत्तम पात्र को उदार भाव से अन्न आदि का दान देने से महान् फल की प्राप्ति होती है।

हाँ, तो आज तुम्हें जो वृद्धा मिली और जिसने प्रेम के साथ तुम्हें आहार-दान दिया, वह गुवालिन नहीं, गुवालों के मुहल्ले में रहने वाली वही कमला सेठानी है, जो पूर्वभव में तुम्हारी माता थी। पुरातन संस्कारों के कारण वृद्धा तुम्हें देखकर अत्यन्त हर्षित हुई और उसने प्रेम के साथ तुम्हें आहार दिया।

यह वृत्तान्त सुनकर शालिभद्र और धन्ना मुनि के विरक्त हृदय में और भी अधिक वैराग्य छा गया। संसार की अनित्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर वह सोचने लगे—अहो ! वास्तव में

आखिर तो अनादिकाल से जन्म-मरण करने वाले प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीव कभी न कभी शत्रु भी रह चुका है !

इस प्रकार मनुष्य को अपने हक में मंगलमय ही समझना चाहिए कि उसे पहले की घटनाएँ स्मृत नहीं हैं। फिर भी कुछ भवों के अव्यक्त-साफ-साफ मालूम नहीं पड़ने वाले, संस्कार तो विद्यमान ही रहते हैं।

इन सब तथ्यों पर विचार करने से अन्तरात्मा में एक अनोखी ही जागृति उत्पन्न होती है। यही विचार विरक्ति के मूल हैं। शालिभद्र के पूर्वजन्म पर प्रभु ने प्रकाश डाला तो उनके संवेग में शतगुनी वृद्धि हो गई।

एक दिन धन्ना और शालिभद्र मुनि आहार कर रहे थे आहार करते-करते उनकी दृष्टि अपने शरीर के किसी भाग पर जा गिरी। विचार किया तो ज्ञात हुआ कि आयु का अन्त अब सन्निकट आ गया है। यह शरीर लम्बे समय तक टिकने वाला नहीं है।

शरीर के संबंध में सन्तों का दृष्टिकोण दूसरे ही प्रकार का होता है। वे ममता के कारण शरीर का पालन-पोषण नहीं करते, वरन् आत्मकल्याण में सहायक समझ कर उसकी रक्षा करते हैं। अतएव जब तक वह संयम, तप आदि में सहायक रहता है तब तक उसका आहार से पोषण करते हैं। जब देखते हैं कि किसी कारण से यह इतना जीर्ण हो गया है कि अब आत्मकल्याण की साधना में उपयोगी नहीं रहा है, यही नहीं वरन् बाधक बन रहा है तो वे उसे त्याग देने में भी संकोच नहीं करते। उसे त्याग देने का अर्थ यह है कि वे अन्तिम समय में उससे

और अपने अनुभवों का ही सूक्ष्म बुद्धि से विश्लेषण किया जाय, तो भी हमें आत्मा के स्थायी अस्तित्व का पता लगे बिना नहीं रह सकता।

बहुत बार हम किसी जीवधारी को देखकर अकारण ही हर्ष का अनुभव करते हैं। उसे देखते हैं तो अन्तःकरण में प्रीति की लहरें लहराने लगती हैं। इसके विपरीत किसी प्राणी को देखकर चित्त में घृणा, अप्रीति या रोष का भाव उत्पन्न होता है। इस भावना-वैसादृश्य का क्या कारण है ? अगर हम इस प्रश्न पर बारीक दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि वर्त्तमानकाल सम्बन्धी तो कोई कारण नहीं दिखाई देता, तब यह पूर्वकालीन किसी सम्बन्ध का ही फल हो सकता है। जिस जीव के साथ हमारा पहले स्नेहमय सम्बन्ध रहा है, उसे देखकर अपरिचित अवस्था में भी, हृदय में प्रेम उमड़ पड़ता है और जिसके साथ द्वेषमूलक संबंध रहा है, उसे देखते ही हृदय घृणा और द्वेष से भर जाता है। परन्तु इन चक्षुओं से हमें ज्ञात नहीं होता कि किस भव में किसके साथ क्या घटना घटित हुई थी!

मनुष्य को एक बड़ी शिकायत यह रहती है कि उसे पूर्व जन्म की घटनाओं का स्मरण क्यों नहीं रहता ? मगर उसे गनीमत समझना चाहिए कि उसे पूर्वभवों की सब घटनाएँ स्मृति में नहीं रहतीं। समग्र भूतकाल उसे स्मरण रहता तो उसका जीवित रहना दूभर हो जाता। उसकी जिंदगी नरक बन जाती। उसे आज के परम स्नेही और प्राणों के समान प्रिय प्रतीत होने वाले स्वजन भी किसी जन्म के प्राणघातक शत्रु प्रतीत होते। माता अपने तत्काल के जन्मे बालक को किसी जन्म का वैरी समझ लेती तो उस बालक की क्या दशा होती ?

स्वर्ग आदि के सुख मिलें—इस प्रकार की पारलौकिक सुखों की कामना का भी स्पर्श न होने दे। तात्पर्य यह है कि वह पूर्ण रूप से अनासक्त एवं निष्काम भाव को स्वीकार करें और अपने आपको परमात्मा के चरणों में अर्पित कर दे, अर्थात् परमात्म-ध्यान में लीन हो जाए। वह भूल जाय कि मैं मर रहा हूँ और वह भूल जाय कि मैं परभव में जा रहा हूँ। जन्म मरम से अतीत, नित्य, निरंजन, निर्विकार, निष्कलंक आत्मा के स्वरूप में रमण करता हुआ शरीर का त्याग करे।

जिस भाग्यवान् को यह समाधिमरण प्राप्त होता है, वह वास्तव में धन्य है। जीवन में आचरण किये हुए धर्म के प्रभाव से ही ऐसा स्पृहणीय और उत्तम मरण प्राप्त होता है।

धन्ना मुनि और शालिभद्र मुनि ने अपने जीवनकाल में महान् समृद्धि को तुच्छ समझ कर त्याग दिया था और महाप्रभु महावीर के चरणों की शरण अंगीकार करके संयम एवं तप का आचरण किया था। उनका जीवन परम पवित्र था। अतएव अन्तिम समय में उन्होंने समाधिमरण अंगीकार करने का निश्चय किया।

दोनों मुनियों ने आपस में विचार-विमर्श किया। वे श्रमण भगवान् महावीर के सन्निकट आये। यथा विधि वन्दना-नमस्कार करके बोले—भंते! आपके समक्ष अपनी अभिलाषा निवेदन करना वृथा है। प्रभो! आप परमज्योतिर्मय ज्ञानघन हैं। घट-घट के ज्ञाता हैं। हमारे मनोभावों को परिपूर्ण रूपेण जानते हैं। तथापि मर्यादा का पालन करने के लिए निवेदन करना चाहते हैं। हम दोनों की आयु का अन्त सन्निकट है। अतः हमने संथारा ग्रहण करने का विचार किया है। यदि आपकी अनुमति हो तो हम अपने संकल्प को क्रियान्वित करें।

अधिक से अधिक लाभ उठा लेने का प्रयत्न करते हैं। उसे तपस्या में झौंक देते हैं। इस जीवन की वह चरम साधना कहलाती है। शास्त्रीय शब्दों में उसे संथारा, समाधिमरण, संलेखना या पंडित-मरण कहते हैं।

समाधिमरण अन्तिम समय का महान् कर्त्तव्य है। जब मनुष्य जीवन से सर्वथा निराश हो जाता है, मौत की काली छाया उसकी आँखों के आगे नाचने लगती है, एक प्रकार की भीषणता चारों ओर से घेर लेती है, जब स्वजन संबंधी आसन्न वियोग से व्याकुल हो जाते और कोहराम मचाने लगते हैं, मरणासन्न व्यक्ति जब सोचता है कि इस लोक का सर्वस्व त्याग कर, सब परिचित जनों एवं स्थान को छोड़ कर मुझे न जाने किस अज्ञात, अपरिचित एवं तिमिरावृत स्थान में जाना होगा और न मालूम किस अवस्था में रहना होगा, तब अपने आपको घबराहट, बेचैनी, व्याकुलता एवं छटपटाहट से बचाना अत्यन्त कठिन होता है। अपने मन को शान्त और समभाव में स्थित रखना आसान काम नहीं है। ऐसे घोर भयानक समय में समाधिमरण की कला ही सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। ज्ञानी पुरुषों ने इस महान् उपयोगी कला का आविष्कार करके मृत्यु जैसी विकराल वस्तु को भी स्पृहणीय बना दिया है। उन महापुरुषों का यह महान् उपकार है।

समाधिमरण अंगीकार करने वाला साधु भी हो सकता है और गृहस्थ भी हो सकता है। उसके लिए यह आवश्यक माना गया है कि वह जीवित रहने की आकांक्षा से भी मुक्त हो जाय और शीघ्र मर जाने की इच्छा का भी परित्याग कर दे। वह इह लोक संबंधी सुखों की इच्छा भी न करे और परलोक में मुझे

३०

सर्वोच्च साधना और सिद्धि

यद्यपि दोनों मुनि राजगृही में ही थे, जहाँ उनका संसार अवस्था का परिवार एवं सम्बन्धीजन रहते थे, तथापि मुनियों ने उन्हें किसी प्रकार की सूचना देना उचित न समझा। कारण स्पष्ट है। मुनि बन जाने के पश्चात् एक प्रकार से नया ही जीवन होता है। इस नये जीवन में संसार के सभी प्राणी समान बन जाते हैं। पूर्वावस्था के कुटुम्बीजनों या सम्बन्धियों के प्रति कोई ममता या विशिष्टता की भावना नहीं रह जाती। मोह-ग्रस्त परिवार के जन भले मुनि को अपना आत्मीय मानें, परन्तु मुनि तो जैसे अन्य जीवों को आत्मीय समझते हैं, उसी प्रकार उनको। न उनसे कम, न ज्यादा। वे 'सव्वभूअप्पभूअस्स' के आदर्श बन जाते हैं।

इसी कारण धन्ना मुनि एवं शालिभद्र मुनि ने किसी को भी सूचना नहीं दी। सूचना देने या न देने का विकल्प ही उनके सामने उपस्थित नहीं हुआ। वे भगवान् की अनुमति लेकर संथारा करने के लिए चल पड़े।

उधर राजा श्रेणिक के साथ भद्रा माता तथा उनकी बधुएँ आदि भगवान् के तथा मुनियों के दर्शन करने आईं।

भगवान् ने कहा—'जहासुहं देवाणुप्पिया !'

इन शब्दों से भगवान् की वीतरागतामयी अनुमति जानकर दोनों मुनि वैभार गिरि पर जा पहुँचे। वहाँ एक-एक पृथ्वीशिलापट्टक को देख कर और पूंज कर आसीन हो गए। दोनों मुनिराजों ने विधिपूर्वक संथारा ग्रहण कर लिया।

उठा। उनका धैर्य जाता रहा। ममता अत्यन्त उग्रता के साथ जागृत हो गई। अन्तःकरण से स्नेह का ऐसा पूर उमड़ा कि नेत्र नाले बन गये। सब के नयनों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी। किसी-किसी की रोते-रोते हिचकियाँ बँध गई। कोलाहल मच गया।

परन्तु दोनों मुनि अखण्ड आत्मध्यान में लीन थे। उनकी समग्र चेतना परम-आत्मा में लीन हो रही थी। अतएव वे नेत्र बंद किये; मौन भाव से, पूर्ण प्रशमभाव में अवस्थित थे।

थोड़ी देर तक मुनियों के ध्यान की समाप्ति की प्रतीक्षा की गई। पर वे ज्यों के त्यों ध्यानारूढ़ ही बने रहे। तब असीम वात्सल्य की प्रेरणा को न जीत सकने वाली माता भद्रा से न रहा गया। उन्होंने कहा-एक बार सारे परिवार का परित्याग करके अनगार बन गये और अब शरीर का भी परिहार कर रहे हो! आपको क्या मालूम कि इस बुढ़िया पर क्या बीत रही है? मेरे कलेजे पर छुरियाँ चल रही हैं। मैं भलीभाँति जानती हूँ कि आप जिस पथ पर चल पड़े हैं, उससे हटा कर दूसरे पथ पर ले जाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं स्वयं भी हटाना नहीं चाहती। परन्तु केवल यही चाहती हूँ कि एक बार नेत्र खोल-कर हमारी ओर देख लो! इतनी तुच्छ-सी माँग भी क्या पूरी नहीं होगी?

इस प्रकार का विलाप सुनकर धन्ना मुनि तो अडिग ही रहे। वे ज्यों के त्यों आँखें बन्द किये ध्यानमग्न ही बने रहे। परन्तु शालिभद्र के चित्त में अनुराग की किंचित् भावना उत्पन्न हो गई। भद्रा माता के अत्यन्त दीन वचन सुनकर उन्होंने आँखें खोल दीं। उन्होंने सब की ओर देख लिया। मगर कुछ बोले नहीं। सब लोग इतने से ही सन्तुष्ट हो गए।

प्रभु के चरण कमलों में वन्दना नमस्कार करके अन्य मुनियों को भी वन्दन-नमस्कार किया। उन्होंने इधर-उधर सभी ओर नजर दौड़ाई, परन्तु दोनों मुनि दृष्टिगोचर न हुए। तब उनमें से किसी ने प्रभु से प्रश्न किया–त्रिलोकीनाथ! आज आपके दो अन्तेवासी दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। वे कहाँ हैं?

यह प्रश्न सुनकर भगवान् ने सहजभाव से उत्तर दिया–दोनों मुनियों ने अपने जीवन का अन्त सन्निकट जानकर संथारा अङ्गीकार कर लिया है। वे इस समय वैभार गिरि पर स्थित होकर जीवन की चरम साधना कर रहे हैं।

प्रभु का यह उत्तर सुनकर सब लोग चकित रह गये। उन्होंने सोचा–अरे, यह तो गजब हो गया। हम लोगों को पता ही नहीं और युगल मुनि संस्तारक-अविरूढ़ हो गये हैं।

उसी समय सब लोग प्रभु को वन्दन-नमस्कार करके घर लौट आये। सब मन ही मन अत्यन्त उदास और हताश हो रहे थे। वे अपने आपको धिक्कारने लगे। कहने लगे—हा! हम लोग कितने हतभाग्य हैं कि राजगृही में रहते हुए भी हमें पता न चल पाया कि दोनों मुनि अनशन करने वाले हैं। अभी तक तो हम लोग उनके दर्शन करके सान्त्वना प्राप्त कर लेते थे, अब किस आधार पर सान्त्वना प्राप्त करेंगे?

इस प्रकार शोक-सन्तप्त होकर दोनों मुनियों का परिवार और सम्राट् श्रेणिक आदि वैभार गिरि पर उसी जगह पहुंचे, जहाँ मुनि संथारा ग्रहण करके विराजमान थे।

स्वेच्छापूर्वक, वीरता के साथ मरण को वरण करने वाले महातपस्वी मुनियों को देखकर स्वजन-संबंधियों का हृदय काँप

गुणस्थान में आरूढ़ हो गए। इस गुणस्थान में पहुँच जाना एक प्रकार से मुक्ति प्राप्त कर लेना है, क्योंकि क्षीण कषाय हो जाने पर जीव फिर नीचे नहीं गिरता। उसकी आत्मा की स्वाभाविक शक्तियाँ इतनी बलवती हो जाती हैं कि वह जीव एक अन्तर्मुहूर्त्त में ही केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके सर्वज्ञ, सर्वदर्शी परमात्मा बन जाता है।

धन्ना मुनि ने भी बारहवाँ गुणस्थान प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्त्त में ही चारों घाति कर्मों का क्षय कर डाला। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त अव्याबाध सुख से उनकी आत्मा सम्पन्न हो गई। वे जीवन्मुक्त परमात्मा की कोटि में आ गए।

कुछ समय तक इस स्थिति में रह कर भगवान् धन्ना मुनि और भी आगे बढ़े। उन्होंने निर्विकल्प समाधि के बल से योगों का निरोध किया और चौदहवें गुणस्थान में पहुँच कर अयोगि-केवलि दशा प्राप्त की। उनकी आत्मा पूर्णरूप से स्पन्दनहीन-निश्चल हो गई। योग-जनित चंचलता सर्वथा मिट गई। फिर पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने में जितना समय लगता है, उतने समय तक चौदहवें गुणस्थान में रह कर अघातिक कर्मों का भी क्षय कर के निरंजन, निराकार, परमात्मपद पर जा पहुंचे। शरीर का त्याग करके उनकी आत्मा सिद्ध हो गई और लोकाकाश के अग्रभाग पर जाकर विराजमान हो गई।

इस प्रकार धन्ना मुनि संसार-भ्रमण से सदा के लिए छूट गए। वे अजर, अमर, मृत्युञ्जय हो गए।

शालिभद्र मुनि के अन्तःकरण में किंचित् अनुराग का अंश रह गया था। उस छोटे से अनुराग-अंश के कारण उनकी

इसके पश्चात् सम्राट् श्रेणिक ने विचार किया-दोनों महाभाग्यवान् मुनि चरम साधना में लीन हैं। इनकी साधना में विघ्न डालना हमारे लिए योग्य नहीं है। अतएव हमें यहाँ से चल देना चाहिए।

यह सोचकर उन्होंने भद्रा माता आदि सब को समझाया। कहा-मुनिराज गच्छ से भी अलग होकर एकान्त में एकाग्र भाव से अन्तिम समय सुधारने के लिए आये हैं। हम लोग इनकी साधना में बाधक न बनें, यही हमारे लिए और इनके लिए श्रेयस्कर है। अतएव चुपचाप वन्दना-नमस्कार करके लौट चलो।

मुनियों के कुटुम्बीजनों का जी नहीं चाहता था कि वे वहां से जाएँ फिर भी श्रेणिक महाराज के आग्रह से सब को जाना पड़ा। सब विषाद और शोक से घिरे हुए अपने-अपने घर जा पहुँचे। उन्हें उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों आज उनका सर्वस्व लुट रहा है! सब सन्तोष धारण करके धर्म-कर्म का विशेष आचरण करते हुए कालक्षेप करने लगे।

श्री धन्ना मुनि के अन्तःकरण में ममत्व का सूक्ष्म अंश भी उत्पन्न नहीं हुआ था। प्रमाद भी नहीं था। अतएव उन्होंने अपने प्रगाढ़ ध्यान के बल से क्षपकश्रेणी पर आरोहण किया। अपूर्व परिणामों की धारा में प्रवाहित हो करके वे नौवें गुणस्थान में जा पहुँचे। वहाँ तीनों प्रकार के वेद का समूल विनाश किया। परिणाम ऊँचे से ऊँचे होते गए। नौवें गुणस्थान के पश्चात् वे दसवें में पहुँचे। वहाँ मोहकर्म में से संज्वलन लोभ का सूक्ष्मतम अंश ही शेष रह गया था। उसे भी अन्तमुहूर्त में नष्ट किया और सर्वथा निर्मोह, वीतराग एवं अकषाय होकर बारहवें

गुणस्थान में आरूढ़ हो गए। इस 'गुणस्थान में पहुँच जाना एक प्रकार से मुक्ति प्राप्त कर लेना है, क्योंकि क्षीण कषाय हो जाने पर जीव फिर नीचे नहीं गिरता। उसकी आत्मा की स्वाभाविक शक्तियाँ इतनी बलवती हो जाती हैं कि वह जीव एक अन्तर्मुहूर्त्त में ही केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके सर्वज्ञ, सर्वदर्शी परमात्मा बन जाता है।

धन्ना मुनि ने भी बारहवाँ गुणस्थान प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्त्त में ही चारों घाति कर्मों का क्षय कर डाला। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त अव्याबाध सुख से उनकी आत्मा सम्पन्न हो गई। वे जीवन्मुक्त परमात्मा की कोटि में आ गए।

कुछ समय तक इस स्थिति में रह कर भगवान् धन्ना मुनि और भी आगे बढ़े। उन्होंने निर्विकल्प समाधि के बल से योगों का निरोध किया और चौदहवें गुणस्थान में पहुँच कर अयोगि-केवलि दशा प्राप्त की। उनकी आत्मा पूर्णरूप से स्पन्दनहीन-निश्चल हो गई। योग-जनित चंचलता सर्वथा मिट गई। फिर पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने में जितना समय लगता है, उतने समय तक चौदहवें गुणस्थान में रह कर अघातिक कर्मों का भी क्षय कर के निरंजन, निराकार, परमात्मपद पर जा पहुंचे। शरीर का त्याग करके उनकी आत्मा सिद्ध हो गई और लोकाकाश के अग्रभाग पर जाकर विराजमान हो गई।

इस प्रकार धन्ना मुनि संसार-भ्रमण से सदा के लिए छूट गए। वे अजर, अमर, मृत्युञ्जय हो गए।

शालिभद्र मुनि के अन्तःकरण में किंचित् अनुराग का अंश रह गया था। उस छोटे से अनुराग-अंश के कारण उनकी

इसके पश्चात् सम्राट् श्रेणिक ने विचार किया-दोनों महाभाग्यवान् मुनि परम साधना में लीन हैं। इनकी साधना में विघ्न डालना हमारे लिए योग्य नहीं है। अतएव हमें यहाँ से चल देना चाहिए।

यह सोचकर उन्होंने भद्रा माता आदि सब को समझाया। कहा-मुनिराज गच्छ से भी अलग होकर एकान्त में एकाग्र भाव से अन्तिम समय सुधारने के लिए आये हैं। हम लोग इनकी साधना में बाधक न बनें, यही हमारे लिए और इनके लिए श्रेयस्कर है। अतएव चुपचाप वन्दना-नमस्कार करके लौट चलो।

मुनियों के कुटुम्बीजनों का जी नहीं चाहता था कि वे वहां से जाएँ फिर भी श्रेणिक महाराज के आग्रह से सब को जाना पड़ा। सब विषाद और शोक से घिरे हुए अपने-अपने घर जा पहुँचे। उन्हें उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों आज उनका सर्वस्व लुट रहा है! सब सन्तोष धारण करके धर्म-कर्म का विशेष आचरण करते हुए कालक्षेप करने लगे।

श्री धन्ना मुनि के अन्तःकरण में ममत्व का सूक्ष्म अंश भी उत्पन्न नहीं हुआ था। प्रमाद भी नहीं था। अतएव उन्होंने अपने प्रगाढ़ ध्यान के बल से क्षपकश्रेणी पर आरोहण किया। अपूर्व परिणामों की धारा में प्रवाहित हो करके वे नौवें गुणस्थान में जा पहुँचे। वहाँ तीनों प्रकार के वेद का समूल विनाश किया। परिणाम ऊँचे से ऊँचे होते गए। नौवें गुणस्थान के पश्चात् वे दसवें में पहुँचे। वहाँ, मोहकर्म में से संज्वलन लोभ का सूक्ष्मतम अंश ही शेष रह गया था। उसे भी अन्तर्मुहूर्त में नष्ट किया और सर्वथा निर्मोह, वीतराग एवं अकषाय होकर बारहवें

३१

उपसंहार

धन्ना जैसे महापुरुष की जीवनकथा का जिसने सर्वप्रथम निर्माण किया, जिसने उसका संरक्षण किया और लिपिबद्ध किया, उसने भारतीय साहित्य को एक अनमोल निधि प्रदान की। यही नहीं, उसने मानवजाति के समक्ष एक सुन्दर, उदार और उच्चतम आदर्श उपस्थित किया है।

वास्तव में धन्नाजी का उच्च चरित भारतीय संस्कृति और विचारधारा का ज्वलन्त प्रतीक है। उनके जीवन की समग्र कथा आदि से लेकर अन्त तक ऊँचे आदर्शों से अनुप्राणित है। इस जीवनी से मिलने वाला सद्बोध यत्र-तत्र उनकी जीवन-घटनाओं के साथ ही संकलित कर दिया गया है। अतएव उसे यहाँ दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है। विश्वास है कि जो पाठक इस चरित को विचारपूर्वक पढ़ेंगे और इसमें प्रदर्शित आदर्शों का अनुसरण करेंगे, वे अवश्य ही अपने जीवन को पवित्र और उच्च बना लेंगे।